रत्न फलदीपीका

डॉ० दीपाली खजूरिया

।। श्री।।

संस्कृत शोध संस्थान, ग्रन्थमाला ०६

रत्न दीपिका

लेखिका

डॉ. दीपाली खजूरिया

व्याख्याता

राजकीय महाविद्यालय जे एण्ड के

संस्कृत शोध संस्थान, जम्मू

जम्मू-काश्मीर संस्कृत परिषद्, जम्मू

द्वारा संचालित

मुख्य कार्यालयः ४२/ ११ बरनाई रोड बनतलाव, जम्मू-१८११२३

सम्पर्क सूत्र : ०६४१६१४७०७३, ०६४१६२२१७३५

E-mail : ssshodh@gmail.com, jksanskritparishad@gmail.com

प्रकाशकः संस्कृत शोध संस्थान, जम्मू

मुद्रक : शिवा प्रिंटर्स, पलोड़ा, जम्मू

संस्करणः प्रथम, विक्रम सम्वत् २०६८, सन् २०११

प्रतियाँ : ५००

ISBN : 978-81-928321-3-5

मूल्यः 250/-

संस्कृत शोध संस्थान, जम्मू

जम्मू-काश्मीर संस्कृत परिषद्, जम्मू

द्वारा संचालित

मुख्य कार्यालयः ४२/ ११ बरनाई रोड बनतलाव, जम्मू-१८११२३

सम्पर्क सूत्र : ०९४१९१४७०७३, ०९४१९२२१७३५

E-mail : jksshodh@gmail.com, jksanskritparishad@gmail.com

संकेत सूची

संकेत	पूर्ण रूप
अ०	अध्याय
अ०पु	अग्नि पुराण
अ० ज्यो०	अर्वाचान ज्योर्तिविज्ञान
अ० शा०	अर्थ शास्त्र
अनु०	अनुवादक
उ० राम०	उत्तररामचरित
का०	कादम्बरी
कु० सं०	कुमार सम्भव
को०	कोटिलय
क्र०	क्रमांक
ग०पु०	गरुड़ पुराण
चि०	चिकित्सा
ज्यो०	ज्योतिषतत्त्व
ज्यो० त० प्र०	ज्योतिष तत्त्व प्रकाश
त्रि० ज्यो०	त्रिस्कन्ध ज्योतिष
न० पु	नारद पुराण
नैषध०	नैषधमहाकाव्यम्
नै० परि०	नैष्धपरिशिललनम्
पू०	पूर्व
पृ०	पृष्ठ
बृ० सं०	बृहत्संहिता
बृ०	बृहत्
भा०	भाग
भवि०फ० भा०	भविष्य फल भास्कर
म०पु०	मत्स्य पुराण
मु०पु०प्र०	महा पुराण प्रथम
म० भा०	महा भारत

संकेत सूची

म०भा०भी०	महा भारत भीष्म पर्व
म० भा० शा०	महा भारत शान्ति पर्व
मनु० स्मृ०	मनु स्मृति
माल० अग्नि०	मालविका अग्निमित्रम्
मि० प्र०	मिश्र प्रकरण
मु० ग०	मुहूर्तगणपतिः
मु० सिं०	मुहूर्तसिंधु
युक्ति०	युक्तिकल्पतरु
रघु०	रघुवंशमहाकाव्यम्
वा० रा०	वालमिकिरामायण
वि० ध० पु०	विष्णुधर्मोत्तर पुराण
वि०	विष्य
व० सं०	वसष्ठि संहिता
श्लो०	श्लोक
शालि०	शालिमारनिघण्टु
शिशु०	शिशुपालवद्ध
शि० म० पु०	शिव महा पुराण
शु०दी०	शुद्धि दीपिका
शुक्र०	शुक्रनीति
स्क० पु०	स्कन्ध पुराण
सि० भे० सं०	सिद्ध भेषज संग्रह
सं०	संहति
सं०	सम्वत्
हर्ष०	हर्षचरितम्
हि० वि०	हिन्दी विश्वकोष
हि० श० सा०	हिन्दी शब्द सागर

भूमिका

"रत्न" शब्द सर्वप्रथम ऋग्वेद के प्रथम मण्डल प्रथम ऋचा तथा प्रथम सूक्त से ही प्राप्त हो जाता है जिसमें बहुमूल्य रत्नों को देने अथवा धारण करने का वर्णन है। ऋग्वेद में कई स्थानों पर रत्न शब्द को भिन्न-भिन्न अर्थों में लिया गया है। रत्नों को धन से युक्त बतलाया गया है। कहीं पर **"रत्नं मर्त्यो"** कहकर मनुष्य के मनों को रमन कराने वाले उत्तम से उत्तम द्रव्य का वर्णन मिलता है। कहीं पर **"रत्नमुषो"** कहकर रत्न तथा ऐश्वर्य प्रदान करने की बात कही गई है। नाना प्रकार के रत्नों को धारण करने का वर्णन तथा उनके फलों का भी वर्णन मिलता है जिससे यह ज्ञात होता है कि रत्न नाना प्रकार के हैं। अथर्ववेद में मणियों का उल्लेख मिलता है। यह मणियाँ इस प्रकार से है- दर्भमणि, जगिड मणि, अभीवर्त मणि, अस्तृत मणि, वरण मणि, फाल मणि, पर्णमणि, औदुम्बर मणि, शंख मणि, शतवार मणि, प्रतिसर मणि आदि यह मणियाँ विभिन्न प्रकार की व्याधियों को दूर कर दीर्घायु देने वाली हैं, शत्रुनाशक हैं। पापों से मुक्त करवाती हैं तथा क्षात्र शक्ति को बढ़ाती हैं। यह मणियाँ वीरों को बांधी जाती हैं। अग्नि पुराण के ३८३ अध्यायों में नाना प्रकार के विषयों का सन्निवेश हुआ है। विभिन्न अवतारों (रामावतार, कृष्णावतार, इत्यादि) की कथाओं का संक्षेप में वर्णन कर रामायण और महाभारत की कथा विस्तार से दी गई है। मंदिर निर्माण की कला के साथ प्रतिष्ठा तथा पूजन के विधान का विवेचन संक्षेप में सुचारू रूप से किया गया है। ज्योतिष शास्त्र, धर्म शास्त्र व्रत, राजनीति, आयुर्वेद आदि शास्त्रों का वर्णन बड़े विस्तार से मिलता है।

वेदों में इन बीस रत्नों का वर्णन मिलता है- वज्र, इन्द्रनील, मरकत, कर्केतर, पद्मराग, रुधिराख्या, वैदूर्य, पुलक, विमलकराजमणि, स्फटिक, शशिकान्त, सौगन्धिक, गोमेद, शंख, महानील, पुष्पराग, ब्रह्ममणि, ज्योतिरख, सस्यकमुक्ता, प्रवाल आदि।

रत्न प्रदीप में ८४ बहुमूल्य रत्न और उपरत्नों का वर्णन मिलता है। इसमें रत्नों के गुण-दोष तथा उनकी कृत्रिम-अकृत्रिम के विषय में बताया गया है। रत्नों का मानव शरीर पर क्या प्रभाव पड़ता है तथा रत्नों के शुभ-अशुभ लक्षणों का वर्णन भी किया गया है। किस दिन कौन सा रत्न धारण करना चाहिए इस विषय का भी विवेचन किया है। रत्नों का औषधीय उपयोग बताते हुए हृदय रोग में रत्नों का प्रयोग गुर्दे के दर्द, बुद्धि की बढ़ोतरी के लिए तुर्मली, गठिया के लिए अम्बर, हार्ट अटैक के लिए मोती का वर्णन किया गया है। कर्केतन परीक्षा (अ०-७५) तथा भीष्मक परीक्षा (अ०-७०) में कर्केतन की उत्पत्ति, गुण-दोष, परीक्षण विधि तथा भीष्मक के विधि लक्षण तथा परीक्षण विधि उपलब्ध होती है। पुलक परीक्षा (अ०-७७) में पुलक की उत्पत्ति, लक्षण, तथा गुण दोष वर्णित हैं। रुधिराख्य परीक्षा (अ०-७८) में रुधिराख्य की उत्पत्ति, लक्षण तथा शोधन का उल्लेख मिलता है। स्फटिक परीक्षा (अ०-७९) में स्फटिक की परीक्षा

विधि का वर्णन है तथा विद्रुम परीक्षा (अ०-८०) में विद्रुम की उत्पत्ति, गुण-दोष तथा विद्रुम धारण के फल का वर्णन है।' विविध प्रकार की विद्याओं का उल्लेख होने के कारण इस अग्नि पुराण के लिए कहा गया है।

इस ग्रन्थ की व्यवस्था छः अध्यायों में की गई है। प्रथम अध्याय में रत्न से सम्बद्ध ग्रन्थ, द्वितीय अध्याय म विविध ग्रन्थों में रत्नों का सविस्तार वर्णन, तृतीय अध्याय में रत्न शब्द की व्युत्तपति में रत्न का अर्थ, संख्या, गुण-दोष, रत्नों की उत्पत्ति, प्रमुख रत्नों के विभिन्न नाम, गुण, प्रकृति एवं लक्षण, मणि विवेचन, अथर्ववेद में वर्णित विभिन्न प्रकार की मणियाँ एवं उनके गुण, चतुर्थ अध्याय में रत्न परीक्षा विधि मणि एवं रत्न धारणविधि एवं लाभ, अरिष्ट ग्रहों द्वारा उत्पन्न रोगों का रत्नों द्वारा उपचार, रत्नों का अनुकूल-प्रतिकूल प्रभाव, रत्न धारण का उपयुक्त समय, पंचम अध्याय में चिकित्सा शास्त्र में रत्नों का प्रयोग, रत्नों का चिकित्सीय महत्त्व और षष्ठ अध्याय में रत्नों का रासायनिक विश्लेषण, आधुनिक शोध के अनुसार रोग निदान हेतु रत्न धारण और आधुनिक शोध अनुसार रत्नों का मानव शरीर पर प्रभाव का वर्णन किया गया है।

भवदीय

डॉ० दीपाली खजूरिया

जम्मू

विषयानुक्रमणिका

प्रथम अध्याय

रत्न से सम्बद्ध ग्रन्थ

ऋग्वेद-

"रत्न" शब्द सर्वप्रथम ऋग्वेद के प्रथम मण्डल प्रथम ऋचा तथा प्रथम सूक्त से ही प्राप्त हो जाता है जिसमें बहुमूल्य रत्नों को देने अथवा धारण करने का वर्णन है।[१] ऋग्वेद में कई स्थानों पर रत्न शब्द को भिन्न-भिन्न अर्थों में लिया गया है। रत्नों को धन से युक्त बतलाया गया है। कहीं पर **"रत्नं मर्त्यो"** कहकर मनुष्य के मनों को रमन कराने वाले उत्तम से उत्तम द्रव्य का वर्णन मिलता है।[२] कहीं पर **"रत्नमुषो"** कहकर रत्न तथा ऐश्वर्य प्रदान करने की बात कही गई है।[३] नाना प्रकार के रत्नों को धारण करनें का वर्णन तथा उनके फलों का भी वर्णन मिलता है जिससे यह ज्ञात होता है कि रत्न नाना प्रकार के हैं।[४] वेदों में रत्नों के विभिन्न नाम बताए हैं- वज्र, इन्द्रनील, मरकत, कर्केतर, पद्मराग रुधिराख्या, वैदूर्य, पुलक, विमलकराजमणि, स्फटिक, शशिकान्त, सौगन्धिक, गोमेद, शङ्ख, महानील, पुष्पराग, ब्रह्ममणि, ज्योतिरख, सस्यकमुक्ता, प्रवाल आदि।[५]

अथर्ववेद-

अथर्ववेद में मणियों का उल्लेख मिलता है। यह मणियाँ इस प्रकार से है- दर्भमणि, जगिड मणि, अभीवर्त मणि, अस्तृत मणि, वरण मणि, फाल मणि, पर्णमणि, औदुम्बर मणि, शंख मणि, शतवार मणि, प्रतिसर मणि आदि यह मणियाँ विभिन्न प्रकार की व्याधियों को दूर कर दीर्घायु देने वाली हैं, शत्रुनाशक हैं। पापों से मुक्त करवाती हैं तथा क्षात्र शक्ति को बढ़ाती हैं। यह मणियाँ वीरों को बांधी जाती हैं।[६]

अग्नि पुराण-

अग्नि पुराण के ३८३ अध्यायों में नाना प्रकार के विषयों का सन्निवेश हुआ है। विभिन्न अवतारों (रामावतार, कृष्णावतार, इत्यादि) की कथाओं का संक्षेप में वर्णन कर रामायण और महाभारत की कथा विस्तार से दी गई है। मन्दिर निर्माण की कला के साथ प्रतिष्ठा तथा पूजन के विधान का विवेचन संक्षेप में सुचारू रूप से किया गया है। ज्योतिष शास्त्र, धर्म शास्त्र व्रत, राजनीति, आयुर्वेद आदि शास्त्रों का वर्णन बड़े विस्तार से मिलता है।

---

१. ऋग्वेद - ०१/०१/०१
२. तदेव - ०१/४२/०६
३. तदेव - ०७/७५/०२
४. तदेव - ०६/६०/०२
५. तदेव - १०/४२/०७
६. अथर्व० सुभा०- पृ०-२४८-२६०

कर्केतन परीक्षा (अ०-७५) तथा भीष्मक परीक्षा (अ०-७०) में कर्केतन की उत्पत्ति, गुण-दोष, परीक्षण विधि तथा भीष्मक के विधि लक्षण तथा परीक्षण विधि उपलब्ध होती है। पुलक परीक्षा (अ०-७७) में पुलक की उत्पत्ति, लक्षण, तथा गुण दोष वर्णित हैं। रुधिराख्य परीक्षा (अ०-७८) में रुधिराख्य की उत्पत्ति, लक्षण तथा शोधन का उल्लेख मिलता है। स्फटिक परीक्षा (अ०-७९) में स्फटिक की परीक्षा विधि का वर्णन है तथा विद्रुम परीक्षा (अ०-८०) में विद्रुम की उत्पत्ति, गुण-दोष तथा विद्रुम धारण के फल का वर्णन है।[1] विविध प्रकार की विद्याओं का उल्लेख होने के कारण इस अग्नि पुराण के लिए कहा गया है।

'आग्नेये हि पुराणेऽस्मिन सर्वाः विद्याः प्रदर्शिताः'।[2]

गरुड़ पुराण

गरुड़ पुराण दोखण्डों में विभक्त है। प्रथम खण्ड में २२९ तथा द्वितीय खण्ड में ३५ अध्याय हैं। द्वितीय खण्ड को प्रेत कल्प भी कहा जाता है। इस महापुराण के आधार पर भारतीय इतिहास और संस्.ति के विभिन्न पक्षों-भूगोल, इतिहास, राजनैतिक इतिहास, समाज, आर्थिक जीवन, धर्म और दर्शन, मूर्तिकला और प्रासाद वस्तु आदि विषयों से सम्बद्ध सामग्री का विवेचन है।[3] इस सब विषयों के अतिरिक्त यह ग्रन्थ रत्न सम्बन्धी सामग्री की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है।

इस ग्रन्थ में प्रथम खण्ड के ६८ से लेकर ८० तक के तेरह अध्यायों में भिन्न-भिन्न रत्नों का विस्तार से विवेचन किया गया है। जिसमें वज्र परीक्षा (अ०-६८) के अन्तर्गत वज्र की उत्पत्ति, उत्पत्ति स्थान, वज्र के विभिन्न प्रकार, वज्र के गुण-दोष, वज्र (हीरा) के प्राकृतिक गुण तथा वज्र धारण के लाभ बताए गए हैं। मुक्ता परीक्षा (अ०-६९) में मुक्ता की उत्पत्ति, उत्पत्ति स्थान, मुक्ता के आठ प्रकारों, मुक्ता के विविध लक्षण, परीक्षण विधि तथा विविध स्थानों से उत्पन्न मुक्ता के मूल्यों का वर्णन है। पद्मराग परीक्षा (अ०-७०) में पद्मराग की उत्पत्ति, उत्पत्ति स्थान, परीक्षण विधि, विविध लक्षण तथा गुण दोषों का वर्णन है। मरकत परीक्षा (अ०-७१) में मरकत की उत्पत्ति, उत्पत्ति स्थान, विभिन्न स्थानों से प्राप्त होने वाली मरकत मणियों के लक्षण, गुण-दोष, परीक्षण विधि तथा गुण-दोष के अनुसार मूल्यों का वर्णन है।[4]

१- द्रष्टव्य- पु० वि०- पृ०- १५१
२- .... अ० पु० अ०- ३८३/५२
३- .... मू० चि०- पृ०- ७-१३
४ .... ग० पु० - पृ०- ०२

इन्द्रनील परीक्षा-

(अ०-७२) में इन्द्रनील की उत्पत्ति, उत्पत्ति स्थान, विविध लक्षण, गुण-दोष, परीक्षण विधि तथा मूल्य का वर्णन है। वैदूर्य परीक्षा (अ०-७३) में उत्पत्ति स्थान, विविध लक्षण, गुण-द्रोष तथा परीक्षण विधि का वर्णन है। पुष्पराग परीक्षा (अ०-७४) में पुष्पराग की उत्पत्ति, गुण-दोष तथा परीक्षण विधि वर्णित है। मुक्ता की उत्पत्ति, उत्पत्ति स्थान तथा गुण बताए गए हैं। इन्द्रनील मणि तथा वैदूर्य की परीक्षा बताई गई है। इन रत्नों के अतिरिक्त गन्धसस्य, चन्द्रकान्त, सूर्यकान्त, पुलक, कर्केतन, पुष्पराग, ज्योतिरस, राजपट्ट, राजमय, शुभ सौगन्धिक, गज, शङ्ख, ब्रह्ममय, गोमेद, रुधिराक्ष, धूली, तुष्यक, सीस पीलू, प्रवाल, गिरिवज्र, भुजङ्ग मणि, टिट्टिभ, भ्रामर और उत्पल का भी उल्लेख मिलता है। गरुड़ पुराण में यह भी वर्णित है कि अन्य विद्याओं की भाँति रत्न शास्त्र का उदय और विकास ब्रह्मा तथा व्यास से ही हुआ था।

"वैदूर्यपुष्परागाणां कर्केतनभीष्मकयोः।
परीक्षा ब्रह्मणा प्रोक्ता व्यासेन कथिता द्विज"।।[1]

बृहत्संहिता

वराहमिहिरकृत बृहत्संहिता की विषय सीमा विशाल है। १०७ अध्यायों वाले इस ग्रन्थ में उपनयन (अ०-१) से लेकर संवत्सर(अ०-२) चन्द्र(अ०-३), राहु(अ०-४), भौम(अ०-६), बुध(अ०-७), बृहस्पति (अ०-८), शुक्र(अ०-९), शनि(अ०-१०) और केतु (अ-११) आदि ग्रहों से होने वाले शुभ-अशुभ फलों का वर्णन विस्तार से है। ग्रह युद्ध में ग्रहों के आपस में टकराने का वर्णन है। उत्पाताध्याय(अ०-४६) में उत्पात के लक्षण तथा फल बताए गए हैं। विभिन्न प्रकार के जानवरों के लक्षणों का वर्णन भी मिलता है। विभिन्न प्रकार के पुरुषों और स्त्रियों में पाए जाने वाले लक्षणों (अ०-६८, अ०-७०) का उल्लेख हुआ है। अंतिम के अध्यायों में विवाह पटल, ग्रहगोचर, रूपसत्राध्याय का वर्णन हुआ है।[2]

इस ग्रन्थ के ८० से ८३ तक के ४ अध्याय रत्न शास्त्र से सम्बन्धित हैं। जिस में रत्न परीक्षा, रत्नों की उत्पत्ति, रत्नों के नाम जिन में वज्रमणि के सात आकार स्थान, हीरे के प्रकार, शुभ-अशुभ हीरे के लक्षण, हीरे के धारण में गुण, मोतियों के आठ उत्पत्ति स्थान, मोतियों के लक्षण, मोतियों की विशेषताएं विभिन्न प्रकार के मुक्ता फल लक्षण, मोतियों में अमूल्यता तथा मोतियों से रचित आभूषणों की संज्ञा का वर्णन है। पद्मराग की उत्पत्ति, लक्षण, गुण- दोष तथा प्रभाव का उल्लेख हुआ है। मरकत मणि का प्रयोजन बताकर उसके लक्षण बताए गए हैं।[3]

१- ग० पु० ०१/७३/०१ पृ०- २९६
२- बृ० सं० पृ०- ०७

३- .... पृ०- ७९

मुहूर्तचितामणि-

मुहूर्तचिन्तामणि के प्रणेता आचार्य श्री राम ने १३ प्रकरणें में ग्रन्थ की रचना की है। ग्रन्थ के तेरह प्रकरणों में शुभाशुभ प्रकरण, नक्षत्र प्रकरण, संक्रान्ति प्रकरण, गोचर प्रकरण, संस्करण, प्रकरण,विवाह प्रकरण वधुप्रवेश प्रकरण, द्विरागमन प्रकरण, अग्न्याधान प्रकरण, राज्याभिषेक प्रकरण,यात्रा प्रकरण,वास्तु प्रकरण और सर्व शुद्धात्रयदिशी, गृहप्रवेश आदि प्रकरण हैं।[1] यह ग्रन्थ रत्न परीक्षा की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है। इस ग्रन्थ के चौथे प्रकरण(गोचरप्रकरण) में रत्न धारण तथा अल्प मुल्य रत्न धारण का वर्णन हुआ है। रत्न धारण में विविध ग्रहों से सम्बन्धित रत्नों का उल्लेख हुआ है। जिसमें हीरा, मोती, प्रवाल, गोमेद नीलम, वैदूर्य, पुष्पराग, पन्ना तथा माणिक्य का वर्णन है। किन-किन शुभमुहूर्तों में यह रत्न धारण करने चाहिए इसका भी उल्लेख हुआ है। अधिक मूल्यवान् रत्न धारण की असमर्थता पर अल्प मूल्यवान्रत्नों को धारण करने का वर्णन मिलता है।[2]

अर्थ शास्त्र-

कातिलय के अर्थ शास्त्र में पन्द्रह अधिकरण हैं। इन पन्द्रह अधिकरणों में राजा के कार्य व्यापार, विद्या विषयक विचार, राजकीय अधिकारियों के कर्तव्यों, विवाह के लेन-देन शिल्पी वर्णन,व्यापारियों का उल्लेख, षड्यन्त्रकारियों द्वारा प्रजा की रक्षा के उपाय तथा कोष संग्रह का निरूपण है। गुण, संन्धि, विग्रह विभिन्न व्यसन तथा उनके प्रतिकार, युद्ध, आक्रमण, विभिन्न विपत्तियां चतुरंग सेना, शत्रुओं में फूट डालने वाले प्रयोगों, छल कपट पूर्ण उपाय, शत्रु वध के प्रयोग तथा शान्ति व्यवस्था के उपाय वर्णित हैं।[3] इस ग्रन्थ के दूसरे अधिकरण का ग्यारहवां अध्याय रत्न शास्त्रीय महत्व का है। जिसमें विभिन्न रत्नों की परीक्षाओं का वर्णन है। इस अध्यायमें मोतियोंकी उत्पत्ति के स्थान, मोतियों की उत्पत्ति के कारण, मोतियों में पाए जाने वाले दोषोंका वर्णन है। मोतियों से बनाई जाने वाली विभिन्न प्रकारकी मालाओंका भी उल्लेख मिलता है। मणियों के उत्पत्ति स्थान तथा पांच प्रकार के माणिक्य का भी उल्लेख मिलता है। वैदूर्यमणि तथा इन्द्रनील मणि आठ प्रकार की बताई गई है। स्फटिक मणि के चार प्रकारों का उल्लेख भी हुआ है। मणियों में पाए जाने वाले भिन्न-भिन्न गुण तथा दोषों का भी वर्णन मिलता है। मणियों की आठ प्रकार की उपजातियों का भी उल्लेख हुआ है। हीरे के छह उत्पत्ति स्थान बताए गए हैं तथा इसके आकार-प्रकारों का भी वर्णन हुआ है। मूंगेके उत्पत्ति स्थान बताकर उसके दो प्रकारों का वर्णन किया गया है।[4]

१- द्रष्टव्य- मु० चि० पृ०-७-१३

२-...... मु० चि० पृ०- २०७-२०६

३-..... [illegible] पृ० [illegible]

४-...... तदेव.......................

रत्न विज्ञान-

श्री पं० राधाकृष्ण द्वारा लिखित, रत्न विज्ञान २६७ पृष्ठों का रत्न विषयक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। यह ग्रन्थ विद्याभवन आयुर्वेद ग्रन्थमाला ६६ के अन्तर्गत,चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी द्वारा १६७२ में प्रकाशित है। इस ग्रन्थमें १८ प्रकार के भिन्न-भिन्न रत्नों का वर्णन किया गया है। इन रत्नों में हीरा, मुक्ता, प्रवाल, माणिक्य, नीलम, पन्ना, वैदूर्य फिरोजा इत्यादि वर्णित है। हीरे की श्रेष्ठता बतलाकर हीरे की उत्पत्ति, गुण-धर्म, हीरकशोधन तथा हीरे की भस्म से विभिन्न प्रकार के रोगों का उपचार बताया गया है। मोती के उद्भव स्थान, बहुमुल्य मोती, मोती का विनिमय, कृत्रिम मोती, मोती परीक्षा मोती और ज्योतिष शास्त्र, मोती के दोष उत्कृष्ट मोती की छाया, गुण-धर्म, मोती भस्मादि से शीघ्र दूर होने वाले रोगों का वर्णन है।

प्रवाल का उत्पत्ति स्थान, रूप रंग, लक्षण, गुण धर्म, शोधन मारण, प्रवाल भस्मादि से शीघ्र दूर होने वाले रोगों का वर्णन है। माणिक्य के उत्पत्ति स्थान, रंग रूप, लक्षण, उत्कृष्ट, निकृष्ट माणिक्य, शुद्धाशुद्ध माणिक्य के गुण-दोष, माणिक्य के प्रतिनिधि रत्न, कृत्रिम माणिक्य, शोधन, भस्म इत्यादि का वर्णन है। नीलमके उत्पत्ति स्थान, लक्षण, प्रकार गुण धर्म, कृत्रिम नीलम, शोधन-मारण, भस्मीकरण इत्यादि का वर्णन है।

पन्ना के उत्पत्ति-स्थान,रूप रंग, लक्षण, शुद्ध पन्ने की परीक्षा, पन्ने के प्रमुख प्रकार प्राप्ति स्थान इत्यादि का वर्णन है। वैदूर्य के उत्पत्ति स्थान, वैदूर्य के प्रकार, रूप-रंग, लक्षण, गुणधर्म, चिकित्सा तथा उपयोगी वैदूर्य इत्यादि उल्लिखित हैं।

फिरोजा के उत्पत्ति स्थान, रूप-रंग लक्षण, गुण-धर्म, शोधन मारण इत्यादि वर्णित हैं। राजावर्त के उत्पत्ति स्थान, रूप-रंग इत्यादि का वर्णन है। वैक्रान्त के उत्पत्ति स्थान रंग, लक्षण, गुणधर्म शोधन-मारण, भस्मीकरणादि उल्लिखित है। पुलक के उत्पत्ति स्थान, रंग रूप लक्षण, पुलक के प्रकारों का वर्णन है। अकीक के नाम उत्पत्ति स्थान, व्यवसाय, प्रकार, गुण दोषों का वर्णन है। भीष्ममणि के विभिन्न नाम, उत्पत्ति स्थान, लक्षण इत्यादि वर्णित हैं। अम्बर तथा तृणकान्त के उत्पत्ति स्थान तथा वैज्ञानिक अनुसंधान वर्णित हैं।

गोमेद तथा पुखराज के उत्पत्ति स्थान, रंग-रूप, लक्षण, गुण दोष तथा कृत्रिमता वर्णित हैं। इस प्रकार रत्न विज्ञान में विभिन्न प्रकार के १८ रत्नों का विस्तृत विवेचन दिया गया है। पं० राधाकृष्ण पराशर ने रत्नों का वैज्ञनिक अनुसंधान भी बतलाया है तथा रत्नों की भस्म से विभिन्न प्रकार के रोगों का उपचार भी बताया है।[1]

१- द्रष्टव्य - र० वि० पृ० ०१-२६७

युक्तिकल्प तरु

भोजराजकृत युक्तिकल्पतरु एक संग्रह ग्रन्थ है। युक्तिकल्पतरु का अर्थ है युक्तियों का कल्पवृक्ष। युक्तिकल्पतरु से राजा उपयोगी ज्ञान प्राप्त करते थे। युक्तिकल्पतरु में १६३५ श्लोक हैं। युक्तिकल्पतरु में नीतियुक्ति, द्वन्द्व युक्ति, नगरी युक्ति, अलंकार युक्ति, अस्त्र युक्ति, एवं यात्रा युक्ति नामक अध्याय है। इस ग्रन्थ में गरुड़ पुराष, पद्मपुराण, मत्स्यपुराण, विष्णुधर्मोत्तर पुराण आदि पुराणों से लिए श्लोकों का वर्णन हैं। कुछ ऐसे ग्रन्थों का भी इसमें उंल्लेख हुआ है जो आज उपलब्ध नहीं होते हैं, जैसे लौहार्णव, लौहद्वीप, लोहप्रदीप, बृहद्हारीत इत्यादि। विषय की दृष्टि से अलंकार युक्ति और यात्रा युक्ति के अन्तर्गत नौका वर्णन अवलोकनीय है। अलंकार युक्ति में अनेक ग्रन्थों के रत्न सम्बन्धी श्लोकों का संग्रह करके उसका विस्तृत वर्णन प्रस्तुत किया है।

युक्तिकल्पतरु में 'रत्न' नामक अध्याय में संकलित विषयक श्लोक विभिन्न ग्रन्थों से उद्धृत किए गए हैं। इसमें रत्न विषयक श्लोकों की संख्या ४८७ है जबकि अन्य में इतनी संख्या उपलब्ध नहीं होती है जैसे गरुड़ पुराण में २२६, बुद्धभट्ट की रत्न परीक्षा में १२६, अग्निपुराण में ६, मानसोल्लास में ७५ हैं। युक्तिकल्पतरु में रत्नों को ब्राह्मणादि चार जातियों को विभाजित कर बताया गया है। रत्नों में पद्मराग, वज्र, हीरक, विद्रुम, प्रवाल, गोमेद, मुक्ता, वैदूर्य, इन्द्रनील, मरकत, पुष्पराग, कर्केतन, भीष्ममणि, पुलक, रुधिराख्य, स्फटिक, अयस्कान्त आदि रत्नों के गुण, दोष, मूल्य, परीक्षा, उत्पत्ति, जाति का वर्णन है। सभी ग्रन्थों में प्रायः वज्र से प्रारम्भकर गुण-दोषों की उत्पत्ति को बताया है किन्तु सभी ग्रन्थो में यह ऐसा ग्रन्थ है जिसने वज्र से प्रारम्भ न कर पद्मराग से प्रारम्भ किया है।[1]

शालिग्रामनिघण्टु भूषण

शालिग्रामनिघण्टु भूषण रत्न शास्त्र की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ के रत्नोपरत्नवर्ग अध्याय में विभिन्न रत्नों का वर्णन किया गया है। रत्नों में सर्वप्रथम हीरे का वर्णन करते हुए हीरे के भेद, भेदों के लक्षण, गुण, रोगों के उपचार के लिए हीरे का महत्व, तथा अशुद्ध हीरे के दोषों का वर्णन किया गया है। माणिक्य के गुण, भेद, विभिन्न वर्गों के माणिक्य, माणिक्य के मूल्यों का वर्णन तथा कुछ ऐसे माणिक्यों का वर्णन है जो दुर्लभ हैं। माणिक्य के गुणों को बताते हुए उनकी परीक्षा भी बताई गई है। मोती के विभिन्न नामों को बताते हुए, उनके गुण, मुक्ता से दूर होने वाले रोगों, उत्पत्ति, लक्षण, परीक्षा इत्यादि का वर्णन है।

१- द्रष्टव्य- युक्तिकल्पतरु अध्याय ४५- ७३, पृ० ८५-१३८

प्रवाल के विभिन्न नाम, गुण, इससे होने वाली रोगों की चिकित्सा का वर्णन है। मरकत मणि के विभिन्न नाम, गुण, लक्षण, रोगों की चिकित्सा परीक्षण विधि का वर्णन है। पुष्पराग मणि के विभिन्न नाम बताते हुए, गुण, दोष, लक्षण का वर्णन है। नीलम मणि के विभिन्न नाम, गुण, दोष तथा वर्णभेद का वर्णन है।[1]

गोमेद मणि के विभिन्न नामों का उल्लेख करते हुए परीक्षण विधि, गुण-दोष, रोगों का उपचार तथा उत्पत्ति स्थान और मूल्य का वर्णन है। वैक्रान्त मणि के गुण-दोष तथा रोगों की चिकित्सा बताई गई है। सूर्यकान्त मणि के विभिन्न नाम गुण-दोष तथा रोगों की चिकित्सा बताई गई है। चन्द्रकान्त मणि के भी विभिन्न नामों को बताते हुए लक्षण तथा गुण-दोष इत्यादि का वर्णन है। स्फटिक मणि के विभिन्न नाम गुण तथा दोष बताए गए हैं। काचन मणि का भी अलग-अलग नामों में वर्णन करते हुए गुण-दोष बताए गए हैं। इसी प्रकार से प्रवाल के भी विभिन्न नामों का उल्लेख करते हुए गुण दोष तथा इससे होने वाली रोगों की चिकित्सा का वर्णन है।[2] इस प्रकार से देखा जाता है कि इस ग्रन्थ में विभिन्न रत्नों का उल्लेख करते हुए उनकी महत्ता को बताया गया है।

रत्न प्रदीप

रत्न प्रदीप में ८४ बहुमूल्य रत्न और उपरत्नों का वर्णन मिलता है। इसमें रत्नों के गुण-दोष तथा उनकी कृत्रिम-अकृत्रिम के विषय में बताया गया है। रत्नों का मानव शरीर पर क्या प्रभाव पड़ता है तथा रत्नों के शुभ-अशुभ लक्षणों का वर्णन भी किया गया है। किस दिन कौन सा रत्न धारण करना चाहिए इस विषय का भी विवेचन किया है। रत्नों का औषधीय उपयोग बताते हुए हृदय रोग में रत्नों का प्रयोग गुर्दे के दर्द, बुद्धि की बढ़ोत्तरी के लिए तुर्मली, गठिया के लिए अम्बर, हार्ट अटैक के लिए मोती का वर्णन किया गया है।[3]

१- द्रष्टव्य- शा० नि० पृ० ७३४- ७४१
२- तदेव- पृ० ७४२- ७५३
३- र० प्र० पृ० १२- २३५

द्वितीयऽध्याय

विविध ग्रन्थों में रत्नों का सविस्तार वर्णन

१. ऋग्वेद

ऋग्वेद में रत्न शब्द को विभिन्न अर्थों में लिया गया है। ऋग्वेद के प्रथम मण्डल प्रथम सूक्त प्रथम ऋचा में ही रत्न धातमम् शब्द का वर्णन आया है।[1] यहाँ पर स्वर्णादि बहुमूल्य रत्नों को देने अथवा धारण करने का वर्णन मिलता है। रत्न को इसलिए भी धारण किया जाता है कि वे उत्तम फल की प्राप्ति देते हैं। रत्नों को धारण करने से धन की प्राप्ति होती है। इस प्रकार का वर्णन भी ऋग्वेद में मिलता है।[2]

'रत्नमकृतम्' इस में भी सब प्रकार के उत्तम धन की उन्नति एवं एकत्रित करने का वर्णन किया गया है।[3] **'रत्नं द्रविणं'- 'रमणयम् चक्रवत्तिराज्यादिसिद्धं धनम्'।** 'अति रमणीय चक्रवर्ती राज्य आदि कर्मों से सिद्ध धन'।[4]

यहाँ पर रमणीय धन का उल्लेख मिलता है। इससे यह प्रतीत होता है रत्नों का धन के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है और रत्न धन प्रदान करने वाले होते हैं। **'रत्नधातमः'-** रमणीय पर्वत अर्थात् अति सुन्दरता से सुखों को दिलाने वाली जैसी विद्या का वर्णन आया है।[5]

'रत्नानिधत्तन'- यहाँ पर विद्या और सुवर्णादि धनों को अच्छी प्रकार से धारण करने का वर्णन है।[6]

---

१. अग्मिीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्। होतारं रत्नधातमम्। ऋग्वेद- ०१/०१/०१
"रत्नधातमं यागफलरूपाणां रत्नानामतिशयेन धारयितारं पोषयितारं वा" इत्यधिकम् रत्न शब्दो द्वितीयाध्याये 'मघम्' इत्यादिष्वष्टाविंशतौ धननामसु (नि० २/१०/०७) पठितः। रमणीयत्वात् रत्नत्वम्। दधातिधातुत्रदानार्थवाचीति।
तदिदं निरुक्तकारस्य यास्कस्य मन्त्र व्याख्यानाम्।
'रत्नं धाता इति'। रत्नानि दधतिति विग्रहः समासत्वादन्तोदात्तो रत्नधाशब्दः।"

२. आ नो रत्नानि विभ्रतावश्विनां गच्छतं युवम्।
रुद्रा हिरण्यवर्तनी जुषाणा वाजिनीवसु माध्वी मम् श्रुतं हवम्।। ऋग्वेद- ०५/७५/०३
किं नो अस्य द्रविणं कद्ध रत्नं वि नो वोचो जावेदश्चिकित्वानी
गुहाध्वनः परमं यन्नो अस्य रेकु पदं न निदाना अमन्म।। तदेव- ०४/०५/१२

३. त्रिभिः पवित्रेरपुपी हृदा मति ज्योतिरनु प्रजानन।
वषिष्टं रत्नमकृत स्वधाभिरादिद् धावापृथ्वी पेर्य्यपश्यत्।। तदेव- ०३/२७/०६

४. तत्ते भद्रं यत्समिद्धः स्वे दमे सोमाहुती जरसे मृक्यन्मः।
दधासि रत्नं द्रविणं च दाशुषेऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव। तदेव- ०१/२४/१४

५. अयं देवाय जन्मने स्तोमो विप्रेभिरासया। अकारि रत्नधातमः। तदेव- ०१/२०/०१

६. ते नो रत्नानि धत्तन त्रिरासप्तानि सुन्वते एकमेकं सुशस्तिभिः। तदेव- ०१/२०/०७

'रत्नं मर्त्यो'- मनुष्यों के मनों को रमण कराने वाले उत्तम से उत्तम द्रव्य का वर्णन मिलता है।[1]

'रत्ना'- 'रमणीय मणि धनं वा स्वरूपम्' ऋग्वेद की इस ऋचा में रत्ना शब्द को हीरा आदि रमणीय मणिरूप में लिया है। **'रत्नवन्तम्'**- बहुत रत्नों से विशिष्ट(बहुत धन से युक्त), यहाँ रत्नवन्तम् शब्द को नाशरहित रूप धन के अर्थ में लिया गया है।[2]

'रत्नम्' - 'दधाति रत्नं विधते' इस ऋचा में रत्न को धारण करने एवं रत्न को देने का विधान बताया है और रत्नों को सूर्य द्वारा आश्रित बताया है।[3]

'रत्नमुषो'- रत्नं उषः - रत्न तथा ऐश्वर्य यहाँ पर रत्न और ऐश्वर्य प्रदान करने की बात की है इससे स्पष्ट होता है कि रत्न धनादि सुखदायक होते हैं।[4] **'धतं रत्नानि'**- रत्नादि उत्तम पदार्थों को धारण करने और इन के द्वारा वृद्धावस्था में मंगल वाणी तथा सदा पवित्र बने रहते हैं इससे स्पष्ट होता है कि रत्न धारण करने से धनादि की वृद्धि एवं आयु की वृद्धि और वृद्धावस्था तक वाणी पवित्र बनी रहती है।[5]

'सुरत्नासो....... सुरत्नासः - 'धनादि ऐश्वर्य सम्पन्न'

यहाँ पर सुरत्न से यह सिद्ध होता है कि रत्न-उत्तम से उत्तम कोटि के होते हैं चाहे वे धन के रूप में ही क्यों न हों।[6] **'रत्नम्'** - रत्नों को रमणीय अर्थ में भी लिया गया है।[7]

'रत्नानि'- विविध रमणीय पदार्थ 'शुद्धो रत्नानि' यहाँ पर परम पवित्र रमणीय पदार्थ के अर्थ में रत्न शब्द को लिया है।[8]

---

१. स रत्नं मर्त्यो वसु विश्वं तोकमुत त्वना अच्छा गच्छत्यस्तृतः। ऋ०- ०१/४२/०६

२. अग्ने तृतीये सवने हि कानिषः पुरोडाशं सहसः सूनावाहुतम्।
अथा देवेष्वध्वरं विपन्यया धा रत्नवन्तममृतेषु जागृविम्।। तदेव- ०३/२८/०५

३. प्रतिद्युतानामरूषासो अश्वश्चित्रा।
याति शुभ्रा विश्वपिशा रथेन दधाति रत्नं विधते जनाय।। तदेव- ०७/७५/०६

४. नो गोमद्वीरवद्धेहि रत्नमुषो अश्वावत्पुरुभोजो अस्मे।
मानो बर्हिः पुरुषता निदे कर्यूयं पात स्वस्तिभिः सदानः।। तदेव- ०७/७५/०८

५. नू हवमा श्रृणुंत युवाना यासिष्टं वर्तिराश्विनाविरावत्।
धतं रत्नानि जरतं च सूरीन्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः।। तदेव- ०७/६७/१०

६. इयमिन्द्रं वरुणमष्ट मे गीः प्रावक्तो के तनये तूतुजाना।
सुरत्नासो देववीतिं गमेन यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः।। तदेव- ०७/८६/०५

७. अस्ति देवा अहोरुर्वस्ति रत्नमनागमः आदित्य अद्भुतैनसः। तदेव- ०८/६७/०७

८. इन्द्र शुद्धो हि नो रयि शुद्धो रत्नानि दाशुषे।
शुद्धो वृत्राणि जिहनसे शुद्धो वाजं शिषासीस।। तदेव- ०९/६६/०६

'रत्न' - यहाँ रत्न को असत्कर्मियों को विपरीत फल देने वाला और सत्कर्मी को शुभ देने वाला बताया है अर्थात् शुभ कर्म करने वाले, रत्न धारण करने से शुभ फल प्राप्त होता है।[1]

'रत्नधाः'- नाना प्रकार के रत्नों को धारण करते हुए यहाँ नाना प्रकार से ज्ञात होता है कि रत्न नाना प्रकार के होते हैं तथा नाना प्रकार के फल को देने वाले होते हैं।[2]

'वाजरत्नाम'- **'जरित्रे वाजरत्नाम्'** हम स्तावक लोगों को धन ज्ञान और रत्नपूर्ण बनायें।

इस ऋचा में धन और रत्न पृथक्-पृथक् बताने से अर्थ स्पष्ट कर देने से यह सिद्ध होगा कि रत्न शब्द एक बहुमूल्य पदार्थ के लिए प्रयोग किया जाता है।[3]
वेदों में रत्नों के विभिन्न नाम इस प्रकार से हैं -

वज्रेन्द्रनील मरकत कर्केत्तर पद्मराग रुधिराख्याः।
वैदूर्य पुलक विमलकराज मणि स्फटिक शशिकान्ताः।।
सौगन्धिक गोमेदैशङ्क महानील पुष्परागाख्याः।
ब्रह्ममणि ज्योतिदरस सस्यकमुक्ता प्रबलानि।।

२. अथर्ववेद

अथर्ववेद में मणियों का वर्णन किया गया है। यह मणियाँ धातुओं के अतिरिक्त वनस्पतियों के भी अंग मानी गई हैं जिनका उपयोग विभिन्न व्याधियों में करने का विधान है। यह मणिबन्ध में रोग निवारणार्थ बाँधे जाते थे। यह मणियाँ हैं- दर्भमणि जो अपने तथा पराए क्रोध को नष्ट करती है, राष्ट्रों की रक्षा करती है, शत्रुनाशक है, द्वेषी के हृदय को जलाती है। शक्तिशाली जंगिडमणि दीर्घायु प्रदान करती है, सर्वरोगनाशक है। अभिवर्तमणि विजयप्रद तथा शत्रुनाशक है। अस्तृतमणि में सैंकड़ों शक्तियाँ और सहस्रों बल हैं। वरण मणि तेज और यश को देने वाली है। वरण मणि अपशकुन तथा निंदा से भी बचाती है। इन मणियों का धारण करने से मनुष्य बलशाली शत्रुओं से रहित तथा व्याधियों से बच सकता है।[4]

---

१. स्वयं कविर्विधर्तरि विप्राय रत्नमिच्छति। यही मर्मृज्यते धियः।। ऋ०- ०६/४७/०८
२. अभि त्रिपृष्ठं वृषणं वयोधामाङ्गूषामावशन्त वाणीः।
वना वसानो वरुणो न सिन्धून्वि रत्नधा दयते वार्याणि। तदेव- ०६/०६/०२
३. आराच्छत्रुमपबाधस्व दुरमुग्रो यः शम्वः पुरुहूत तेन।
अस्मे धेहि यवमद्गोमदिन्द्र कृधी धियं जरित्रे वाजरत्नम्। तदेव- १०/४२/०७
४. अयंदर्भो विमन्युकः स्वाय वारणाय च अथो सहस्वान् जंगिडः प्राण आयूंषि तारिषत्
अयं नो विश्वभेषजो जंगिडः पात्वहंसः। अभीवर्तो अभिभवः सपत्न [illegible]यणो पणिः अस्मिन्
मणावकेशतं वीर्याणि सहस्रं प्राणाः। तेजसा मा समुक्षतु यशसा समभक्तु मा परिक्षवात्
शकुने पापवादात्..........वरणो वारयिष्यते।। अथर्ववेद-सुभा०-पृ० २५२-२६०

अथर्ववेद में विभिन्न प्रकार की मणियों का वर्णन किलता है। अथर्ववेद में वर्णित मणियाँ मनुष्य को विभिन्न प्रकार की व्याधियों से बचाती हैं, सुख प्रदान करती हैं। दीर्घायु देती हैं, भय से रक्षा करती हैं, विजय को देने वाली हैं, पाप कर्म करने से बचाती हैं, अपने तथा पराए क्रोध को नष्ट करती हैं, श्रद्धा, यज्ञ करने की प्रेरणा तेज को देती हैं। कीर्ति तथा ऐश्वर्य को देती हैं, अभिसार कर्म नाशक है, अन्न इत्यादि को देने वाली हैं, शत्रुओं को अल्पायु में ही मारने वाली हैं। कृत्या रोगों को नष्ट करने वाली हैं। यह मणियाँ वनस्पतियों के अंग हैं जो विभिन्न प्रकार से मनुष्य के लिए लाभप्रद हैं। यह मणियाँ इस प्रकार हैं- दर्भमणि, फलमणि, वरणमणि, अस्तृत मणि, जंगिड मणि, अभिवर्त मणि, पर्ण मणि, औदुम्बर मणि इत्यादि।[1]

३. पुराणों में-

अग्निपुराण, गरुड़ पुराण, विष्णुधर्मोत्तर पुराण, मत्स्यपुराण तथा अन्य पुराणों आदि में रत्नों का विवरण विस्तृत रूप में किया गया है। रत्नों की उत्पत्ति, परीक्षा एवं धारण आदि गुणों का वर्णन है। सर्वप्रथम अग्निपुराण में वज्र की श्रेष्ठता बतलाकर परीक्षा विधि, लक्षण आद्रि बताए हैं। मरकत मणि, स्फटिक, पद्मराग मुक्ता, इन्द्रनील मणि तथा वैदूर्य की परीक्षा तथा लक्षण बताए गए हैं। इसके अतिरिक्त गन्धसस्य, चन्द्रकान्त, सूर्यकान्त, पुलक, कर्केतन, पुष्पराग, ज्योतिरस राजपट्ट, राजमय, शुभसौगन्धिक, गंज, शंख, ब्रह्ममय, गोमेद, रुधिराख्य, धूली, तुष्यक आदि रत्नों का भी उल्लेख मिलता है।[2]

गरुड़ पुराण में वज्र, मुक्ता, पद्मराग, मरकत मणि, इन्द्रनील, वैदूर्य, पुष्पराग, कर्केतन, भीष्मक, पुलक, रुधिराख्य, स्फटिक, विद्रुम आदि रत्नों की उत्पत्ति, गुण-दोष तथा लक्षणों का वर्णन है।[3]

विष्णुधर्मोत्तरपुराण में भी रत्न विषयक सामग्री सन्निहित है इसमें कई प्रकार के रत्नों का उल्लेख किया गया है यथा- वज्र, मरकत, पद्मराग, मुक्ता इन्द्रनील आदि। इस पुराण में रत्नों के भेद बताते हुए लक्षण गुण-दोष आदि बताए हैं। विष्णुधर्मोत्तर पुराण में नव रत्नों को महा रत्न माना गया है।[4]

---

१. अर्थव० सुभा०- पृ० - २५२-२६०
२ पुराणविमर्श- पृ०- १५१

३- ग० पु०- पृ०- ०२
४. वि० धर्मो०, द्वितीय खण्ड- अ० - १३-१५

४. अर्थशास्त्र-

कौटिल्य अर्थशास्त्र का कोषप्रवेश्यरत्नपरीक्षा अध्याय रत्नशास्त्र की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। इस अध्याय में कोष में रखने योग्य रत्नों की परीक्षा किस प्रकार से करनी चाहिए। उसका वर्णन किया गया है। सर्वप्रथम इसमें मोती के दस उत्पत्ति स्थान बताए हैं- ताम्रपर्णिक, पाण्डयवाटक, पाशिक्य, कौलेय, चौर्णेय, माहेंद्र कार्दमिक, स्रौतसीय, ह्रादीय, हैमवत मोती की उत्पत्ति के तीन कारण बताए गए हैं- शुक्ति, शंख और प्रकीर्णक (गजमुक्ता तथा सर्पमणि)। दूषित मोतियों के तेरह प्रकार बताए गए हैं- मसूरक, त्रिपुटक, कूर्मक, अर्धचन्द्रक, कंचुकित, यमयक, कर्तक, खरक, सिक्थक, कामण्डलुक, श्याव और दुर्विद्ध। उत्तम कोटि के मोती-मोटा, गोल, तलरहित, दीप्तिमान श्वेत, वजनी चिकना और स्थान पर विधे हुए होते हैं। मोतियों से विभिन्न प्रकार की मालाओं को भी बनाया जाता है। जिनके नाम हैं- शीर्षक, उपशीर्षक, प्रकाण्डक अवधाटक और तरलप्रतिबन्ध।[1]

मणियों के तीन उत्पत्ति स्थान बताए गए हैं- कौट, मालेयक तथा पारसमुद्रक। मणियों में पाँच प्रकार के माणिक्य का भी वर्णन मिलता है। वैदूर्य मणि आठ प्रकार की बताई गई है- उत्पलवर्ण, शिरीषपुष्पक, उदकवर्ण, वंशराग, शुकपत्रवर्ण, पुष्पराग, गोमूत्रक, गोमेदक। इन्द्रनीलमणि भी आठ प्रकार की बताई गई है। नीलाबलीय, इन्द्रनील, कलायपुष्पक, महानील, जाम्बवाभ, जीमूतप्रभ नन्दक और स्रवन्मध्य। स्फटिक मणि भी चार प्रकार की बताई गई है- शुद्धस्फटिक मूलाटवर्ण, शीतवृष्टि और सूर्यकान्त।[2]

मणियों के ग्यारह प्रकार के गुण तथा सात प्रकार के दोष बताए गए हैं। मणियों की अठारह प्रकार की उपजातियाँ भी बताई गई हैं। हीरे की उत्पत्ति स्थान बताकर उसके आकार प्रकार तथा गुण-दोष बताए गए हैं। प्रवाल के दो उत्पत्ति स्थान बताकर उसके रूप-रंग वर्णित किए गए हैं।[3]

---

१. ताम्रपर्णिकं, पाण्डयवादकं, पाशिवायं, कौलेयं, चौर्णेयं, माहेन्द्रं, कार्दमिकं, स्रौतसीयं, ह्रादीयं, हैमवतं च मौक्तिकम्। शंख शुक्तिः प्रकीर्णकः च योनयः। मसूरकं त्रिटकं कूर्मकमर्धचन्द्रं कञ्चुकितं यमकं कर्तकं खरकं स्क्थिकं कामण्डलुकं श्यावं नीलं दुर्विद्धं चाप्रशस्तमउ स्थूलं वृत्तं निरतलं भ्राजिष्णु श्वेतं गुरु स्निग्धं देशविद्धं च प्रशस्तम् शीर्षकंमुपशीर्षकं प्रकाण्डकमवघाटकं तरलप्रतिबन्धं चेति यष्टिप्रभेदाः।

अ० श० - १५३

२. मणिः कौटो मालेयकः पारसमुद्रकश्च। सौगन्धिकः पद्मरागः अनवद्यरागः पारिजातपुष्पकः बाल सूर्यकः। वैदूर्यः उत्पलवर्णं शिरीषपुष्पकं उदकवर्णो वंशरागः शुकपत्रवर्णः पुष्यरागो गोमूत्रको गोमेदकः। नीलावलीय इन्द्रनीलः कलायपुष्पको जाम्बवाभो जीमूतप्रभो नन्दकः स्रवन्मध्यः। शुद्धस्फटिकः मूर्लाष्टवर्ण शीतवृष्टिः सूर्यकान्तश्चेति मणयः।

अ० शा० - १५४

३. अ० शा०- पृ० - १५४-१५६

५. शुक्रनीति-

शुक्रनीति में विभिन्न प्रकार की नीतियों का उल्लेख मिलता है। यह ग्रन्थ रत्न सम्बन्धी सामग्री की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इसमें वज्रादि नव महारत्नों का वर्णन मिलता है। सर्वप्रथम इसमें लाल वर्ण के इन्द्रगोप के समान, माणिक्य की कान्ति का वर्णन है तथा ऐसा माणिक्य सूर्य को प्रिय है। मोती जो पीला, सफेद तथा श्यामल है ऐसी कान्ति से युक्त मोती चन्द्र को प्रिय है।[१] मूंगा जो पीलापन लिए हुए है वह मंगल ग्रह का प्रिय है तथा मोर व चास के पंखों के समान समान वर्ण पाची बुध को हितकर है।[२]

जो पुखराज पीली झलक देता है वह गुरु का प्रिय है तथा तारों के समान जिसकी कांति हो ऐसा वज्र शुक्र को प्रिय है।[३] मेघ के समान कान्तिवाला कृष्ण इन्द्रनील शनैश्चर को प्रिय है। पीलापन लिए लाल कान्तिवाला गोमेद राहु को प्रिय है।[४] बिलाव के नेत्रों के समान कांति और जिसमें लकीर हो ऐसा वैदूर्य केतु को प्रिय है। रत्नों में श्रेष्ठ वज्र को ही माना है और गोमेद तथा मूंगा नीचे माने गए हैं।[५] विद्रुम, मूंगा और मोती इनके बिना सब रत्न वृद्धावस्था (हीनपन) को प्राप्त नहीं होते हैं।[६] मोती की उत्पत्ति मत्सर्य, सर्प, शंख, वराह, बांस, मेघ, शुक्ति (सीप) इनसे बताई गई है। मोती अधिकतर शुक्ति से उत्पन्न बतांए गए हैं। काला, सफेद, पीला, रक्त जिसमें दो चार-सांत कंचुक (पड़दे) हों ऐसा मोती कनिष्ठ, मध्यम श्रेष्ठ शुक्ति से उत्पन्न माना गया है।[७] पुत्र की कामना जिन स्त्रियों को होती है उनको कभी भी वज्र को धारण नहीं करना चाहिए। अधिक बार मोती तथा मूंगे का धारण करने से वे हीन हो जाते हैं।[८]

---

१. रवेः प्रियंरक्तवर्णमाणिक्यंत्विद्रगोपरुक्।
रक्तपीतसितश्यामत्त्छर्विमुक्तप्रिया विधोः।। शुक्र० - श्लो० ५७

२. सपीतरक्तरुग्भामप्रियंविद्रुमुत्तमम्।
मयूरचासपत्राभापाचिर्बुधहिताहरित्।। तदेव - श्लो० ५८

३. स्वर्णच्छविः पुष्पकरागः पीत वर्णोगुरुयिः।
अत्यंतीव शदंवज्रंतारकाभंकवेः प्रियम्।। तदेव - श्लो० ५६

४. हितः शनेरिन्द्रनीलोह्यसितोधनमेघरुक्।
गोमेदः प्रिय.द्राहोरीषत्पीतारुणप्रभः।। तदेव - श्लो० ६०

५. ओत्वक्षमाश्चलत्तंवैदूर्यकेतुप्रीति.त्।
रत्नश्रेष्ठतरंवज्रंनीचं गोमेदविद्रुमम्।। शुक्र०- श्लो० ६१

६. नजरांयां तिरत्नानिविद्रमंमौक्तिकंविना।
राजादौष्टयाच्चरत्नानांमूल्यकं हीनाधिकंभवेत्।। तदेव - श्लो० ७२

७. मत्स्याहिशंखवाराहवेणुजीमूतशुक्तितः। जायतेमौक्तिकंतेषुभूरिशुत्तयुद्भंवस्मृतम्।।
तदेव - श्लो० - ७३

८. नद्यारयेत्पुत्रकामनारीवज्रंकदाचन। कालेनहीनंभवतिमौक्तिकविद्रुमंधृतम्।। तदेव- श्लो० -६७

रत्नज्ञों ने उन्हीं रत्नों को श्रेष्ठ माना है जो अच्छे कोण से युक्त हों, अच्छी कान्ति और खांड की आकृति को, कमल दल के तुल्य हो, चिकना तथा गोल हो, ऐसे रत्नों के श्रेष्ठ बतलाया गया है।[1] जो रत्न श्रेष्ठ तथा उत्तम होते हैं वह रत्न लक्ष्मी, पुष्टि, कीर्ति, शूरता, अवस्था इनको देता है। कमल के समान जिसकी कांति हो ऐसा पद्मराग माणिक्य का ही भेद माना गया है।[2]

६. शिशुपाल वध

शिशुपाल वध के अनेक सर्गों के श्लोकों में भिन्न-भिन्न रत्नों का वर्णन हुआ है। द्वितीय सर्ग्र में चमकते हुए जड़ी हुई पद्मराग मणियों की कान्ति का वर्णन हुआ है।[3] तृतीय सर्ग में भगवान विष्णु का समुद्रमंथन के द्वारा कौस्तुभ मणि को धारण करने का वर्णन है। श्री कृष्ण के नीलमणि के स.श श्यामल शरीर तथा हरताल के समान पीले वस्त्रों को धारण करने का वर्णन मिलता है।[4]

तृतीय सर्ग में ही स्फटिकमणि से जड़ित द्वारिकापुरी के महलों तथा मरकतमणि से बनी हुई महलों की देहलियों का वर्णन है। भवनों के तोरणों पर लगाए गए हीरक नामक रत्नों की प्रभा का वर्णन है। इससे यह स्पष्ट होता है कि रत्नों की प्रभा का वर्णन है। इससे यह स्पष्ट होता है कि द्वारिका पुरी के महल रत्नों से जड़ित थे।[5]

चतुर्थ सर्ग में रत्नों की कान्ति का वर्णन इस प्रकार किया गया है कि रत्नों की सुवर्ण शिखरों से फैली हुई कान्ति से युक्त चट्टानें जो इन्द्रनीलमणि की तरह श्यामलता तथा भ्रमरों से बुलाती हुई लताओं से युक्त श्री कृष्ण भगवान ने इस प्रकार देखा।

---

१. सत्कीणं सुप्रभरत्नंश्रेष्ठंरत्नाविदोविदुः। शर्कराभंदलाभंचाचिपिठंवर्तुलोहितत्।
शुक्र० - श्लो० - ६४

२. श्रीपुष्टिकीर्तिशौर्यायुः करमन्यदसत्स्मृतम्। पद्मरागस्तु माणिक्यभेदः कोकनदच्छविः।।
तदेव - श्लो० - ६६

३. प्रोल्लसत्कुण्डलप्रोत पद्मरागदलत्विषा।
कृष्णोत्तरसङ्गरूचं विदधच्चौतपल्लवीम्।। शिशु० श्लो० - १६, सर्ग-२, पृ० - ५८

४. तेनार्म्भसां सारमयः पयोधेर्दध्रे मणिर्दीधितिदीपिताशः।
अन्तर्वसन्बिम्बगतस्तदङ्गे साक्षादिवालक्ष्यत यत्रः लोकः।। तदेव- श्लो०- ६, सर्ग-३, पृ० - ११३
स इन्द्रनीलस्थलनीलमूर्त्तीरराज कर्चू रपिशङ्गवासाः।
विसृत्ववरैरम्बुरूहां रजोभिर्यमस्वसुश्चित्र इवोदभारः।। तदेव- श्लो० - ११ - - -

५. स्फुरत्तुषारांशुमरीविजालैर्विह्नुताः स्फटिक सौधपङ्क्तिः।
आरुह्य नार्यः क्षणदासुथत्र नभोगता देव्या इव व्यराजन्।।
शुकाङ्गनीलोपलनिर्मातानां लिप्तेषु भासा गृहदेहलीनाम्।
यस्यामलिन्देषु न चक्ररेव मुग्धाङ्ना गोमथ्गोमुखानि।।
तामीक्षमाणः स पुरं पुरस्तात्प्रत्यप्रतोलोमतुलप्रतापः।
वज्रप्रभोद्भासि सुरायुधश्रीर्या देयसनेव परैरलङ्घया।। तदेव श्लो०- ४३,४८, ६४, सर्ग- ३

रैवतक पर्वत पर सूर्यकान्त मणियो, स्फटिक मणि की श्वेत प्रभा, इन्द्रनीलमणि की नीली प्रभा, मणियों मोती के समान शुभ्र कान्ति, चन्द्रकान्त मणि से बहने वाले जल प्रवाह, सूर्यकान्त मणि से निकली हुई अग्नि से सन्तप्त, महानील मणि का वर्णन किया गया है।[1]

द्वादश सर्ग में भवनों की सभा की इस प्रकार चमकता हुआ बताया गया है कि जिस प्रकार इन्द्रनीलमणि की हरित किरणों से हरित वर्ण हो तथा पद्मराग मणि से बनी हुई भूमि हो।[2] त्रयोदश सर्ग में नागमणि का वर्णन इस प्रकार किया गया है। जहाँ नागमणि रहती है वहीं उनके किरणों के सामीप्य से बार-बार मेघ गरजते हैं एवं वहीं पर वैदूर्य मणि की उत्पत्ति होती है तथा मेघों के गरजने से उस भूमि पर वैदूर्य मणि के अंकुर उत्पन्न होते हैं।[3]

७. कुमार सम्भव

कुमार सम्भव में रत्नों का वर्णन विभिन्न सर्गों के अनेक श्लोकों में हुआ है। द्वितीय सर्ग में रत्नों को उपहार के रूप में भेंट करने का वर्णन इस प्रकार किया गया है कि नदियों के स्वामी भी तारकासुर को भेंट करने योग्य रत्नों की प्रतीक्षा कर रहे हैं कि जब तक कि वे रत्न बढ़कर तैयार नहीं हो जाते हैं। इससे इस बात के संकेत

---

१. क्रान्तं रुचा काञ्चनवप्रभाजा नवप्रभाजालभृतां मणीनाम्।
श्रितं शिलाश्यामलताभिरामंत्ताभिरामन्त्रितषटपदाभिः।।
विभिन्न वर्णा गरुड़ाग्रजेन सूर्यस्य रध्याः पारितः स्मरूत्या।
रत्नैः पुनर्यत्र रुचा रुचं स्वामानिन्यिरे वंशकरीस्नीलै।।
फर्लाद्ररुष्णांशुकराभिमर्शात्कार्शानवं धाम पतङ्गकान्तै।
शर्शस यः पात्रगुणाद् गुणानां संक्रान्तिमाकान्तगुणतिरेकाम्।।
एकत्र स्फटिक तटांशुभिन्नीरा नीलाश्मद्युतिभिदुराम्भसोऽपरत्र।
कालिन्दीजलजनितश्रियः श्रायन्ते वैदग्धीमिह सरितः सुरापगायाः।।
इतस्ततोऽस्मिन् विलसन्तिं मेरोः समानवप्रे मणिसानुरागः।
मुक्तं मुक्तागौरमिह क्षीरमिवाभ्रैर्वापीष्वन्तर्लीनमहानीलदलासु।।
शस्त्रीश्यामैरंशुभिराशुद्रुतमम्भश्छायामच्छामृच्छति नीलीसलिलस्य।
सायं शशाङ्क किरणाहतचन्द्रकान्तनिस्यन्दिनीरनिकरेण कृताभिषेकाः।
अर्कोपलोल्लसितवह्नि भिरह्नि तप्तास्तीवं महाव्रतोमवात्र वरन्ति वप्राः।।
यस्यामहानीलतटोरिव द्रुताःप्रयन्ति पित्वा हिमपिण्डपाण्डुराः।
कालीर परस्ताभिरिवानुरञ्जिताः क्षणेन भिन्नाञ्जनवर्गतां धनाः।।
शिशु० सर्ग- चतुर्थ, श्लो०-३,१४,१६,२६,२७,४४,४७

२. निल्यनेषु लोहितकनिर्मिता भुवः शितिरत्नरश्मिहरिती.तान्तराः।
जमदग्निसूनुपितृतर्पतर्पाणीरपो वहति स्म या विरलशैवला इव।।
तदेव सर्ग- चतुर्थ, श्लो० - ६७

३. उरगेन्द्र मूर्धरुहरत्नसन्निधेर्मुहुरुन्नतस्य रसितैः पयोमुचः।
अभवन्यदङ्गणभुवः समुच्छ्वसन्नवबालवायजमणिस्थलाङ्कुराः।। तदेव- सर्ग-१५, श्लो०- ५२

मिलते हैं कि रत्न जल के जीव जन्तुओं अथवा किसी पदार्थ से समयानुसार पैदा होते हैं।[1]

तृतीय सर्ग में पार्वती ने जो आभूषण धारण किए हैं उन आभूषणों की आभा की तुलना पद्मराग मणि तथा मोती से की है। बादलों के ही बीच में वज्र के होने का वर्णन है कि वज्र से उत्पन्न होती है।[2] पंचम सर्ग में मुक्ता तथा रत्नों का वर्णन इस प्रकार किया गया है कि सप्तऋषियों ने जो यज्ञोपवीत धारण किए हैं वे मुक्ता से बने हुए हैं तथा उनकी अक्षमाला रत्नों से बनी हुई है।[3] सप्तम सर्ग में मोती तथा मरकत मणि का वर्णन इस प्रकार मिलता है कि स्त्रियों ने मोती के तोरणों से चित्रित चतुः स्तम्भ वाले मण्डप में मरकत मणि की शिला पर मंगल बाजाओं के बीच में पार्वती को स्नान करवाया। इससे स्पष्ट होता है उस समय भी रत्नों इत्यादि से शिला तथा तोरणों को सजाया जाता था। मंगल वेदी में चार मणियों से बने खम्भों का वर्णन है।[4]

सप्तम सर्ग में ही मणियों का वर्णन इस प्रकार हुआ है कि शंकर भगवान जो साँपों के आभूषण के रूप में धारण करते हैं उन साँपों ने केवल अपने शरीर मात्र को धारण किया है उनके ऊपर मणियाँ वैसी ही चमक रही हैं।[5] चन्द्रमा की किरणों के पड़ने के कारण चन्द्रकान्तमणियां से निकलने वाली जलबिन्दुओं का वर्णन इस प्रकार किया गया है इन्हीं जलबिन्दुओं की वर्षा से पहाड़ी ढालों पर सोए हुए मोर भी जाग रहे हैं।[6] सूर्यकान्तमणि तथा मोतियों का व्रर्णन भी अष्टम तथा नवम् सर्ग में किया गया है।[7]

---

१. तस्योपायनयग्नयानि रत्नानि सरितां पतिः। कथमप्यम्भसामन्ततरानिष्पत्तेः प्रतीक्षते।।
कु०सं०- ०२/३७, पृ० - ४६

२. अशोकनिर्भर्त्सितपद्मरागमा.ष्टहेमधु तिकीर्णकारम्।
मुक्ताकलापीकृतसिन्धुवारं वसन्पुष्पपाभरणं वहन्ति।। तदेव - श्लो - ३८

३. मुक्तायज्ञोपपवीतानि विभ्रतो हैमवल्कला। रत्नाक्षसूत्राः प्रव्रज्यां कल्पवृक्षा इवाश्रिताः।।
तदेव- ०३/३९- ४०

४. विन्यस्तवैदूर्यशिलातलेऽस्मिन्नाबद्धमुक्ता फलभक्तिचित्रे।
आवर्जिताष्टापदकम्भतौयेः सतूर्यमेनां स्नपयाम्बभूवुः।।
तस्मात् प्रदेशाश्च वितानवन्तं युक्तं मणिस्तम्भचतुष्टयेन।
पीतव्रताभिः परिग्रह्य निन्ये क्लृप्तासनं कौतुकवेदिमध्यम्।। तदेव- -४४, सर्ग-३,- ६६

५. यथाप्रदेशं भुजगेश्वराणां करिष्यता भरणान्तरत्वम्।
शरीरमात्रं वि.तिं प्रपेदे तथैव तस्थुः फणरत्नशोभाः।। तदेव- -३४, सर्ग- ७, - २१२

६. चन्द्रपादजनितप्रवृत्तिभिश्चन्द्रकान्तबिन्दुभिर्गिरः।
मेखलातरषुनिद्रितानमूम्बोधयत्यसमयेशिखण्डिनः।। तदेव- - ६७, सर्ग- ८,- २७३

७. लोहितार्कमणिभाजनार्पितम् कल्पवृक्षमधु बिभ्रती स्वयम्।
त्वामियं स्थितिमतीमुपागता गन्धमादनवनाधिदेवता।।
तदेव- श्लो०- ७४, सर्ग- ८, पृ०- २७६

निशासु यत्र प्रतिबिम्बितानि ताराकुलानि स्फटिकालयेषु।

दृष्ट्वा रतान्तच्युततारहारमुक्तभ्रमं बिभ्रति सिद्धवध्वः। तदेव - श्लो०-४, सर्ग - ९, पृ० - ३०४

फणों पर धारण की गई मणियों, वैदूर्य तथा स्फटिक मणियों का वर्णन द्वादश तथा त्रयोदश सर्ग में मिलता है।[1]

८. सुर्जनचरितमहाकाव्यम

सुर्जनचरितमहाकाव्य में भी विभिन्न रत्नों का वर्णन हुआ है। द्वितीय सर्ग के ५३वें श्लोक में भगवान विष्णु के वक्षः स्थल पर कौस्तुभमणि का वर्णन है।[2] अमूल्य मोती हीरों तथा महानील मणियों का वर्णन १३वें सर्ग के २४वें श्लोक में हुआ है।[3] चन्द्रकान्त मणि, प्रवाल का वर्णन तीसरे सर्ग के ६६वें श्लोक में हुआ है।[4] चन्द्रकान्त मणि हीरे तथा मणियों के समूहों का वर्णन छटे सर्ग के ५३, ५७, ५८वें श्लोकों में हुआ है।[5] चिन्तामणि, देदीप्यमान नील मणियों का वर्णन ११वें सर्ग के बारहवें, अट्ठाईसवें श्लोक में आया है।[6]

---

१. क) कपर्दमूद्वद्धमहीनमुर्धरत्नांशुभिर्भासुरमुल्लसद्भिः।
दधानमुच्चैस्तरमिद्धधातोः सुमेरूशृङ्गस्य समत्वमाप्तम्।।
कु० सं०- श्लो०- ६, सर्ग- १२, पृ०-३५७

ख) उत्कीर्णचामीकरपङ्जानां दिग्दन्तिदानुद्रवदूषितानाम्।
हिरण्यहंसव्रजवर्जितानां विदीर्णवैदूर्यमहीशलानाम्।। तदेव- श्लो०- ३६, सर्ग-१३,- -

ग) दैतेयदन्तावलिदन्तधातैः क्षुण्णान्तराः स्फटिकहर्म्यपक्ति।
महाहिनिमोकपनद्धजाला सवीक्ष्य तस्यां विषसाद सद्यः।। तदेव- श्लो०- ३७,सर्ग-१३- -

२. महसां निधयो महदिधेर्मणिवर्गाः कति वा न जाज्ञिरे।
हरिकण्ठतटाधिरोहणात् परमेकः प्रथितोऽस्ति कौस्तुभः।। सुर्जन० श्लो० - ५३, सर्ग-२

३. विनिर्मितं हीरदलैरूदारैः प्रालाम्बिमुक्तालीतकं समन्तात्।
दण्ड महानीलमयं दधनं पश्यातपत्रं सितमद्रिपुष्याः।। तदेव- श्लो० - २८, सर्ग- १३

४. अन्तः स्फरूत्याः परदेवताया महीयमानो महसा महोशः।
सुदुः सहोऽभूत् तपसा कृशोऽपि यथार्ककान्तः किरणेन भानोः।।
दधत्यो नरवरत्नानि रदनच्छदविद्रुमान्। दन्तमुक्ताकलापं च कण्ठकंबुभिरन्विताः।।
तदेव- श्लो० - ६८, सर्ग- ३

५. मध्यं दिनेऽपि देवस्य चूड़ाचन्द्रांशुशुचुम्बितम्। धरायन्त्रायथते यत्र चन्द्रकान्त.तं गृहम्।।
आपठौ विंलसनमुक्ताहीरकर्पूरकम्बुभिः। क्षीरनीरधिफेनाभौर्वितानैर्विततीकृतैः।।
यस्यां विपणि विरतारिमणिस्तवकदीधितीः। करैः शंखदनुष्णांशुरमुष्णत् प्रांशुभ्रिर्निशि।।
तदेव- श्लो०- ५३-५५, सर्ग- ६

६. फलन्ति चिन्तामणि कामधेनुकल्पद्रुमा काममर्थलीके।
मनुष्य लोके तु मनीषितानि हम्मीर एकः फलति स्म नित्यम्।।
स्फुरण महानीलमणीमनीज्ञं कदम्बमालाकलितोपपकण्ठम्।
सुपैसम्पादितसौम्यपादात्छायं मयूरच्छदचित्रमौलिम्।।
आरोग्यमाणानि तुला धनानि यथा-यथा बुद्धि मवापुरास्य।
तथातथा चैतसि वैदिकानां मनोरथा नैव ममुर्द्विजानाम्। तदेव- श्लो०- १२,२८, ४५ सर्ग - ११

९. नैषधमहाकाव्यम्

नैषधकाव्य में भी विभिन्न सर्गों के श्लोकों में रत्नों का वर्णन हुआ है। चिन्तामणि चिन्तित कर देने वाला रत्न विशेष है का वर्णन १४वें सर्ग के ८६ वें श्लोक में हुआ है।[१] मुकुट पर बहुमूल्य रत्नों का वर्णन ६०वें श्लोक तथा १५वें सर्ग में हुआ है।[२] माणिक्य, इन्द्रनीलमणियों तथा चिन्तामणियों से बनी हुई मालाओं का वर्णन १५वें, १६वें तथा १८वें सर्ग के ६९, १२ तथा चौथे श्लोक में हुआ है।[३]

द्वादश सर्ग में मेघ की ध्वनि से उत्पन्न रत्नों का वर्णन इस प्रकार किया गया है कि जब मेघ गरजते हैं तब विदूर नामक पर्वत पर रत्नों की उत्पत्ति होती है। इस पर्वत पर से लोग इच्छानुसार रत्न प्राप्त करते थे किन्तु मालय राजा याचकों को इच्छानुसार दान दे देता है. तो किसी को भी वहाँ से रत्नों को लाने की आवश्यकता नहीं हुई। इस प्रकार, से रत्नों का वर्णन किया गया है।[४]

१०. नैषध-परिशीलन

"पार्वती पद्मरागमणि की कान्तिवाले अशोकपुष्प स्वर्णकान्तिवाले कर्णिकार तथा मुक्ता कान्तिवाले सिन्धुवार आदि वसन्तकालीन पुष्पों के ही आभूषण पहने हुए थी।" [५]

---

१. सर्वाङ्गीणरसामृत स्तिमितया वचा स वाचस्पतिः
स स्वर्गीयमृगी.शामपि वशीकराय मारायते।
यस्मै यः स्पृहयत्यनेन स तदेवाप्नोति कि भूयसा
येनायं हृदये कृतः सुकृतिना मन्मन्त्र चिन्तामणि।। नैषध०- १४/८६, पृ०-८७८

२. अनर्ध्यरत्नौधमयेन मण्डितो रराज राजमुकुटेन मूर्द्धनि।
वनीयकानां स हि कल्पभूरूहस्ततो विमुञ्चन्निवमञ्जुमञ्जीस्म्।।
तदेव- १५/६०, पृ०-९१९

३. रराजदीर्मण्डनमण्डलीजुषोः स वज्र माणिक्यं यसितारूषत्यिषोः।
मिषेन वर्षन् दशदिङ्गमुखोन्मुखौ यशः प्रतापवानवनीजयार्जतौ।।
तदेव- १५/६९, पृ०-९२५

क) मसामालवलितोरणां पुरी निजद्वियोगादिव लम्बिलकाम।
ददर्श पश्यमिव नैवधः पथामथाश्रितोद्ग्रीविकमुन्नतैर्गृहैः।। तदेव-१६/१२, पृ०-१०२०
वीरसेन सुतकण्ठभूषणीभूतदिव्यमणि पंक्तिशाक्तिभिः।
कामनोमनमदर्थतागुणाद् यस्तृणीकृतसुपर्वपर्वतः। तदेव- १८/४,पृ०-११५०

४. अनेन राज्ञाऽर्थिषु दुर्भगीकृतो भवन धनध्वनजरत्नमेदुरः।
तथा विद्वरादिरदूरतां गमी यथा गामी तव केलिशैलताम्।। तदेव- १२/५५, पृ०-६३५

५. अशोकनिर्भर्त्सिततपद्मरागमाकृटहेमद्युति कर्णिकारम्।
मुक्ताकलापीकृतसिन्धुवारं वसन्तपुष्पाभरणं वहन्ती।। नैषध परिशीलन- ०३/५३

११. कादम्बरी-

कादम्बरी में रत्नों का वर्णन भिन्न-भिन्न स्थानों में हुआ है। भगवान विष्णु के वक्षःस्थल पर कौस्तुभ मणि तथा कैलाशादि के मध्य में स्फटिक मणियों का, इन्द्रनीलमणि का चलने-फिरने वाली मणि का, कठिन मणिमय फर्श का, अति विशाल, मुक्ताफल का वर्णन अर्थात् मोतियों से बने हुए उज्जवल हारों का वर्णन आया है। कादम्बरी के कथामुखे शबर चरित्र वर्णन में मणियों से बने हुए आभूषणों के वर्णन में, शंख, सीप, मुक्ता प्रवाल, मूंगा और मरकत मणियों के समूहों से युक्त बने बड़े-बड़े बाजारों के मार्गों एवं इन मणियों के चमकने का वर्णन आया है।[1]

१२. रघुवंशमहाकाव्यम्-

रघुवंशमहाकाव्य में रत्नों का वर्णन विभिन्न श्लोकों में हुआ है। रत्नों का वर्णन षष्ठ सर्ग तथा १०वें सर्ग (६३, ७६) के तीसरे श्लोक में हुआ है। १०वें सर्ग में ही भगवान विष्णु के वक्षः स्थल पर कौस्तुभ मणि का तथा अन्य रत्नों का भी वर्णन आया है। ११वें सर्ग (२६ श्लोक) में सूर्यकान्त मणि का वर्णन हुआ है। इसी सर्ग में ही मणियों से जड़े हुए भवनों का वर्णन है। तेहरवें सर्ग के चौथे श्लोक में समुद्र में ही रत्नों के बढ़ने का वर्णन है।[2]

१.क) स्फुरतकलालापविलासकोमला करोति रागं हृदि कौतुकाधिकम्।
रसेनशय्यां स्वयमभ्युपागता कथा जनस्याभिनवा वधूरिव।। का० कथामुखे-श्लो०-८,पृ०- ६

ख) स चित्रभानु तनयं महात्मनां सुतोत्तमानांश्रुतिशास्त्रशालिनाम्।
अवाप मध्ये स्फटिकोपलामलं क्रमेण कैलासमिव क्षमाभृताम्।। तदेव- श्लो०-१६,पृ०-१७

ग) शुकप्रभाश्यामायमानं मरकतयमिव पञ्चरमुद्वहता का० कथामुखे। तदेव- --- पृ०-५२

घ) अति कठिन- मणिकुट्टि- स्पर्शमसहमाना।। तदेव --- पृ०-५८

ङ) अति स्थूल-मुक्ताफल- घटितेन शुचिना हारेण - तदेव- पृ०-५५-५६

च) भूषणानि भूजङ्गमणयः वनकटि- मैदरङ्गरागः - तदेव -- पृ०- १५२

छ) प्रकट-शख-शुक्ति-मुक्ता-प्रवाल-मरकत-मणि शशिभिश्चामीकर। तदेव- -- पृ०-२४२

२.क) अनेन पाणौ विधिवदगृहीते महाकुलीनेन महीव मुर्वी।
रत्नानुविद्धार्णवमेखलाया दिशः सपत्नी भव दक्षिणस्याः।। रघु० शलो०-६३,सर्ग-६, पृ०-१६४

ख) कुलेनकान्त्या वयसा नवेन गुणैश्च तैस्ते विवनयप्रधानैः।
त्वमात्मस्तुल्यममु वृवीष्व रत्नं समागच्छतु काञ्चनेन।। तदेव शलो०-७६, सर्ग-६,पृ०-२०१

ग) अतिष्ठत्प्रत्ययापेक्षसंतति स चिरं नृपः। प्राङ्मन्थादनभिव्यक्तरत्नोत्पत्तिरिवार्णवः।।
तदेव-श्लो० ३ सर्ग- १०, पृ-३११

घ) उद्धेरिव रत्नानि तेजांसीव विवस्वतः। स्तुतिभ्यो व्यतिरिच्यन्ते दूराणि वीरतानि ते।।
तदेव- श्लो० ३ सर्ग-१०, पृ-३२५

ङ) गुणैराराधयामासुस्ते गुरुं गुरुवत्सलाः। तमेव चतुरूतेशं रत्नैरिव महार्णवाः।। तदेव-८५ -१० पृ-३४६

च) नैर्ऋतहनमथमन्त्रवन्मुनेः प्रापदस्त्रमवादानतोषितात्।
ज्योतिरिन्धननिपाति भास्करात्सूर्यकान्त इव ताडकान्तकः।। तदेव श्लो०-२६,सर्ग-११,पृ०-३५६

छ) तौ बलातिबलयोः प्रभावतो विधयोः पथि मुनि प्रदिष्टयोः।
मम्लतुर्न मणि कुट्टिमोचितौ मातृपार्श्व परिवार्तिनाविव।। तदेव श्लो०- ६, सर्ग-११,पृ०-३५४

तेरहवें सर्ग के १३, ४८, ५४, ६६ श्लोकों में मूंगे, मोती, इन्द्रनीलमणियों तथा स्फटिक मणियों का वर्णन है।[1] १६वें सर्ग के १, ६२, ६६ श्लोक में रत्नों का उपहार के रूप में वर्णन, मोतियों को गले के हार के रूप में धारण करने का तथा मोतियों को इन्द्रनीलमणियों के द्वारा गूंथे जाने का वर्णन है।। सतरहवें तथा अठारहवें सर्ग के २५ तथा ४२ श्लोकों में पद्मरागमणि, महानील मणि तथा मोतियों से बने हुए आभूषणों तथा मणियों का वर्णन है।[2]

१३. हर्षचरित- हर्षचरित के प्रथम उच्छवास में चन्द्रकान्त मणियों, स्फटिक मणियों, मुक्ता के समूहों, पद्मराग मणियों, मरकत मणि तथा रत्नों से जड़ित माला का वर्णन है।[3]

---

१. दर्भदधत्यर्कमरीचयोऽस्माद्धि वृद्धिमत्राश्नुवते वसूनि।
अबिन्धनं बह्निमसौ बिभर्ति प्रहलादनं ज्योतिरजन्यनेना।। रघु०-१३/४

२. क) तवाधररपर्धिप्तु विद्रुमेषु पर्यत्स्भेतत्सहसोर्भिवेगात्।
ऊर्ध्वाङ्कुरप्रोतमुखं कथंचित्क्लेशादपक्रामति शङ्खयूथम्।। तदेव-३/१३

ख) एषाप्रसन्नस्ति मितप्रवाहा सरिद्विदूरान्तरभावतन्वी।
मन्दाकिनी भाति नगोपकण्ठे मुक्तावली कण्ठगतेवभूमेः।। तदेव-१३/४८

ग) तस्मात्पुरः सरविभिंवणदर्शितेन सेवाविचक्षणहरीश्वदत्तहस्तः।
यानादवानरददूर महीतले मार्गेण भङ्गिरचित स्फटिकेन रामः।। तदेव-१३/६६

घ) अथेतरे सप्त सघुप्रवीरा ज्येष्ठं पुरोजन्मतयागुणेश्च।
चक्रुः कुशं रत्नविशेषभाजं सौभ्रात्रमेषां हि कुलानुसारि।। तदेव- १६/१, पृ०-५३०

ङ) आसां जलास्फालनतत्पराणां मुक्ताफलरपर्धिषु शीकरेषु।
पयोधरीत्सर्पिषु शीर्यमाणः संल्लक्ष्यते न च्धिदुरोप्य हारः।। तदेव- ६२/१६, पृ०-५५४

च) ततोनृपेणानुगताः स्त्रियस्ता भ्रजिष्णुना सातिशयः विर्रजुः।
प्रागेव मुक्ता नयनाभिरामाः प्राप्येन्द्रनीलं किमुतोमयूखम्।। तदेव- ६६/१६, पृ०-५५६

छ) मणौ महानील इति प्रभावादल्पप्रमाणेऽपि यथान मिथ्या।
शब्दो महाराज इति प्रतीतस्तथैव तस्मिन्यु युजेऽर्भकेऽपि।। तदेव- ६६/१६, पृ०-५५६

३. क) मध्ये च तस्य सार्धचन्द्रेण मुक्ताफलजालमालिना विविध रत्नखण्डरर्वाक्तेन शङ्खक्षीरफेन पाण्डुरेण क्षीरोदेनेव स्वयं लक्ष्मी दातुमागतेन गगनगतेनातपत्रेण कृतत्छायम् अत्त्छात्त्धेनाभरणद्युतीनां निवहेन दिशामिव दर्शनानुरागलग्नेन चक्रवालेनानुगम्यमानम आनितम्वविलाम्बिन्या मालतीशेखरस्रजा सकल भुवन विजयार्जितया रूपपताकयेव विरोजमानम् उद्वसर्पिभिः शिखण्डखण्डिका पद्मरागमणेररुणैरं शुजालैरट्टश्यमानवन देवताविधृतैबलिपल्लवैरिव प्रमृज्यमानमार्ग।। हर्ष०- पृ०-३६-३७

ख) कुसुम्भरागपाटलं पुलकबन्धचित्रं चन्डातकमन्तः स्फुटं स्फटिकभूमिरिव रत्ननिधानमादधाना हरिणामलकीफलनिस्तल मुक्ताफलेन स्फुरितस्थूलग्रह गणशारा शारदीव श्वेतविरलजलधरपटलावृता द्यौः कुचपूर्ण कलशयो रूपरि रत्नप्रालम्ब मालिकामरूणहरित किरण किसलयिनीं कस्यापि पुण्यवतो हृदयप्रवेशवन मालिकामिव बद्धांधारयन्ति प्रकोष्ठ निविष्टस्यैकैकस्य हाटक कठकस्य मरकत मकरवेदिकासनाथस्य हरितदृदिगन्तभिर्मखूखसन्तिभिः रथकमलिनीभिकिलक्ष्मी शखयानुगाम्यमाना।।

हर्ष०- पृ०- ५४-५५

इस चरित के द्वितीय उच्छवास में सूर्यकान्त मणि, मरकत मणि, पद्मरागमणि, मरकत मणि, नील मणि, पुखराज मणि, महानील मणि का वर्णन है।[1] तृतीय उच्छवास में वैदूर्यमणि चन्द्रकान्त मणि तथा कौस्तुभ मणि की किरणों का वर्णन गुच्छों के समूहों के रूप में बताया गया है।[2] चतुर्थ उच्छवास में समुद्र से निकलने वाली कौस्तुभ मणि, शंड्ख, इन्द्रनीलमणि, मूंगे तथा मोतियों का वर्णन है।[3]

१४. उत्तररामचरित-

प्रथम अंक के २६वें श्लोक में रोते हुए राम के आँसुओं की तुलना मुक्तामणियों के टूटे हुए कणों से की गई है।[4] निर्मल मणि का वर्णन द्वितीय अंक के चौथे श्लोक में हुआ है। जिसमें कहा गया है कि गुरु द्वारा दी गई शिक्षा मूर्ख तथा बुद्धिमान दोनों के लिए समान है। मूर्ख पीछे रह जाते हैं और बुद्धिमान आगे बढ़ जाते हैं क्योंकि इस प्रकार स्पष्ट होता है निर्मल पणि ही प्रतिबिम्ब ग्रहण करती है। मिट्टी आदि अन्य पदार्थ नहीं।[5] महापुरुषों के हृदयों को क्रुद्ध होने पर वज्र की तरह कठोर तथा कोमल होने पर पुष्प की तरह कोमल बताया गया है।[6] प्रेम का वर्णन करते हुए बताया गया है कि किस प्रकार से प्रेम आन्तरिक अज्ञात हेतु ही पदार्थों से परस्पर सम्बन्ध

---

१. ....गृहीतशिलाकवला इव ज्वजितसूर्यमणिशकलेषु शिलोच्चयेषु,
प्रत्य.श्यन्त दारुणा दावाग्नयः। हर्ष० - पृ०- ८८
.........कदली वनायमानं मरकत मखूखैः जन्यमानान्यदिवसमिव पद्मरागबालातपैः
क) उत्पद्यमानापराम्वरमितेन्द्रनीलंप्रभापटलैः आरम्भ्यमासापूर्णमिव महानीलमयूखखान्धकारैः
स्यन्दमानानेककालिन्दीसहस्रमिव गरुड़मणिप्रभाप्रतानैः, अड्गारकितमिव पुष्परागरूश्मिभिः।
तदेव- - पृ०-१०६

२. ....कौस्तुभभगस्तिस्तनेकेनेव। तदेव- - पृ०- २१२

३. ....एकेन्द्रनीलकुडलांशुश्यामलितेन.........
मुक्ताफलालोकधवनितेन..............
कण्ठ सूत्र ग्रथित भर्ङगप्रवालाड्कुर........... तदेव- पृ०-२३२-२५६

४. अयं ते वाष्पौधस्त्रुटित इव मुक्तमणि सरो
विसपेन धाराभिलुंठति धरणी जर्जरकणः।
निरुद्धोऽप्यावेगः स्फुरदधरनासापुटतया
परेषामुन्नेयो भवति च भराहमातहृदयः।। उत्तर राम० श्लो०-२६, अंक-१

५. वितरति गुरुः प्राज्ञे विद्यां यथैव तथा जड़े
न च खलु तयोर्ज्ञाने शक्ति करोत्थपहन्तिवा।
भवति च तयोर्भूयान भेद फलं प्रति तद्यथा।
प्रभवति शुचिविम्वग्राहे मणिर्न मृदां चयः।। तदेव- श्लो०-४, अंक-२

६. वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि।
लोकोत्तराणां चेतांसि को नु विज्ञातुमर्हति।। तदेव- श्लो०-७, अंक-२

स्थापित कर लेता है कि जिस प्रकार चन्द्रकान्त मणि चन्द्रमा के उदित होने प
पिघलने लगता है।[1]

कुश के भरताश्रम से लौटने पर दूर से ही उसके शब्द तथा इन्द्रनीलमणि के
श्यामिल शोभा का वर्णन छठे अंक के १७वें श्लोक में मिलता है।[2]

१५. मालविकाग्निमित्रम् –

मालविकाग्निमित्रम् नाटक में कहीं-कहीं रत्नों का वर्णन दिखाई देता है। प्रथ
अंक के छठे श्लोक में ही मोती का वर्णन आया है कि किस प्रकार स्वाति नक्षत्र
मेघ की बूँद सीप में पड़ने से मुक्ता उत्पन्न होती है।[3] ठीक उसी प्रकार योग्य शिष
में शिक्षक की कला प्रदत्त होती है।

पंचम अंक में ही बहुमूल्य रत्नों का उपहार के रूप में देने का वर्णन है।[4] इसी
अंक के १८वें श्लोक में मणि की जाति का वर्णन है।[5] तथा रत्नों का वर्णन किया गय
है कि शोधित करके अर्थात् संस्कृत करके ही सोने के साथ संयुक्त होता है।

१६- मेघदूत –

मेघदूत के विभिन्न स्थलों में रत्नों का वर्णन मिलता है। रत्नों की कान्ति क
वर्णन कुछ इस प्रकार से किया गया है- रत्नों की कान्तियों के मिश्रण के समान
दर्शनीय यह इन्द्रधनुष का टुकड़ा इस प्रकार प्रतीत हो रहा है मानो सामने सर्प बाँबी
के अग्र भाग से निकल रहा है। जिससे तुम्हारा यह श्यामल शरीर उज्जवल कान्ति
वाले मोर के पंख से मोपवेश धारण करने वाले विष्णु(कृष्ण) के श्यामल शरीर के
समान अत्यन्त शोभामय बन जाएगा।[6]

---

१. व्यत्तिषजति पदार्थानान्तरः कोऽपि हेतु
न खलु वहिरूपाधन्प्रीतयः संश्रयन्ते।
विकसति हि पतङ्गस्योदये पुण्डरीकं
द्रवति च हिमरश्मावुदगते चन्द्रकान्तः।। उत्तर राम० श्लो०-१३६, अंक-६

२. अथ कोऽयमिन्द्रमणिमेचकच्छविर्ध्वनिनैव बद्धपुलकं करोति माम्
नवनीलनीरधरधीरगजितवद्धकुड्मलकदम्बऽबरम्।। -तदेव- श्लो०-१७, अंक-६

३. पात्रविशेषे न्यस्तं गुणान्तरं व्रजति शिल्पमशधातु।
जलमिव समुद्रशुक्तौ मुक्ताफलतां पयोदस्यः।। माल० अग्नि० श्लो० -६,

४. दृष्टवय- माल० अग्नि० पृ० - १७६

५. अप्याकरसमुत्पन्ना मणि जाति संस्कृता।
जातरूपेणकल्याणि। न हि संयोगर्महति।। तदेव- श्लो०-८१

क) दृष्टवय- माल० अग्नि० पृ० - २१६

६. रत्नच्छायान्ततिकर इव प्रेक्ष्यमेततुरस्ताद्
वल्मीकाग्रात्प्रभवति धनुः खण्ड माखण्डलस्य
येन श्यामं वपुरतितरां कान्पिापत्स्यते।
बर्हेणेव स्फुरितरुचिना गोपवेषस्य विष्णोः।। मेघ० श्लो०-१५

तृतीयाऽध्याय

रत्न शब्द की व्युत्तपति, अर्थ, संख्या तथा प्राप्ति स्थान

३.० व्युत्तपति,

'रत्न' शब्द रम् धातु और णिच् प्रत्यय (रम्यति हर्षयाति,रम्+णिच्+न,तकारादेश) से बना है। (न०) (रम्यति हर्षयाति,रम्+णिच्+न,तकारादेश) जवाहर, बहुमुल्य चमकीले, छोटे और रंग-बिरंगे पत्थर (रत्नों की संख्या ५,६,९,या १४ बतलायी जाती हैं।) कोई भी बहुमुल्य प्रिय पदार्थ, कोई भी सर्वोत्तम वस्तु।[1]

३.१ अर्थ-

जवाहर, बहुमुल्य चमकीले, छोटे और रंग-बिरंगे पत्थर (रत्नों की संख्या ५, ६, ९,१४ या ८४ बतलायी जाती हैं।) कोई भी बहुमुल्य प्रिय पदार्थ, कोई भी सर्वोत्तम वस्तु। नपुंसक लिंगी- मणि, अपनी जाति में श्रेष्ठ आदि।[2] 'अमरकोश'

देय, तोहफा, धन, निधान, कीमती पत्थर, रत्न मोती, हीरे, ज्वाहरात, gift riches, treasures, precious stone, jewel, pearl. मुक्ता, पद्मराग, मरकेन्द्रनील, वैदूर्य, पुष्पराग, कर्केतन, पुलक रुधिराक्ष, भीष्म, स्फटिक, प्रवाल, रूपाणि त्र्योदश रत्नानि। श्रेष्ठ वस्तुओं का आश्रय शिव 'प्रभूतानि बहूनि रत्नानि श्रेष्ठवस्तूनि यस्मिन् स 'शिव':।[3] (Ratna) n. (1.ra-) a gift present, good wealth, riches ,the nine stones which are pear, ruby, topaz, diamond, Emerald, lapis, lazuli, coral, sapphire, Gomeda but according to manu's law book, Mahabharata and chanakya- any thing which is best of its kind.[4]

विभिन्न कोषकारों ने अपने अपने मतों के अनुसार रत्न शब्द का अर्थ दिया है।

---

१. रत्नं स्वजातिश्रेष्ठेऽपि-'रत्नम्' (न) के अपने जातिवालों (सामान्य वर्ग) में श्रेष्ठ हीरा आदि मणि-मणि अर्थ हैं। (रेति)।। रमयति। 'रमु क्रीडायाम'(भ्वा०आ०अ०)। ण्यन्तः। अन्तर्भावि तव्यर्थो वा, रमन्तेऽ स्मिन वा। 'रमेस्त च'(३०३/१४) इति नः। 'नऽवशि' '७/२ /८' इति नेट्। णेरनिटि (६/४/५१)। रत्नं स्वजातिश्रेष्ठेऽपि मणावपि नपुंसकम् इति मेदिनी '८३/१७' अमरकोश, पृ० ४४२,

२- द्रष्टव्य- संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ पृ०- ६३५

3- द्रष्टव्य- संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ पृ०- ६३५

a) Sanskrit Hindi English Dictionary, page- 483

4- Sanskrit English Dictionary- page- 864

ऋग्वेद में रत्न शब्द को विभिन्न अर्थों में लिया गया है। ऋग्वेद के प्रथम मण्डल प्रथम सूक्त प्रथम ऋचा में ही रत्न धातमम् शब्द का वर्णन आया है।[१] यहाँ पर स्वर्णादि बहुमूल्य रत्नों को देने अथवा धारण करने का वर्णन मिलता है। रत्न को इसलिए भी धारण किया जाता है कि वे उत्तम फल की प्राप्ति देते हैं। रत्नों को धारण करने से धन की प्राप्ति होती है और कुछ लेखकों ने 'निधि' के अर्थ में किया है। पुराण ग्रन्थों में दैत्यों तथा देवताओं के बीच हुए समुद्र मन्थन में चौदह रत्नों की प्राप्ति का उल्लेख हुआ।[२]

यहाँ रत्न की संज्ञा लक्ष्मी, उच्चैश्रवा घोड़े, ऐरावत हाथी इत्यादि को दी गई है। इन चौदह रत्नों में कौस्तुभ मणि का भी उल्लेख हुआ है, जो कि भगवान् विष्णु को प्राप्त हुई। जिन पत्थरों को बहुमुल्य रत्नों की संज्ञा दी गई उनके प्राप्ति स्थान नदी, पृथ्वी, पहाड़ तथा समुद्र को बताया गया है। जिन पहाड़ों से रत्न प्राप्त होते हैं, उन्हें रत्नाचल, विविध रत्नों के आश्रय स्थल होने के कारण पृथ्वी को रत्नगर्भा और समुद्र से प्राप्त होने वाले प्रवाल, मुक्ता आदि रत्नों के कारण समुद्र को रत्नाकर की संज्ञा दी गई।[३]

आचार्यों ने रत्नों और उपरत्नों का विभाग करते हुए नौ पाषाणों को रत्न तथा दूसरों को उपरत्न माना है। नौ रत्नों में वज्र, नीलम, पुष्पराग माणिक्य, मरकत, गोमेदक, वैदूर्य तथा प्रवाल माने गए हैं। इनमें मुक्ता और मूंगा को पाषाण की संज्ञा नहीं दी जा सकती है क्योंकि दोनों ही समुद्र से प्राप्त होते हैं। एक सीप से तथा दूसरा समुद्र की भीतर की जड़ों से। वेदों में **'रत्न'** शब्द का प्रयोग कीमती वस्तु और खजानों के अर्थ में हुआ है। प्राचीन समय में मणि को धागे में पिरोकर गले में पहना जाता था। मणि का अर्थ तावीज की तरह पहनने वाले रत्नों से था।[४]

अतः देखा जाता है कि **'रत्न'** शब्द का प्रयोग भिन्न भिन्न अर्थों में हुआ है। किंतु बहुत से आचायों ने रत्न शब्द का अर्थ हीरा प्रवाल आदि के अर्थ में किया है। विभिन्न कोषकारों ने अपने अपने मतों के अनुसार रत्न शब्द का अर्थ दिया है।

---

१. अग्मीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्।
होतारं रत्नधातमम्। ऋग्वेद - ०१/०१/०१

२- क) द्रष्टव्य- शि० म०पु० पृ०- ५२७
ख) द्रष्टव्य- स्क० पु० अ०- ६
ग) महाभारत प्रथम खंड अ०- २८

३- द्रष्टव्य हि० वि० ,पृ०-३३

४- द्रष्टव्य रत्न परीक्षादि सप्त ग्रन्थ संग्रह पृ०- १२

३.२- रत्नों की संख्या -

वेदों में इन बीस रत्नों का वर्णन मिलता है- वज्र, इन्द्रनील, मरकत, कर्केतर, पद्मराग, रुधिराख्या, वैदूर्य, पुलक, विमलकराजमणि, स्फटिक, शशिकान्त, सौगन्धिक, गोमेद, शंख, महानील, पुष्पराग, ब्रह्ममणि, ज्योतिरख, सस्यकमुक्ता, प्रवाल आदि।[1]

१. अथर्ववेद-

अथर्ववेद में रत्नों के अतिरिक्त मणियों का उल्लेख भी मिलता है। दर्भमणि, जंगिडमणि, अभीवर्तमणि, अस्तृतमणि, वरणमणि, फालमणि,पर्णमणि, औदुम्बरमणि, शंखमणि, शतवारमणि, प्रतिसरमणि इन ग्यारह प्रकार की मणियों का वर्णन मिलता है। मणियों की अठारह प्रकार की उपजातियाँ भी इस प्रकार हैं :-

१. विमलक (श्वेत हरित वर्णों से मिश्रित), २. सस्यक (नीली), ३. अंजनमूलक (नील-श्याम वर्ण मिश्रित), ४. पित्तक (गाय के पित्त के समान), ५. सुलभक (श्वेत), ६. लोहिताक्ष (किनारों पर लाल और केन्द्र में श्याम), ७. मृगाश्मक (श्वेत-अरुण-मिश्रित), ८. ज्योतीरसक (श्वेत अरुण मिश्रित), ९. मैलेयक (शिंगरफ़ की भान्ति), १०. अहिच्छत्रक (फीके रंग वाली), ११. कूर्प (खुरदरी), १२. प्रतिकूर्प (दागी), १३. सुगन्धि कूर्प (मूँगवर्णी), १४. क्षीरपक (दुग्ध धवलं), १५. शुक्ति चूर्णक (अनेक रंगों वाली), १६. शिलाप्रवालक (मूँगे के समान), १७. पुलक (केन्द्र में काली) और १८. शुक्र पुलक (केन्द्र में श्वेत)।[2]

२- अग्नि पुराण-

अग्नि पुराण में ३५ प्रकार के रत्नों का उल्लेख हुआ है। ये रत्न हैं- वज्र (हीरा) मरकत् पद्मराग मुक्ता, महानील, इन्द्रनील, वैदूर्य, गन्धसस्य, चन्द्रकान्त, सूर्यकान्त, स्फटिक, पुलक, कर्केतन, पुष्पराग, ज्योतीरस, राजपट्ट, राजमय, शुभसौगन्धिक, गंज, शंख, ब्रह्ममय, गोमेद, रुधिराक्ष, धूली, मरकत, तुष्यक, सीस, पीलु, प्रवाल, गिरिवज्र, भुजंगमणि, वज्रमणि, टिट्टिभ, भ्रामर और उत्पल हैं।[3]

१- द्रष्टव्य 'हिन्दुत्व' एवं सस्कृत ' वैदिक साहित्य का इतिहास'

२- द्रष्टव्य 'अथर्वसुभषीतावली'

३- रत्ननां लक्षणं वक्ष्ये रत्नं धार्य्यमिदं नृपैः। वज्रंमरकतं रत्नं पद्मरागंच मौक्तिकम् ।।
इन्द्रनीलं महानीलं वैदूर्य्यंगन्धशस्यकंम्। चंद्रकान्तं सूर्य्यकान्तं स्फटिकं पुलकं तथा।।
कर्केतनं पुष्परागं तथा ज्योतिरसं द्विज। स्फटिकं राजपंट्टंच तथा राजमयं शुभम्।।
सौगन्धिकं तथा गज्जं शंखव्रह्ममयं तथा। गौमेदं रुधिराक्षंच तथा भल्लातकं द्विज।।
धूलो मरकतंचैव तुथकं सोस मेवच। पोलु प्रवालकंचैव गिरिवज्रद्विजोत्तम्।।
भुजंगममणिंचैव तथा वज्रमणिं शुभम्। टिट्टिभं च तथा पिण्डं भ्रामरं च तथोत्पलम्।।
अग्नि पुराण २४६ / १-६

३. गरुड पुराण-

गरुड पुराण में तेरह रत्नों का वर्णन मिलता है। इन रत्नों में वज्र (हीरा) मुक्ता, पद्मराग, मरकत, इन्द्रनील, वैदूर्य, पुष्पराग, कर्केतन, भीष्मक, पुलक, रुधिराख्य, स्फटिक तथा विद्रुम का वर्णन है।[1]

४. विष्णुधर्मोत्तर पुराण-

विष्णुधर्मोत्तर पुराण में ३४ प्रकार के रत्नों का उल्लेख हुआ हैं यह रत्न हैं वज्र, मरकत, पद्मराग, मुक्ता, इन्द्रनील, महानील, वैदूर्य, इन्द्रकान्त, सूर्यकान्त, स्फटिक, पुलक,कर्केतन, पुष्पराग, ज्योतिरस, राजवर्त, राजमय, शुभसौंगधिक, शंख, ब्रह्ममय,गोमोद, रुधिराक्ष, सस्यक, बल्लातक, धूलीमरकत, तुक्तूकं, पलु, प्रवाल, गिरिवज्र, भागर्व, भुजगेशमणि, वज्रमणि, टिटिभ, भ्रामार तथा उत्पल हैं। विष्णुधर्मोत्तर पुराणमें नव रत्नों को ही महारत्न माना है। ये रत्न मोती, हीरा, लहसुनिया, माणिक, पोखराज, गोमेद, नीलम, पन्ना और मूंगा हैं। विष्णुधर्मोत्तर पुराण में भी रत्नों के भेद दिए गए हैं।[2]

५. बृहत्संहिता-

वराहमिहिर कृत बृहतसंहिता में २२ प्रकार के रत्नों का उल्लेख हुआ है। यह रत्न हैं। व्रज्र (हीरा), इन्द्रनील, मरकत(पन्ना), कर्केतन, पद्मराग, रुधिराख्य वैदूर्य्य, पुलक, विमलक, राजमणि, स्फटिक, चन्द्रकान्त, सौगन्धिक, गोमेद, शंख, महानील पुष्पराग, ब्रह्ममणि, ज्योतिरस, सस्यक, मुक्ता तथा मूंगा है।[3]

इन रत्नों में वज्र मोती, पद्मराग और मरकतमणि का विस्तार से विवेचन हुआ है। वराहमिहिर ने एक ही रत्न के अनेक प्रकारके भेद गिनाए हैं जैसे शशिकान्त स्फटिक का ही एक भेद है। महानील और इन्द्र नील नीलम है। तथा सौगन्धिक और पद्मराग माणिक के ही भेद हैं। भावप्रकाशविघण्टु में नौ प्रकार के महा रत्नों का वर्णन मिलता है।[4]

१- द्रष्टव्य गरुड पु०- अध्याय- ६८-८०

२- वज्र मरकतं चैव पद्मरागं च मौक्तिकम्। इन्द्रनीलं महानीलं वैडूर्यमथ सस्यकम् ।।
इन्द्रकान्तं सूर्यकान्तं स्फटिकं पुलकं तथा। कर्केतनं पुष्परागं तथा ज्योतिरसं द्विज।।
स्फटिकं राजवर्त च तथा राजमयं शुभम्। सौगंधिकं तथा सख्यं शंखब्रह्ममयं तथा।।
गोमेधं रुधिराक्षं च तथा वल्लातकं द्विज। धूलीमरकतं चैव तुक्तूकं शेषमेव च।।
पलुम प्रवालकं चैव गिरिवज्र च भार्गव। भुजगेशमणिं चैव तथा वज्रमणिं शुभम्।।
टिटिभंच तु तापिच्छं भ्रामरं च तथोत्पलम्। वि०धर्मो०, द्वितीय खण्ड अ०-१३-१५

३- वजेन्द्रनीलमरकतकर्केत्ररपद्मरागरु[illegible]राख्याः। वैदूर्यपुलकविमलकराजमणिस्फटिकशशिकान्ताः।।
सौगन्धिकगोमेदकशंखमहानीलपुष्प[illegible]ाख्याः। ब्रह्ममणिज्योतीरससस्यकमुक्ताप्रवालानि।।
बृ० सं०- ८०/ ४-५

४-मुक्ताफलं हीरकं च वैदूर्यं पद्मरागकम् पुष्परागं च गोमेदं।
नीलं गारूतमतं तथा प्रवालयुक्तान्येतानि महारत्नानि वै नव।। भा०प्र० नि०- श्लो०-१६८-१६९

६. अर्थ शास्त्र और शुक्रनीति-

कौटिल्य कृत अर्थशास्त्र और शुक्रनीति में नौ प्रकार के रत्नों का उल्लेख हुआ है वे रत्न हैं- वज्र, प्रवाल, मोती, माणिक्य (पद्मराग) वैदूर्य, पुष्पराग,गोमेद, इन्द्रनील, स्फटिक। इन रत्नों के प्रकारों का विवेचन भी विस्तार से किया गया है।[1]

७. युक्तिकल्पतरु-

युक्तिकल्पतरु में पद्मराग, वज्र, हीरक, विद्रुम, प्रवाल, गोमेद, मुक्ता, वैदूर्य, इन्द्रनील, मरकत, पुष्पराग, कर्केतन, भीष्ममणि, पुलक, रुधिराख्य, स्फटिक और अयस्कान्त इन १७ प्रकार के रत्नों का वर्णन मिलता है। [2]

८. ८. रत्नविज्ञान

रत्नविज्ञान में पं० राधाकृष्ण पराशर ने १८ प्रकार के रत्नों का उल्लेख किया है। ये रत्न हैं-हीरा, मोती, प्रवाल, माणिक्य, नीलम, पन्ना, वैदूर्य, फिरोजा, राजावर्त, चैक्रान्त, पुलक, अकीक, काच- भीष्ममणि, दुग्धपाषाण, अम्बर, तृणकान्त गोमेद, और पुखराज। इन रत्नों का विस्तार से विवेचन किया गया है।[3]

९. रत्न प्रदीप-

रत्न प्रदीप में ८४ बहुमूल्य रत्न और उपरत्नों का वर्णन मिलता है। यह ८४ रत्न इस प्रकार से हैं :-

माणिक्य, हीरा, पन्ना, नीलम, मोती, मूँगा, पुखराज, गोमेद, लालंडी, फिरोज़ा, ोमनी, जबरजद्द, उपल, तुरमली, नरम, सुनेला, कटैला, सीतारा, फिटक-स्फटिक, ौदन्ता, तामडा, लूधया, मरियम; मकनातीस, सिन्दूरिया, नीली, धुनेला, बैरूँज, रगज, पितौनिया, वाँशी, दुर्बेननज्फ़, सुलेमानी, आलेमानी, जजेमानी, सावीर, तुरसावा, ाहवा, आबरी, लाजवर्त, कुदूरत, चित्ती, संगसन, लारू, कसौटी, वारचना, हकीक, ालन, सीजरी, मुबेनज्फ, कहरुवा, झना, संगबसरी, दाँतला, मकड़ा, संगीया, गूदड़ी, ामला, सिफरी, हरीद, हवास, सींगली, हवास, ढीडी, हकीक गौरी, सीया, सीमाक, ्सा, पनधन, अमलीया, डूर, लिलियर, खारा, पारा, जहर, सीर खड़ी, जहर मोहरा, ात, सोहन, मक्खी, हज़रते ऊद, सुम्मा, पारस।[4]

- द्रष्टव्य अ० शा०- अध्याय- ११, प्रकरण- २७
- क- द्रष्टव्य शुक्र०- अध्याय- ०४ श्लोक- ५५- ६७
- द्रष्टव्य युक्ति० विषय- ४५- ७३, पृ० ८५- १३८
- द्रष्टव्य र० वि०, पृ०- ४३
- द्रष्टव्य र० प्र० पृ०- ५२

३.३- गुण-

मणियों में ग्यारह प्रकार के निम्न गुण होते हैं:-

१. षडज (छह कोनों वाली), २. चतुरस्र (चार कोनों वाली), ३. वृत्त(गोलाकार)
४. गहरे रंग वाली चमकदार, ५. आभूषण में लगाने योग्य, ६. निर्मल,
७. चिकनी, ८. (भारी), ९. दीप्तियुक्त, १०. चंचलकान्त्युक्त,
११. अपनी कान्ति से पास की वस्तु को प्रकाशित कर देने वाली।[1]

३.४- दोष-

मणियों में सात प्रकार के निम्न दोष पाये जाते हैं:-

१. हलके रंग वाली, २. हलकी प्रभा वाली, ३. खुरदरी,
४. छिद्र वाली, ५. कटी हुई, ६. उपयुक्त स्थान पर बेंधी हुई
और ७. विभिन्न रेखाओं वाली।[2]

३.५ रत्नों की उत्पत्ति

१- गरुड पुराण के अनुसार-

गरुड पुराण में रत्नों की उत्पत्ति की एक कथा वर्णित है। कथा इस प्रकार है- प्राचीन कालमें बल नामक एक असुर था। उसने इन्द्रादि सभी देवों को पराजित कर दिया था। उसको जीतने में देवगण समर्थ नहीं थे। अतः असमर्थ देवों ने एक यज्ञ करने का विचार किया और उस असुर के सन्निकट पहुँचकर उस से यज्ञपशु बनने की अभ्यर्थना की। वचनबद्ध बलासुर ने अपना शरीर उन देवों को दान में दे दिया। अतः अपने वाग्वज्रसे वह पशुवत् मारा गया। पशु शरीरवाले उस असुर नें संसार के कल्याणार्थ एवं देवताओं की हितकामनाके कारण यज्ञ में शरीर का परित्याग किया था, उस विशुद्ध कर्म को करने में उसका शरीर भी विशुद्ध सत्वगुण सम्पन्न हो उठा था। अतः उस के शरीर के सभी अंग रत्नों के बीजके रूप में परिणत हो गए। इस प्रकार रत्नों की उत्पत्ति होने पर देवता, यक्ष, सिद्ध तथा नागों का उस समय बहुत उपकार हुआ। जब वे सभी विमान के द्वारा उस के शरीर को आकाश मार्ग से ले जाने लगे तो यात्रा वेग के कारण उसका शरीर स्वतः खण्ड-खण्ड होकर पृथ्वी पर इधर-उधर गिरने लगा। बलासुर के शरीर के अंग खण्ड-खण्ड होकर समुद्र, नदी, पर्वत, वन अथवा जहाँ कहीं अंशमात्र भी गिरे, वहाँ रत्नों की खान बन गई और उन स्थानों की प्रसिद्धि उन्हीं रत्नों के नाम पर हो गई। पृथिवी की उन खानों में विविध प्रकार के

१- द्रष्टव्य को० अ० शा०- अध्याय- ११, प्रकरण- २७, पृ०- १५५
२- तदेव- - - - - - - - - - -

रत्नउत्पन्न होने लगे जो राक्षस, विष, सर्प, व्याधि, तथा विविध प्रकार के पापों को नष्ट करने में समर्थ थे।[1]

२- बृहत्संहिता-

बृहत्संहिता में रत्नों की उत्पत्ति के विषय में तीन भिन्न-भिन्न मतों का उल्लेख है। प्रथम मत गरुड पुराण के समान ही बताया गया है कि बल नामक दैत्य से रत्न की उत्पत्ति हुई थी। दूसरे मत में दधीचि मुनि की अस्थियों से रत्नोत्पत्ति मानी गई है। तीसरे मत में पृथ्वी के स्वभाव से उपलों में विचित्रता आकर रत्न हो जाता है ऐसा माना गया है। कहा भी गया है-

'सम्भूतानि बलाद्दैत्याद्रत्नानि विविधानि च। गतानि नानावर्णत्वमस्थिभ्यो भूमिसंश्रयात्।।
रत्नानि दधीचिमुनेर्जातानि सहस्रशो लोके। अस्थिभ्यो भूमिवशात् नानावर्णत्वमागतानि गुणैः।।[2]

हीरे की उत्पत्ति-

पुराणों में हीरे की उत्पत्ति के विषय में दो भिन्न मत बताए गए हैं-

प्रथममत के अनुसार-

विश्वकर्मा ने इन्द्रके निमित वृत्रासुर को मारने के लिए दधीचि ऋषि का हड्डी से जो वज्र बनाया था, उसको बनाने में हड्डीयों के कण पृथ्वी पर गिरपड़े वही काल पाकर हीरे के नाम से विख्यात हो गए।

दूसरेमत के अनुसार-

देवता और राक्षसों ने क्षीरसागर में मन्दराचल पर्वत को डाल कर मथन किया था। उस समय वहाँ अमृत उत्पन्न हुआ था, उसको जब देव और दानव पीने लगे तो उनके मुख से जो अमृत की बूँदें पृथ्वी पर गिरी, वे ही सूर्य की किरणों से सूख कर वज्र हो गई।[3]

---

१ -परीक्षा वच्मि रत्नाना वलो नामासुरोऽभवत्। इन्द्रद्या निर्जितास्तेन निर्जेतुं तैर्न शक्यते।।
वख्याजेन पशुतां याचितः स सुरैर्मखे। बलो ददौ स्वपशुतमतिसत्वोमखे हतः।।
पशुवत्प्रविशेत्स्तम्भे स्ववाक्याशनियन्त्रितः। बलो लोकोपकाराय देवानां हितकाम्यया।।
तस्य सत्त्वविशुद्धस्य विशुद्धेन च कर्मणा । कायस्यावयवाः सर्वे रत्नबीजत्व माययुः।।
देवानामथ यक्षाणां सिद्धानां पवनाशिनाम्। रत्नबीजमयं ग्राहः सुमहानभवत्तदा।।
तेषां तु पततां वेगाद्विमानेन विहायसा। यद्यत्पपात रत्नानां बीजं कवचन किंचन।।
महोदधौ सरिति वा पर्वते काननेऽपि वा । तत्तदाकरतां यातं स्थानमधेय गौरवात्।।
तेषु रक्षो विषव्यालव्याधिध्रान्यद्याहानि च। प्रादुर्भवन्ति रत्नानि तथैव विगुणानि च।।
ग०-पु०,अ०-६८, श्लो० १-८

२- रत्नानि बलाद्दैत्याद्दधीचितोऽन्ये वदन्ति जातानि।
केदिद्भुवः स्वभावाद्वैचित्र्यं प्राहुरुपलानाम्।। बृ० सं० ८०/२

३- द्रष्टव्य बृ० सं०- ८१-६/३ पृ०- ४८७

वैज्ञानिकों के अनुसार-

वैज्ञानिकों ने हीरे की उत्पत्ति का आदि कारण कार्बन को सिद्ध किया कार्बन कोयला होता है और यह कोयला जब ग्रेफाइट के माध्यम से गुजरता है तो के रूप में परिणत हो जाता है।[1] हीरे की उत्पत्ति के विषय में यूरोप में किंवद प्रचलित है। "Diamond of Creet" नामक एक प्रसिद्ध व्यक्ति था। एक समय बृहस्पति क्रोध में आकर इस व्यक्ति को श्राप दे दिया कि तू पत्थर हो जा। वह व्यक्ति पत्थर गया। इस व्यक्ति के परिवार वालों ने बृहस्पति ग्रह का बहुत ही विधि विधान से पू किया कि उनका क्रोध शान्त हो जाए। बृहस्पति ग्रह ने प्रसन्न होकर यह आर्शीवाद दि कि यह पत्थर योनि से तो मुक्त नहीं होगा किन्तु जो भी इस पत्थरको धारण करे वह मेरा **'बृहस्पतिका'** अतिप्रिय होगा।[2]

हीरे के उत्पत्ति स्थान-

गरुड पुराण में हीरे की उत्पत्ति के निम्नलिखित स्थान बताए हैं-

हिमांचल, मातंग, सौराष्ट्र, पौण्ड्र, कलिंग, कोसल, वेण्वातट तथा सौवं नामक आठ भू-भाग हीरे के क्षेत्र हैं।[3] हिमालय से उत्पन्न हीरे ताम्रवर्ण के समा वेणुका के तट से प्राप्त चन्द्रमा के समान, श्वेत सौवीर देशवाले नीलकमल तथा कृ मेघ के समान सौराष्ट्र प्रान्तीय ताम्रवर्ण एवं कलिंग देशीय सोने के समान आभाव होते हैं। इस प्रकार कौसल देशके हीरों का वर्ण पीत, पुण्ड्रदेशीय श्याम तथा मत क्षेत्रवाले हलके पीत वर्ण के होते हैं। प्राप्ति स्थान के अनुसार हीरे के छः भेद बत गए हैं :-

१. सभाराष्ट्रक(विदर्भदेशोत्पन्न), २. मध्यम राष्ट्रक (कोसलदेशोत्पन्न),
३. कश्मीर राष्ट्रक(कश्मीरोत्पन्न), ४. श्रीकटनक(श्रीकटनक-पर्वतोत्पन्न),
५. मणिमन्तक (मणिमान् पर्वतोत्त्पन्न), और ६. इन्द्रवानक(कलिंगोत्पन्न)।[4]

भूगर्भशास्त्र विशेषज्ञों ने भारतीय भूगर्भ क्षेत्र को हीरे के लिए मुख्यतः ती भागों में विभक्त किया है-

१- दक्षिण भारतीय क्षेत्र, २- मध्य भारतीय क्षेत्र, ३- पूर्व भारतीय क्षेत्र।[5]

१- द्रष्टव्य भा० प्र० नि०, पृ०- ५०४

२- द्रष्टव्य र० वि०, पृ०- २०

३- हैममातंगसौराष्ट्राः पौण्ड्रकालिंगकोशलाः।
वेण्वातटाः ससौवीरा वज्रस्याष्ट विहारकाः।। ग० पु०- ६८/४७

४- आताम्रा हिमशैलजाश्च शशिभा वेण्वातटीयाः
स्मृताः सौवीरे त्वसिताब्जमेघसदृशास्ताम्राश्च सौराष्ट्रजाः।
कालिंगाः कनकावदातरुचिराःप्रीतप्रभाः कोशले श्यामाः
पुण्ड्रभवा मतंग विषये नात्यन्तप्रीतप्रभाः।। [illegible] ६० /१७ - १८

५- द्रष्टव्य- र० वि०, पृ०-४, कौटि० वै०- पृ०- १०८, हि० वि० को० पृ०- १०२

मुक्ता की उत्पत्ति

गरुड पुराण में मुक्ता की उत्पत्ति एक पौराणिक कथा के अनुसार बताई गई है। दैत्यराज बलासुर के मुख से जब दन्त पंक्ति विशीर्ण हुई तो वह आकाश में फैली हुई नक्षत्र माला के समान प्रतीत होती थी। विचित्र वर्णोंसे विशुद्ध स्थान रखने वाली वह दन्तावलि जब आकश से समुद्र में गिरी, तो पूर्णिमा के चन्द्र की समस्त षोडश कलाओं को तिरस्कृत करने में समर्थ महागुणसम्पन्न मणिरत्न का निधान हुआ। समुद्र के जलमें उसे शुक्ति में स्थान प्राप्त हुआ और वह सामुद्रिक मुक्ताका प्राचीन बीज बन गया। जिस से अन्य मुक्ताओं का उद्भव हुआ। समुद्र के जिस जल प्रदेशमें सुन्दर रत्न मुक्ता मणि के बीज रूपमें गिरे उसी प्रदेश में वे बीज फैलकर शुक्तियों में स्थित होने के कारण मुक्तामणि (मोती) हो गये।[1]

मुक्ता की उत्पत्ति हाथी, जीमूत(मेघ), वराह, शंख, मत्स्य, सर्प शुक्ति तथा बाँस से उत्पन्न मानी गई है।[2]

वैज्ञानिकों के अनुसार-

आधुनिक वैज्ञानिकों के अनुसंधान से इस बात का पता चलता है कि समुद्रमें कई प्रकारके शुक्ति कीट पाए जाते है। इन में जो मुख्य होते हैं वे मुक्ता कीट है। मुक्ताकीट ही शुक्ति के अन्दर मोती का निर्माण करते है। मुक्ताकीट (cesloid worms) की प्रमुख तीन जातियाँ होती हैं। मुक्ता के विभिन्न रूप रंग इन्ही जातियों के कारण बन जाते है।[3]

मोती के उत्पत्ति स्थान- मोती के आठ उत्पत्ति स्थान बताए गए हैं। सिंहलक देश, परलोक देश, सुराष्ट्र देश ,ताम्रपर्णी नदी, पारशव देश, कौबेर देश, पाण्डयवाटक देश, हिम ये आठ मोतियों के आकर स्थान हैं।[4] वराहमिहिर कृत बृहत्संहिता में भी मोती के आठ उत्पत्ति स्थान बताए गए है।[5]

१- नक्षत्रामालेव दिवो विशीर्णा दन्तावली तस्य महासुरस्य।
वचित्रवर्णेषु विशुद्धवर्णा पयः सु पत्युः पयसां पपात।।
सम्पूर्णचन्दांशुकलापकान्तेर्मणि प्रवेकस्य महागुणस्य।
तच्छुक्तिमत्सुस्थितिमाप बीजमासन् पुराऽप्यन्यभवानियानि।।
यस्मिन्प्रदेशेऽम्बुनिधौ पपात सुचारूमुक्तामणिरत्न बीजम्।
तास्मिन्पयस्तोयधरावीर्णं शुक्तौ स्थितं मौक्तिकतामवाप।।

गo पुo, ६८/२०-२२

२- द्विपेन्द्रजीमुतवराहशंख मत्स्याहिशुक्त्युद्भववेणुजनि।
मुक्ताफलनि प्रथितानि लोके तेषांच शुक्त्युद्भवमेव भूरि।। गo पुo ६८/१-२

३- द्रष्टव्य रo विo, पृo- ७७

४- सैंहलिकपारलौकिक सैराष्ट्रिकताम्रपर्णपारशवाः।
कौबेरपाण्डयाहाटकहेमका इत्याकरास्त्वष्टौ।। गo पुo ६८/ २३

५- द्रष्टव्य बृo संo, अo-८०, श्लोo-२

कौटिल्य कृत अर्थशास्त्र में मोती के निम्न उत्पत्ति स्थान बताए गए हैं- १- ताम्रपार्णिक(पाण्डय देश की ताम्रपर्णी नदी के संगम पर उत्पन्न), २- पाण्डय कवाटक (मलय कोटि नामक पर्वत पर उत्पन्न), ३- पाशिक्य(पाटलिपुत्र के समीप पाशिका नामक नदी में उत्पन्न), ४- माहेन्द्र (महेन्द्रगिरि के निकटवर्ती समुद्रतल में उत्पन्न), ५- कार्दमिक(फारस की कर्दमा नामक नदी में उत्पन्न), ६- स्रौतसीय (बर्बर के समीप स्रौतसी नामक नदी में उत्पन्न), ७- ह्रादीय(बर्बर के समीप समुद्र तटवर्ती श्रीघण्ड नमक झील में उत्पन्न), ८- हैमवत (हिमालय पर्वत तर उत्पन्न)। [1]

प्रवाल की उत्पत्ति-

गरुड पुराण में प्रवाल की उत्पत्ति एक पौराणिक कथा के आधार पर ही बताई गई है- जिस समय शेषनाग नें बलासुर(पशु शरीरवाले) के अन्तर्भाग को ग्रहण कर लिया था उसके कुछ समय पश्चात् ही ग्रहण किए हुए अन्तर्भाग को केरलादि देशोंमें छोड़ दिया। जिन-२ स्थानों में छोडा उन-उन स्थानो में महागुण सम्पन्न विद्रुममणियों का जन्म हुआ। [2]

वैज्ञानिकों के अनुसार-

आधुनिक शोधों के आधार पर प्रवाल की उत्पत्ति इस प्रकार से बताई गई है। समुद्र में एक जाति के छोटे-छोटे कीड़े पाए जाते हैं। यह कीड़े पानी में मिली हुई मिट्टी की खाते है। यह मिट्टी इनके पेट में जमा होती रहती है। जब यह जानवर मर जाता है तब उसके पेटमें से मिट्टी का कंकर मूंगा के रूपमें निकलता है। मूंगे का स्वरूप कई प्रकार का बताया गया है। कुछ मूंगे छोटे-छोटे पौधों की डालियों की तरह होते हैं। कुछ मूंगे गोल तथा कुछ टेढे मेढे होते हैं। आस्ट्रेलिया देश के उत्तर पूर्व में मूंगे की इसी प्रकार से दीवारें बनी हुई हैं। जनूबी नमक टापू में भी इस तरह की दीवार बनी हुई पाई गई है। [3]

मवाल के उत्पत्ति स्थान-

गरुडपुराण के अनुसार प्रवाल नीलदेश, देवक तथा रोमक में पाया जाता है।[4]

वैज्ञानिकों के अनुसार-

वैज्ञानिकों के आधुनिक शोधों के अनुसार प्रवाल की उत्पत्ति आस्ट्रेलिया, अफ्रीका, भूमध्य सागर के पार्श्वर्ती स्थानों और द्वीपों में पाई जाता है। [5]

१- ताम्रर्पिणकं, पाण्डयकवाटकं, पाशिक्यं कौलेयं, चौर्णेयं,
माहेन्द्रंकार्दमिकं, स्रौतसीयं, ह्रमादीयं, हैमवतं च मौक्तिकम्। अ० शा०, ११/ २

२- अदाय शेषस्तस्यान्त्रं बलस्य केरलादिषु।
चिक्षेप तत्र जायन्ते विद्रुमाः सुमहागुणाः।। ग० पु०, ८०/ १

३- द्रष्टव्य- वनो०- चंद्रो०, पृ० ४६-४८

४- द्रष्टव्य ग० पु०, ८०/२

५- द्रष्टव्य र० वि०, पृ० १२२-१२७

पद्मराग की उत्पत्ति

गरुड पुराण में पद्मराग की उत्पत्ति के लिए जो कथा वर्णित है वह इस प्रकार है- जब भगवान भास्कर दैत्यराज बलासुरके श्रेष्ठ रत्नबीजरूपी शरीरको स्वच्छ नीले आकाश मार्ग से देवलोक को लेजा रहे थे तो उसी समय अंहकार से भरे हुए रावण ने आकर उन्हें आधे मार्ग में ही रोक लिया। भयवश सूर्य ने बलासुर के रत्नबीज रूपी रक्त को लंका देश में ही एक श्रेष्ठ नदी के जल में छोड़ दिया। उस समय उस नदी के दोनों तट देश की सुन्दर रमणियों के कान्तिमय नितम्बों की प्रतिच्छाया झिलिमलाते हुए अगाध जलसे परिपूर्ण तथा सुपारी की वृक्ष पंक्तियों से आच्छादित अपने दोनों तटों से सुशोभित हो रही थी तथा गंगाके समान पवित्र एवं उत्तम फलों को प्रदान करने पर उसी नदी का नाम रावण गंगा पड़ गया। बलासुर के रत्न बीज रूपी रक्तके गिरने से उस नदी के तट पर रत्न राशियाँ आकर एकत्र होने लगी। उसी जलमें पद्मराग नामक रत्न की भी उत्पत्ति हुई। [1]

बृहत्सांहिता-

बृहत्सांहिता के अनुसार पद्मराग की उत्पत्ति सौगन्धिक, करूविंदु, स्फटिक इस तरह के पत्थरों से मानी गई है। [2]

वैज्ञानिक मत- आधुनिक रत्न वैज्ञानिकों ने पद्मराग की उत्पत्ति खनिज पदार्थों से बतलाई है। एक की उत्पत्ति कठोर पदार्थों से तथा दूसरे की उत्पत्ति कम कठोर पदार्थों से बताई है।[3]

पद्मराग के उत्पत्ति स्थान-

प्राचीन रत्न ग्रन्थों के अनुसार बताया गया हैकि पद्मराग सिंहल के रावण गंगा की तलहटी में मिलता है। इसके अतिरिक्त पद्मराग मलय, सुवेल तथा गंधमादन से प्राप्त होता है।[4]

१- द्विवाकरस्तस्य महामहिस्नो महासुरस्योत्तमरत्नबीजम्।
असृग् गृहीत्वा चरितुं प्रतस्थे निस्त्रिंशनीलेन नभः स्थलेन।।
जेत्रा सुराणां समरेष्वजस्त्रं वीयर्यावलेपोद्धतमानसेन।
लंकाधिपेनार्द्धपथे समेत्य स्वर्भानुनेव प्रसभं निरुद्धः।।
तत्सिंहलीचारु नितम्बबिम्बविक्षोभितागाधमहाहृदायाम्।
पूगद्रमाबद्धतटद्वयायां मुमोच सूर्य्यः सरिदुत्तमायाम्।।
ततः प्रभृति सा गंगातुल्यपुण्यफलोदया। नाम्नारावण गंगेति प्रथिमानमुपागता।।
ततः प्रभृत्येव च शर्वरीषु कूलानि रत्नैर्निचितानि तस्याः।
सुवर्णनाराचशतैरिवान्तबहिः प्रदीप्तैर्निशितानि भान्ति।।
तरयास्ततेषूज्ज्वलचारुरागा भवन्ति तोयेषु च पद्मरागाः।
सौगिन्धकोत्साः कुरूविन्दजाश्च महागुणाः स्फाटिकसं प्रसूताः।। ग०पु०, ७०/१-६

२- द्रष्टव्य बृ० स०, ८०/ १

३- द्रष्टव्य र० वि, पृ०- १६२

४- द्रष्टव्य हि० वि० पृ०-३४

आधुनिक वैज्ञानिकों के अनुसार उत्पत्ति स्थान-

रत्न विज्ञान में शोधों के आधार पर आधुनिक वैज्ञानिकों ने बर्मा से प्राप्त है वाले पद्मराग को सर्वोत्तम बताया है। अफगानिस्तान, हिन्द चीन, लंका में मुख्य पद्मराग प्रधान रूप से पाया जाता है। इसके अतिरिक्त उत्तरी कारिलोना अमेरि तथा आस्ट्रलिया आदि स्थानों में भी पद्मराग उपलब्ध होते हैं।[1]

इन्द्रनील मणि की उत्पत्ति-

गरुड पुराण के अनुसार इन्द्रनील की उत्पत्ति के विषय में जो मत है वह इ प्रकार है-जब सिंहल देशकी रमणियाँ अपने करपल्लव के अग्रभाग से नवीन लवलं कुसुम तथा प्रवाल का चयन कर रही थी उसी समय उस बल नामक असुर के ने गिर पड़े। समुद्रकी वह कछार भूमि रत्नके समान चमकने वाले नेत्रों की प्रभा तरं से सुशोभित होकर फैल गई। वहीं पर विकसित केतकी नामक पुष्पों से वनोंकी शो बढ़ाने वाले इन्द्रनील मणियोकी भूमि पाई जाती है। वहींपर यह नेत्र पाषाणके रूप परिवर्तित होकर इन्द्रनील बन गए।[2]

इन्द्रनील के उत्पत्ति स्थान-

प्राचीन रत्न ग्रन्थों के अनुसार इन्द्रनील की उत्पत्ति विंध्य पर्वत पर, महान के किनारे, हिमालय में, काबुल में, आबू पहाड़ पर, जम्मू में, मुलतान में सिंहल द्वीप कंलिग तथा बर्मा में बताई गई है।[3]

आधुनिक वैज्ञोनकों के अनुसार-

रत्न विज्ञान में आधुनिक वैज्ञानिकों के शोधों के अनुसार बताया गया है कि नीलम बर्मा लंका तथा काश्मीर में पाए जाते हैं। बर्मा में नीलम माणिक्य के साथ पा जाते हैं। वर्तमान काल में किए गए शोधों के अनुसार यह पता चलता है कि नील चन्द्रभागा के निकट पालदार नामक स्थान में भी पाए जाते हैं। विक्टोरिया और न साउथ वैल्समें भी नीलम के विस्तृत क्षेत्र हैं। यूरोप की राइन नदी की घाटी में भी नीलम पाए जाते हैं।[4]

१- द्रष्टव्य र० वि, पृ०-१६२

२- तत्रैव सिहलवधूकरपल्लवाग्रव्यालूनबाललवलीकुसुमप्रबाले ।
देशे पपात दितिजस्य नितान्तकान्तं प्रोत्फुल्लनीरजसमद्युति नेत्रयुष्मम्।।
तत्प्रत्ययादुभयशोभन वीचिभासा विस्तारिणी जलनिधरूपकच्छभूमिः।
प्रोद्भिन्नकेतकबलप्रतिबद्धलेखा सान्द्रेन्द्रीलमणि रत्नवती विभाति।। ग० पु०, ७२/१-२

३- द्रष्टव्य हि०वि०, पृ०- ३५

४- द्रष्टव्य र० वि०, पृ०- १८३

पन्ना (मरकतमणि) की उत्पत्ति-

गरुड पुराण के अनुसार पन्ना की उत्पत्ति के विषय में जो मत है वह इस प्रकार है- नागराज वासुकि जब असुरपति बलासुर के पित को लेकर अत्यन्त वेग से दो भागों में विभक्त हुए देव लोक में जा रहे थे उस समय वे अपने ही सिर पर अविस्थत मणि से इस तरह सुशोभित हो रहा था मानो अकाश रूपी समुद्र पर बने हुए एक अद्वितीय रजतसेतु के समान हो,उसी समय अपने पंखों से पृथ्वी एवं आकाश को आतंकित करते हुए पक्षिराज गरुड ने सर्पदेव वासुकि पर प्रहारकर दिया। भयभीत वासुकिने सहसा उस रत्न बीज रूप पित को मधुर तथा पुण्य सुस्वादु जल से परिपूर्ण सरिता एवं वृक्षों से सुशोभित पोंकी नव कलिकाओं की सान्द्र गंध से सुवासित तुरुष्क देश की श्रेष्ठ मणिक्यों से परिपूर्ण पर्वतकी उपत्यकला में छोड़ा। वह पित्त जलधारामें बहता हुआ भगवती महालक्ष्मी के समीप में स्थित समुद्र को प्राप्त करके उसकी तटवर्ती उस भूमिके समीप पहुँच गया जहाँ वह पाषण मणियोंमें परिवतिर्त होकर मरकत मणियोंका खजाना बन गया।[1]

वैज्ञानिक मत-

आधुनिक वैज्ञानिकों के अनुसार पन्ना खनिज रुप में पाया जाता है। भारतवर्ष के विभिन्न क्षेत्रों में पन्ना खड़(Rough) रूप में प्राप्त होता है। इस खड़ रूप पन्ने को शुद्ध रूप जौहरियों द्वारा दिया जाता है।[2]

पन्ने के उत्पत्ति स्थान-

रत्न परीक्षा के ग्रन्थों के अनुसार मरकत बरबर प्रदेश में समुद्र के किनारे, रेगिस्तान के पास तथा तुरूक्ष देश में पाया जाता हैं। मगध के हजारीबाग, सिंधु के तीर तथा त्रिकुटगिरि पर पन्ने की उत्पत्ति मानी गई है।[3]

पन्ने की उत्पत्ति आधुनिक पद्धति के अनुसार-

आधुनिक शोधों के अधार पर बताया गया है कि अजमेर के पास 'गुगरा घाटी' नामक स्थान में पन्ने की खान का उद्भव हुआ है। इस खान से उत्पन्न पन्ना उत्कृष्ट श्रेणी का माना गया है।

१- दानवाधिपतेः पित्तमादाय भुजगाधिपः। द्विधा कुर्वन्निव व्योम सत्वरं वासुकिर्ययौ।।
स तदा स्वशिरोरत्नप्रभादीप्ते नभोऽम्बुधौ। राजतः स महानेकः खण्डसेतुरिवषभौ।।
ततः पक्ष निपातेन संहरन्निव रोदसी। गरुत्मान्पन्नगेन्द्रस्य प्रहर्त्तमुपचक्रमे।।
सहसैव मुमोच तत्फणीन्द्रः सुरसाद्युक्ततुरस्कपादपायाम्।
नलिकावनगन्धवासितायां वरमाणिक्यगिरेरुपत्यकायाम्।।
तस्यप्रपातसमनन्तरकालमेव तद्वद्वरालयमतीत्य रमासमीपे।
स्थानं क्षितेरूपपयौनिधितीरलेखं तत्प्रत्ययान्मरकताकरतांजगाम।। ग०पु०, ७१/१-५

२- द्रष्टव्य र० वि०, पृ०- २६४

३- द्रष्टव्य हि० वि०, पृ०- २१

उदयपुर की खानों से भी पन्ने की उत्पत्ति मानी गई है। भीलवाड़ा निकटस्थ 'कालागुमान' गिरिश्रृंगीं के खानों से उत्पन्न पन्ना अधिक उज्जवल हरित वर्ण का माना गया है। विदेशों में पन्ना मुख्य रूप से ब्रेजिल, कोलम्बिया, मेडागास्कर रसिया और साइबेरिया में पाया जाता है। कोलम्बिया का मुजो नामक स्थान पन्ने केलिए प्रसिद्ध है। कोलम्बिया पन्ना दो प्रकार की खानों से उत्पन्न माना गया है। एक खान के पन्ने में हीरदाभा अल्प और नील वर्ण भी दिखाई पड़ता है। दूसरी खान से उत्पन्न पन्ना हरिदाभायुक्त होता है। अफ्रीकन पन्ना बिंदुमय होता है। हरित वर्ण से भी युक्त माना गया है। साइबेरियन से प्राप्त होने वाला पन्ना साधारण श्रेणी का माना जाता है।[1]

वैदूर्य की उत्पत्ति-

गरुड पुराण के अनुसार वैदूर्य की उत्पत्ति के विषय में जो मत है वह इस प्रकार से हैं- कल्पान्त कालमें क्षुब्द अगाध समुद्र की जलराशि के गम्भीर महानाद के समान दिति पुत्र बलासुर के नाद से विभिन्न वर्णों वाली अत्यन्त सौन्दर्य सम्पन्न वैदूर्य मणियों का बीज उत्पन्न हुआ था। उत्तुंग शिखरों वाले विदूरनामक पर्वतके सन्निकट स्थित कामभूतिक सीमा से मिले हुए क्षेत्र में उस वैदूर्य बीज का अवधान होने से वैदूर्यनाम के रत्नगर्भ की उत्पत्ति हुई।[2]

वैदूर्य के उत्पत्ति स्थान- वैदूर्य भारत के दक्षिणं में सलेम जिले, वेन गंगा के तट में, कामरूप, विंध्याचल, हिमालया, त्रिकूठ श्री पर्वत, महानदी के तट पर, बर्मा, काबुल तथा सुराती देश में बताया गया है।[3]

आधुनिक पद्धति द्वारा वैदूर्य की उत्पत्ति-

आधुनिक अनुसंधानों के आधार पर यह बताया है कि व्यवसाहिक महत्व के आधार पर वैदूर्यका मुख्य स्थान सीलोन है। ब्राजिल, उत्तर अमेरिका और यूराल पर्वतांचल भी वैदूर्य की उत्पत्ति के प्रमुख स्थान माने गए है। बेणुगंगा ,अटक, कटक(उडीसा), कामरूप (आसाम) विन्ध्याचल, हिमाचल, त्रिकूट पर्वत, सीलोन, महानदी बरमा और काबुल में भी प्राचीन समय में वैदूर्य की खानें थी। प्राचीन समय में कामभूतिक(आसाम) सीमा के पार्श्ववर्ती स्थानों के विदूर पर्वत के समीप के उत्तुंगों (शिखरों) में एवं पर्वत के पाश्व से बहने वाली नदियों की बालू तथा छोटे-छोटे प्रस्तरों में वैदूर्य प्राप्त होते थे। आधुनिक खनिज शास्त्रज्ञ भी आसाम के मणिपुर नागा पहाडियों और चीनकी भारतीय सीमा संलग्न पर्वत मालाओं में वैदूर्य के होने का अनुमान लगाते हैं।[4]

१- द्रष्टव्य र० वि०, पृ० १८८-१८६

२- वैदूर्यपुष्परागणां कर्केतनभीष्मकयोः। परीक्षा ब्रह्मणा प्रोक्ताव्यासेन कथिताद्विज।।
कल्पान्तकालक्षुभिताम्बुराशेर्निर्ह्लादकल्पाद्दितिजस्य नादात्।
वैदूर्यमुत्पन्नमनेकवर्ण शोभाभिरामद्युतिवर्णबीजम्।।
अविदूरे विदूरस्य गिरेरुत्तुंगरोधसः। कामभूतिकसीमानमनु तस्याकरो भवेत।। ग०पु०, ७३/१-३

३- द्रष्टव्य हि० वि०, पृ०, ३६

४- द्रष्टव्य र० वि०, पृ०, २००-२०१

३.५ प्रमुख रत्नों के विभिन्न नाम, गुण, प्रकृति एवं लक्षण

१. हीरा- (सं० पु० क्ली०) हीर स्वार्थे कन्। रत्न विशेष, हीरा।
पर्याय :- वज्र, हीर, दधीच्यस्थि, वज्रक, सूचीमुख, वराटक, रत्नमुख वज्रपर्याय। हीरक वज्र, अशिर, षटकोण, दृढ़गर्भक, संस्कृत में हीरक वज्र, मणिवर, कुलिश, भार्गव प्रिय अमेद्य, चन्द्रादि कहा जाता है। हिन्दी में हीरा,बंगला में हिरे, गुजरात में हीरो, इंग्लैंड में डायमण्ड, लैटिन में पिऔर कार्बन् एडम्स् (Pure Carbon Adams) आदि कहा गया है। अतः भिन्न-भिन्न भाषाओं में हीरे के भिन्न-भिन्न नाम बताए गए हैं।[१]

हीरा अन्य रत्नों की अपेक्षा अधिक मुल्यवान् बताया गया है एवं अपने प्राकृतिक गुणों के कारण अधिक प्रसिद्ध माना गया है। भारत में ही सर्वप्रथम हीरे पर पहल बनाने का काम १६वीं शाताब्दी से आज तक चलता आ रहा है। सर्वप्रथम भारतियों ने ही इसका ज्ञान विश्व को कराया । आज विज्ञान ने यह सिद्ध कर दिया है कि हीरा पृथ्वी के गर्भ में पृथ्वी का बोझ कोयले पर पड़ने से स्वयं बन जाता है। कृत्रिम हीरे को भी वैज्ञानिकों ने बनाने के प्रयत्न किए किन्तु वे असफल रहे।[२] भारत में हीरे की भस्म का औषधि के रूप में भी प्रयोग होता है। किन्तु वैद्यों का मानना है कि हीरे की कणि या हीरे का चूरा नहीं खाना चाहिए क्योंकि इसको खाने से मृत्यु हो जाती है।[३] हीरे का मूल्य तथा उसकी पहचान गुण-दोष तथा रंग-रूप के आधार पर की जाती है। दक्षिण अफ्रीका, ब्रज़ील इत्यादि में मिलने वाले हीरे का मूल्य अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर निश्चित किया जाता है। हीरे को काटने तथा बनाने का काम वर्तमान समय में सबसे अधिकतर हालैंड, बेल्जियम, भारत तथा अमेरिका में होता है।[४]

शास्त्र ग्रन्थों में विभिन्न प्रकार के हीरों के जो देवता बताए गए हैं वे इस प्रकार से हैं-

हीरे के देवता-

छः कोण वाले सफेद हीरे का देवता इन्द्र, सर्पाकार मुख वाले हीरे का देवता यम, कदली काण्ड के समान(नील, पीत) वर्ण वाले हीरे का देवता विष्णु और सामान्य रूप से सब प्रकार के हीरे का देवता विष्णु को ही माना गया है।

१- र०वि०, पृ०-६-१२
१- हीरकः पुंसि वज्रोऽस्त्री चन्द्रोमणिवरुच सः। भा० प्र० नि०- पृ० ५०२, श्लो०-१७०
२- द्रष्टव्य हि० वि०, पृ०- ३३
३- द्रष्टव्य तदेव पृ० -३३
४- द्रष्टव्य तदेव पृ० -३४

स्त्री के भग के समान आकृति वाले हीरे का देवता वरुण है। कर्णिकार पुष्प के समान, सिंघाडे के समान(त्रिभुजा कार) या बाघ के नेत्र के समान हीरे का देवता अग्नि तथा अशोक के पुष्प के समानवर्ण वाले हीरे का देवता वायव्य है। नदी के प्रवाह, खान, प्रकीर्णक (जिस भूमि में मणि होती है- समुद्र आदि) यह तीन हीरों की उत्पत्ति के आकर हैं। [1]

रंग के अनुसार ही हीरों में देवताओं के विग्रहों का निश्चय किया गया है। वर्ण को ध्यान में रखकर ही हीरों का विभाजन करना चाहिए। हरित, श्वेत, पीत, पिंगल, श्याम तथा ताम्रवर्ण के हीरे स्वभावतः सुन्दर होते हैं। उन हीरों के क्रमानुसार विष्णु, इन्द्र, अग्नि, यम, और मरुत देव प्रतिष्ठित रहते हैं।[2]

हीरे के प्राकृतिक गुण-

प्राचीन समय में प्राकृतिक रूप में प्राप्त होने वाले हीरे प्रायः स्फटिकवत स्वच्छ शुभ हुआ करते थे। कहीं पर हीरों को वर्णयुक्त भी पाया गया है। हीरे को कुछ ओर रंगों में भी देखा गया है जैसे नीला, भूरा, श्याम, बैगंनी, सरदई, पिंगल, अरुण आदि अनेक रंगों में देखा गया है। प्रकृति में पाया जाने वाला हीरा प्रायः षट्पहलू, अष्टपहलू युक्त या डली कनी के रूप पाया जाता है। कुछ हीरे गोल आकार में भी पाए गए हैं।[3]

षट्कोण, अष्टकोण, द्वादशकोण, षट्पार्श्व, अष्टपार्श्व, द्वादशपार्श्व, षड्धारा, अष्टधारा, द्वादशधारा, उत्तुंग, सम एवं तीक्ष्णाग्र भाग हीरे के प्राकृतिक गुण बताए गए हैं अर्थात् जो हीरा प्रकृति में पाया जाता है वह इन-२ गुणों से युक्त होता है। [4]

१- ऐन्द्रं षडश्रि शुक्लं याम्यं सर्पास्यरूपमसितं च।
कदलीकाण्ड निकाशं वैष्णवमिति सर्वसंस्थानम्।।
वारुणमबलागुह्योपमं भवेत् कर्णिकार पुष्पनिभम्।
श्रृगाटकसंस्थानं व्याघ्राक्षिनिभं च हौतभुजम्।।
वायव्यं च यवोपम मशोककुसुमप्रभं समुद्दिष्टम्।
स्रोतः खनिः प्रकीर्णकमित्याकर सम्भवस्त्रिविधः।। वृ० सं०- ८०/ ८-१०

२- वज्रेषु वर्णयुक्त्या देवानामपिविग्रहः प्रोक्तः वर्णेभ्यश्च विभागः कार्य्यो वर्णाश्रयादेव।।
हरितश्वेत पीतपिंगश्यामताम्राः स्वभावतो रुचिराः।
हरिवरुणशक्रहुतवहपितृपति मरुतां स्वका वर्णाः।। ग०पु०- ६८/२०-२१

३- द्रष्टव्य भा० प्र० नि०- पृ० ५०४

४- कोटयः पार्श्वानि धाराश्च षडष्टौ द्वादशेतिच।
उत्तुंग समतीक्ष्णाग्रा वज्रस्याकरजा गुणाः।। ग० पु०- अ०- ६८/३०

हीरे के प्रकार-

हीरे के पुरुष, स्त्री तथा नपुंसक यह तीन भेद होते हैं।

१- पुरुष जाति हीरे के लक्षण-

जो हीरा आठ कोण वाला अथवा छ कोण वाला हो और जिस प्रकार इन्द्रधनुप की परछाई जल में पड़ने से उसमें सातों रंगों की प्रतिच्छाया दिखाई देती हो उसी प्रकार जब हीरे को जल में रख कर उस में भी सात रंग दिखाई देते हैं वजन में हलका पन हो किन्तु देखने में वह बड़ा दिखाई देता हो तो वह पुरुष हीरा अथवा नर हीरा कहलाता है।[1] जो हीरा भलीभाँति गोलाकार फल से पूर्ण तेज से युक्त अत्यन्त बड़ा तथा रेखा और बिदुओं से रहित हो तो वह नर हीरा कहलाता है।[2] रस वीर्य और विपाक के गुणधर्मानुसार नर हीरा उत्तम बताया गाया है ।[3]

२- स्त्री जाति हीरे के लक्षण-

नर हीरे के समस्त गुणों से युक्त होते हुए रेखा तथा बिन्दुओं से युक्त ६ कोण वाला हीरा स्त्री जाति का हीरा कहलाता है।[4] जो हीरा चिपटा, गोल और कुछ लम्बा हो वह भी स्त्री जाति का हीरा कहलाता है।[5] स्त्री जाति का हीरा मध्यम श्रेणी का कहलाता है।

३- नपुंसक जाति हीरे के लक्षण-

जो हीरा तीन कोणवाला और जिसके कोण मुड़े हुए हों तथा गोल हों, बड़ा और वजन में भारी हो उसे नपुंसक हीरा कहा जाता है।[6]

विभिन्न प्रकारके गुण-

१- पुरुष जातिके हीरे- श्रेष्ट तथा रस के बन्धन करने वाले होते हैं।

२- स्त्री जातिके हीरे- शरीरकी कान्ति को बढाने वाले एवं विशेषरूप से स्त्रियों के लिए सुखदायी होते हैं।

३- नंपुसक जातिके हीरे- नंपुसक जाति के हीरे वीर्य हीन, काम तथा शक्ति से रहित होते हैं।

१- अष्टास्त्रं वाऽष्टफलकं षटकोणमतिभासुरम्।
अम्वुदेन्द्रधनुर्वारितरं पुंवज्रमुच्यते ।। र० वि० पृ०- १६

२- सुवृताः फलसम्पूर्णास्तेजोयुक्ता बृहत्तराः ।
पुरुषास्ते समाख्याता रेखा बिन्दु विवर्जिताः ।। भा० प्र० नि० पृ०-५०३, श्लो०१७३

३- द्रष्टव्य र० वि० पृ०-१५

४- रेखा बिन्दुसमायुक्ताः षडस्रास्ते स्त्रियाः स्मृताः। भा० प्र० ५०३, श्लो० -१७४

५- तदेव चिपिटाकारं स्त्रीवज्रञ्च वर्तुलायतम् । र० वि० पृ०- १६

६- वर्तुलं कुण्ठकोणाग्रं किञ्चित् गुरु नपुंसकम्।
त्रिकोणाश्च सुदीर्घास्ते विज्ञेयाश्च नपुंसकाः।। तदेव - - -

उपयोग-

स्त्री जाति के हीरे स्त्रियों के लिए, नपुंसक जाति के हीरे नपुंसको के लिए और पुरुष जाति के वीर्यवर्धक हीरे सभी के लिए सदा लाभ देने योग्य होते हैं।[1] रूप रंग और भेद के अनुसार हीरा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शुद्र चार प्रकार का माना गाया है।[2] जो हीरा सफेद रंग का होता है वह ब्राह्मण हीरा कहलाता है। जो लाल रंग का होता है वह क्षत्रिय हीरा कहलाता है जो पीले रंग का होता है वह वैश्यवर्ण का होता है। जो हीरा काले वर्ण का होता है वह शुद्रवर्ण होता है।[3] हीरे के चार प्रकार के वर्णों का फल-

१- ब्राह्मणवर्ण का हीरा-

रसायनके लिए उपयोगी तथा सर्वसिद्धियों को देने वाला होता है।

२- क्षत्रियवर्ण का हीरा-

रोगोंको नष्ट करने वाला एवं जरा तथा मृत्युको दूर करने वाला होता है।

३- वैश्यवर्ण का हीरा-

धन को देने वाला तथा देह को दृढ़ करने वाला होता है।

४- शुद्रवर्ण का हीरा-

रोगों का नाश करने वाला तथा आयु को स्थिर रखने वाला अर्थात् शरीर में वृद्धावस्थाजन्य क्षीणता को नहीं आने देने वाला होता है।[4]

५- हीरे के अनेक आकार प्रकार हैं जैसे बिलाव की आँख के समान, शिरीष पुष्प की आकृति का, गोमूत्र के समान, गोरोचन की भाँति, सर्वथा स्वच्छ, श्वेत मलहती के फूल जैसा और मोतियों की आकृति का बताया गया है।[5]

१- तेषु स्युः पुरुषाः श्रेष्ठा रसबन्धन कारिणास्त्रिया कुर्वन्ति कायस्यकान्ति क्षीणां सुखप्रदाः।
नपुंसकास्त्ववीर्या स्युरकामाः सत्ववर्जिताः स्त्रियाः स्त्रीभ्यः दातव्याः क्लीवं प्रयोजयेत्।
सर्वेभ्यः सर्वदा देयाः पुरुष वीर्यवर्धना।। भा० प्र० नि० पृ०-५०३, श्लो० १७६-१७७

२- श्वेतादिवर्णभेदेन तदेकैकं चतुर्विधम्।
ब्रह्मक्षत्रिय विट् शुद्रं स्वस्वर्णफलप्रदम्।। र० वि० पृ०- १५

३- स तु श्वेतः स्मृतो विप्रो लोहितः क्षत्रिय स्मृतः पीतो वेश्योऽस्तिः
शुद्रश्चतुवर्णात्मकश्च सः। भा० प्र० नि० पृ० -५०२

४- रसायने मतो विप्र सर्वसिद्धि प्रदायकः। क्षत्रियो व्याधिविध्वंसी जरामृत्यु हरः स्मृतः।।
वैश्योधन प्रदः प्रोक्तस्था देहस्या दाढर्यकृत्।
शुद्रो नाशयति व्याधीन् वयः स्तम्भं करोति च।। भ० प्र० नि० पृ०-५०३, श्लो० १७१-१७२

५- मार्जाराक्षकं च शिरीष पुष्पकं गोमूत्रकं गोमेदकं शुद्धस्फटिकं मूलातीपुष्पवर्णं
मणि वर्मानामत्यतमवर्णमितिवज्रवर्णाः। अ० शा० २११८ ३

जिस प्रकार लोक में निम्न और उच्च वर्ण का वर्ण सांकर्य दोष दुःखदायी बताया गया है। उसी प्रकार रत्नों का वर्ण सांकर्य उससे भी अधिक दुःखदायी बताया गया है। केवल वर्णमात्र के द्वारा ही रत्नों का संचय नहीं करना चाहिए क्योंकि जो गुणवान् रत्न होता है वही गुण और सम्पत्ति की विभूति होता है। इस के विपरीत गुण हीन रत्न कष्टों को देने वाले होते हैं। जिस हीरेका एक भी श्रृंग टूटा हुआ हो तो गुणवान होने पर भी धनार्थी जनों को उसे अपने घर में नहीं रखना चाहिए ।[1]
हीरे में दोषों के लक्षण- हीरे में १३ प्रकार के दोष पाए जाते हैं। यवतार, छाल, खुरदरा, गढा, धब्बा, सुन्न, मैल, धारा बिन्दु, रेखा, कागपद इनमें रक्त आदि दोष हैं। रक्त बिंदु के पत्थरको सबसे निकृष्ट माना गया है।[2] **यव दोष-** यव दोष चार प्रकार के माने गए हैं।

१- सफेद यव

लाल यव, पीला यव और काला यव। यदि हीरे में जौ की आकृति सा लम्बा और बीच में मोटापन लिए कोई दाग हो तो उसे यव दोष कहते हैं।

२- तार दोष-

यदि हीरेमें अभ्रकके समान तारकी जाली दिखाई दे तो उसे तारदोष कहते हैं।

३- छाल दोष-

यदि हीरे के किसी भी भाग से (जिस प्रकार अभ्रक से परत निकल जाती है)। छाल उतर गई हो तो उसे छाल दोष कहते हैं ।

४- खुरदरा दोष-

यदि हीरे को पहनने से किसी भी प्रकार का खुरदरा पन अंगुलियों को लगे तो उसे खुरदरा दोष कहते हैं।

५- गढा दोष-

यह वह दोष है जहाँ हीरे में किसी भी प्रकार का गढ़ा दिखाई दे।

६- सुन्नहीरा-

एक प्रकारका दुधियाहीरा जो प्रायः सुन्न अर्थात् जिसमें चमक बहुत कम रहती है।[3]

१- अधरोत्तरवृत्तो हि यादृक्स्याद्वर्णसंकरः।
ततः कष्टतरो वज्री वर्णानां संकरो मतः ।।
न च मार्गविभाग मात्रवृत्त्या विदुषा वज्रपरिग्रहो विधेयः ।
गुणवद् गुणसम्पदां विभूतिर्विपरीतो व्यसनोदयस्य हेतुः ।।
एकमपि यस्य श्रृंग विदलितमवलोक्यते विशीर्णं वा।
गुणवदपि तन्न धार्य्यं श्रेयोऽर्थि भिर्भवने।। ग० पु० ६८/२५ -२७

२- द्रष्टव्य र० वि०, पृ०- १६

३- द्रष्टव्य हि० वि०, पृ०- २२

२. मुक्ता-

(सं० स्त्री०) मोक्ष्यते निः सार्य्यते इति वा मुच् क्त टाप। १. रास्ना, रासना २. रत्नविशेष (मोती) Pearl **"शं नो अप्याः"** अप्सु भवा नौयायिनो भुक्ताद्याः पदार्थ वा।[१] "अलो" से उत्पन्न हुए नौकाओं से जाने वाले वा मोती आदि पदार्थ, यह मोती आदि बहुमूल्य पदार्थों का वर्णन ऋग्वेद में मिलता है।

पर्याय-

मौक्तिक, सौम्या, शौक्तिकेय, तार भौतिक, भौतिक, अन्तः सार, शीतल नीरज, नक्षत्र, इन्दुरत्न, लक्ष्मी, मुक्ताफल, बिन्दुफल, मुक्तिका, शौक्तेयक, शुक्तिमणि स्वच्छहिम, हिमबल, सुधांशुभ, सुधांशुरत्न, शौक्तिक, शुक्तिबीज, हारी, कुवल, शशिप्रभ अम्भसारः, सौम्य, तार, तारा।[२]

मोती को संस्कृत में मुक्ता, हिन्दी में मोती, गुजराती में मोती, कन्नड में मौक्तिक, तैलगु में मोत्यालु, इंग्लैंड में Pearl, लैटिन में Mergarit इत्यादि कहते हैं।

प्राप्ति स्थान-

सिंहलक, पारलौकिक, सौराष्ट्र, ताम्रपर्णी, पारसव, कौवेर, पाण्डयवाटक, तथ हैम आदि देशों में हाथी आदि से मुक्ता निकाली जाती है। जो मुक्ता विविधाकृति स्निग्ध और हंस के जैसी आभायुक्त बड़ी-बड़ी मुक्ताएं हैं वह लंका में पाई जाती हैं। मोती भारत में प्राचीन काल से ही व्यवहार में आता रहा है। अर्थववेद के एक मंत्र में (४/१०/१) यह कृशन नाम से उल्लिखित है।

उत्पत्ति स्थान-

प्राचीन ग्रन्थों में इसकी उत्पत्ति सीप शंख, विद्युत, सर्प के मस्तक, मछली मेण्डक, वाराह, हाथी तथा बांस से बताई है। किन्तु आज के विज्ञान ने यह पता लगा लिया है कि सीप के भीतर जब कोई बालू का कण चलाजाता है तब उसका जंतु उसके उपर परत चढ़ाने लगता है, धीरे धीरे इस प्रकार मोती तैयार हो जाता है।

प्राचीनतम समय से मोती की गणना बहुमुल्य वस्तुओं से समझी जाती रही है। प्राचीन हिन्दी, चीनी आदि प्रसिद्ध जातियों ने अपने मन्दिरों, चैत्यालयों और मसजिदों में देवी देवताओं का शृगांर करके उन की शोभा बढ़ाने के निमित्त मुक्ताहारों का प्रयोग अनेकों स्थलों पर किया है।[६]

द्रष्टव्य

१. हि० वि० - पृ० - ७०२
२. शालि० नि० भू०- पृ० - ७३८
३. हि० वि० - पृ० - ७०३
४- र० वि० पृ०- ७०
५- हि० वि० पृ०- ३४
६- र० वि० पृ०- ७५

मुक्ता के देवता एवं प्रकार -

१- अलसी पुष्प के समान श्याम वर्णवाले मोतियों का देवता विष्णु है।
२- चन्द्र की कान्ति के समान वर्ण वाले मोती का देवता इन्द्र है।
३- हरिताल के समान कान्तिवाले मोती का देवता वरुण है।
४- काले वर्ण वाले मोती का देवता यम है।
५- पके हुए अनार के बीज के समान रक्त वर्ण वाले मोती का देवता वायु है।
६- धूम रहित अग्नि या कमल के समान कान्ति वाले मोती का देवता अग्नि है।[1]

पारलौकिक मुक्ता- ताम्रपर्णी देश में उत्पन्न मुक्ता कुछ तामड़ा रंग लिए सफेद होती है। सफेद पीली कर्कश और विषम मुक्ता को ही पारलौकिक कहते हैं। सौराष्ट्रमुक्तान्देश की मुक्ता न तो बहुत बड़ी और न उतनी ही छोटी होती है। इसका रंग घी के जैसा होता है इसीलिए इस मुक्ता को सौराष्ट्र मुक्ता कहते हैं।

पारसव मुक्ता- प्रकाशयुक्त सफेद, भारी और अच्छे गुणों से युक्त पारसव कहलाती है।

हैम मुक्ता- छोटी, मथे हुए दही के रंग की, बड़ी तथा बेडौल मुक्ता हैम नाम से प्रसिद्ध है।

कौवेर मुक्ता- काले या सफेद रंग की बेडौल, छोटी तथा तेजस्क मुक्ता को कौवेर कहते हैं।

पाण्डय मुक्ता- पाण्डय देश की मुक्ता नीम के फल, त्रिपुट और धान के चूर्ण के जैसी होती है।

वैष्णव अथवा **विष्णुदैवत मुक्ता-** इस प्रकार की मुक्ता अतसी फूल के जैसी होती है।

ऐन्द्र मुक्ता- चन्द्रमा के जैसी रंग वाली मुक्ता को ऐन्द्र मुक्ता कहते हैं।

वारुण मुक्ता- हरताल सी चमकीली होती है।

यमदैवत मुक्ता- यमदैवत मुक्ता काले रंग की होती है।

वायुदैवत मुक्ता- इस प्रकार की मुक्ता अनार, गुञ्चा और तांबे के जैसे पके रंग की होती है।

आग्नेय मुक्ता- आग्नेय मुक्ता धूमरहित अग्नि और कमल की जैसी चमकीली होती है।

बाराह मुक्ता- शूकर के दाँत की जड़ में चन्द्रमा की कान्ति सी और अनेक गुणों से युक्त होती है।

तिमिज मुक्ता- तिमि मछली से मछली की आँख जैसी चमकीली बहुत गुणों से युक्त पवित्र और बड़ी मुक्ता निकलती है।[2]

१- अलसी कुसुम सुमश्यामं वैष्णवमैन्द्रं- - -।
हरितालनिभं वारुणमसितं यमदैवतं भवति।।
परिणतदाडिमगुलिकागुंजाताम्रं च वायुदैवत्यम्।
निर्धूमानलकमलप्रभं च विज्ञेयमाग्नेयम्।। बृ० सं०- ८०/ ७-८

२. दृष्टवय हि० वि० - पृ० - ७०३-७०४

मेघज मुक्ता- मेघ से भी मुक्ता उत्पन्न होती है। सप्तम वायु के स्कन्ध से गिरी हु दामिनि सदृश प्रभा वाली ओलों के समान जो मुक्ता होती है उसे मेघज मुक्ता कह हैं। इस मुक्ता को देवगण हरण कर लेते हैं। अतएव यह पृथ्वी पर नहीं मिलती है

सर्प उत्पन्न मुक्ता- तक्षक तथा वासुकि वंश में उत्पन्न जो कामगामी सर्प हैं उन फन के अग्रभाग पर नीलद्युति सम्पन्न स्निग्ध मुक्ता उत्पन्न होती है। पवित्र स्थान चाँदी के बरतन में रख छोड़ने से जो मुक्ता तौल में हठात बढ़ जाती है उसी को स से उत्पन्न मुक्ता जानना चाहिए।

वेणुजात मुक्ता- कपूर और स्फटिक जैसी दीप्तिमान, चिपटी और विषम होती है

शंखज मुक्ता- चन्द्रमा की तरह गोल, दीप्तिमान और सुन्दर होती है।[1]

गज मुक्त- गजमुक्ता के बारे में चाणक्य ने लिखा है कि **"मौक्तिकं न गजे** गजे सभी हाथियों में मुक्ता नहीं रहती है हाथी के मस्तक में मुक्ता इस प्रकार प्राप्त होत है। जो हाथी पवित्र वंश में जन्म लेते हैं उन्हीं के मस्तक में मुक्ता उत्पन्न होती है इन हाथियों में किसी-किसी में सुगोल कुछ पीली और छायाविहीन मुक्ता होती है हाथी कई श्रेणी के होते हैं। इन उत्व वंश के हाथियों के चार भेद हैं, उन चारों मुक्ता पाई जाती है। अतएव इनसे उत्पन्न मुक्ता भी चार प्रकार की होती है।

१. ब्राह्मण २. क्षत्रिय ३. वैश्य ४. शूद्र।

(१) **ब्राह्मण-** इस वर्ण की मुक्ता पीली और शुक्ल वर्ण की होती है।

(२) **क्षत्रिय-** इस वर्ण की मुक्ता पीली और लाल होती है।

(३) **वैश्य-** वैश्य जातीय मुक्ता पीली और श्याम वर्ण की होती है।

(४) **शूद्र-** शूद्र जातीय मुक्ता पीली और नील वर्ण की होती है।

कम्बोज देश में हाथी के कुम्भ में जो मुक्ता होती है, उसका आकार आँव के फल के जैसा होता है। यह तौल में कुछ भारी, पिञ्चरस की होती है। इसमें छा तथा कान्ति बहुत थोड़ी रहती है। कम्बोज देश के बलवान हाथियों के गंडस्थल के निकट किञ्चित लाल और पीले रंग का मोती उम्पन्न होता है।[2] अग्निपुराण के म से गजमुक्ता ही सर्वश्रेष्ठ है।

---

१. दृष्टवय हि० वि० - पृ० - ७०३-७०४

२. मतङ्गजा ये तु विशुद्धवंश्यास्ते मौक्तिकानां प्रभवाः प्रदिष्टाः।
उत्पद्यते मौक्तिक मेषु वृत्तं आपीत वर्ण प्रभया विहीनम्।।
वक्ष्ये गजपरीक्षायं गजजातिर्चतुर्विद्या।
मौक्तिकं तेषु जातं हि चतुर्विधमुर्दार्य्यते।।
ब्राह्मणं पीतशुकलन्तु क्षत्रियं पीतरक्तकम्।
पीतश्यामन्तु वैश्यः स्यात् शूद्रं स्यात् पीतनीलकम्।।
काम्बोजकुम्भसम्भूतं धात्रीफलनिभं गुरु।
अतिपिञ्जरसच्छाया मौक्तिकं मन्दधाधितः।। (युक्ति० श्लो० - ४४-४८)

"नागदन्तभवाश्चाग्रयाः" हाथी दाँत से उत्पन्न मुक्ता ही सर्वश्रेष्ठ है।[1]

फणि मुक्ता(सर्प से उत्पन्न मुक्ता)- जिन साँपों के मस्तक पर पत्थर रहता है वे विष से विभोर रहते हैं। जो साँप वासुकि या तक्षक के वंश में जन्म लेते हैं और अपनी इच्छानुसार चल फिर सकते हैं उनके फन के अगले भाग में स्निग्ध और नीलवर्ण की मुक्ता जन्म लेती है। यह देखने में अत्यन्त गोल, नीलवर्ण और अत्यन्त दीप्तिमान होती है। ऐसी मुक्ता भाग्यशाली लोगों को ही प्राप्त होती है। यह मुक्ता शृगाल कौल(उन्नाव) आवले गुञ्जे या बेर की जैसी डीलडौल में होती है। यह चार प्रकार की मुक्ताएं भी ब्राह्मणादि चार वर्ण के साँपों से उत्पन्न होती है।[2]

शेष के वंश में जो उत्पन्न हुए सर्प होते हैं उन सर्पों के फणों में जो मोती उत्पन्न होते हैं वह मोती गोल, निर्मल, उज्जवल चन्द्रमा के समान श्याम छविवाले और कंकोल के समाल आकृति वाले होते हैं। करोड़ों जन्मों के पुण्य से ही यह प्राप्त होते हैं। उससे गज अश्वादि की वृद्धि होती है और वह नीचकुल का भी मनुष्य राजा के समान हो जाता है। उन मोतियों को घर में रखने से निश्चय ही राक्षसबाधा दूर होती है तथा महाशान्ति होती है।[3]

मीनज मुक्ता- मछली विशेष के मुँह में एक प्रकार का पत्थर होता है। उसी को शास्त्र में मत्स्य मुक्ता कहा गया है। पाठीन नाम की मछली से जो मुक्ता निकलती है वह पाठीन की पीठ के रंग की, गोल और छोटी होती है। जिन मछलियों से मीन मुक्ता निकलती है वह समुद्र के बीच रहा करती हैं। भिन्न-भिन्न प्रकार की मछलियों से भिन्न प्रकार की मुक्ता निकलती है। वायु, पित्त और कफ इन तीनों में से दो-दो या तीन-तीन गुण वाली सभी मछलियाँ सात प्रकृति की होती हैं। अतएव मुक्ता के भी सात भेद हुए। वात प्रधान मछली से छोटी और लाल रंग की पित्त प्रधान की मृदु और कुछ पीले रंग की और कफ प्रधान से बड़ी और उजले रंग की मुक्ता निकलती है। वात और पित्त दोनों प्रबल रहें, तो मुक्ता कोमल और छोटी होती है। एक-एक या दो-दो प्र.ति के जो सब लक्षण बताए गए हैं। वो सब के सब अल्प परिमाण में जिस मुक्ता में पाए जायें उसे सन्निपातिकज और एकज (एक प्रकृति की) मुक्ता प्रशस्त और शुभदायक होती है।[4]

---

१. शालि० - पृ० - ७३६

२. हि० वि० - पृ० - ७०५

३. शेषस्यान्वयिन ासुफिनांयन्मौक्तिकंजायते।
वृत्तंनिर्मलमुज्जवलंशशिरुचिश्यामच्छविश्रीकरम्।।
कंकोलाकृतिकोपिकोटिसुकृतैः प्राप्नोतिचेन्मानवः।
सस्याद्वाजिगजाधिकोनृपसमोजातोपिनीचेकुले।।
आस्तेसद्मानिचेत्सपन्नगमणिस्तेयातुधानामरा।
हंर्तुरंध्रमवेक्षतेइतरतः कुर्य्यान्महाशांतिकम्।। शालि० - पृ०- ७४१

४. हि० वि० - पृ०- ७०५

मछली के पेट में जो मोती होते हैं वह गजमोती की ही आकृति वाले, पाढल के फूल के समान रंग वाले होते हैं।[1]

इस पृथ्वी पर इस मोती पर पापीजनों की दृष्टि नहीं पड़ती है। वातप्रधान मछली से छोटी और लाल रंग की पित्त प्रधान से मृदु और कुछ पीले रंग की और कफ प्रधान से बड़ी और उजले रंग की मुक्ता निकलती है। वात और पित्त दोनों प्रबल रहें तो मुक्ता कोमल और छोटी होती है। वात और कफ की अधिकता हो तो कुछ बड़ी तथा पित्त और कफ की अधिकता हो तो मुक्ता अधिक स्वच्छ होती है तथा एक एक या दो-दो प्रकृति के सब लक्षण अल्प परिमाण में जिन मुक्ताओं में पाए जाते हैं उसे सान्निपातिकज और एकज (एक प्रकार की) मुक्ता प्रशस्त और शुभदायक होती है।[2]

वराह मुक्ता- शूकर से भी एक प्रकार की मुक्ता निकलती है। साँप के फन पर मछली के मस्तक पर और हाथी के दन्तकोष से जिस प्रकार मुक्ता उत्पन्न होती है उसी प्रकार शूकर के दन्तकोष में भी मुक्ता उत्पन्न होती है। ब्राह्मादि चार वर्णों में विभक्त हुई है।

(१) ब्राह्मण जातीय- शुभ्रवर्ण वराह मुक्ता ब्राह्मण जातीय है।

(२) क्षत्रिय जातीय- रक्तवर्ण मुक्ता क्षत्रिय जातीय है।

(३) वैश्य जातीय- शुक्ल पीतवर्ण की और बेर फूल की जैसी होती है।

(४) शुद्र जातीय- कृष्ण वर्ण की तथा कर्कश होती है। इसकी बनावट बेर फूल की जैसी और रंग शूकर के नपे दांत जैसी है। वराह मुक्ता अत्यन्त दुर्लभ और अत्यन्त प्रशस्त होती है।[3]

जो सुअर अकेला सुखसहित निस्पृह वन में विहार करता है उस सुअर के मस्तक में मोती होता है। वह मोती कंकोल के समान आकृतिवाला, चन्द्रमा के समान धवल होता है। यह मोती प्रारब्ध से ही प्राप्त होता है। इस मोती के मिलने से दरिद्री धनाधीश हो जाते हैं।[4]

वेणुज मुक्ता- बांस में जो मुक्ता होती है, उसे वेणुज मुक्ता कहते हैं। बांस में जिस प्रकार वंश लोशन होता है, उसी प्रकार मुक्ता भी उत्पन्न होती है। बांस की मुक्ता कपूर या चन्द्रमा के समान सफेद, गठन में कंकोल फल के जैसी और स्निग्ध होती है। पचभूत गुणाधिक्य के अनुसार बांस पाँच प्रकार का होता है। अतएव बाँस से उत्पन्न मुक्ताएँ भी पाँच प्रकार की होती है। पृथ्वी की प्रधानता हो तो हलकी, वायु की प्रधानता में मृदु और बड़ी, आकाश की प्रधानता में कोमल और जल की प्रधानता में अत्यन्त उजली और स्निग्ध होती है। इन सब मुक्ताओं को पहनने से किसी तरह की व्याधि नहीं होती है।[5]

---

१. प्रोष्ठीगर्भगतस्तु मौक्तिकमणिर्गाजैः समः पाटली।
पुष्पाभः सन लक्ष्यते भुविजनैरस्मिन्कलौपापिभिः।। शालि० - पृ०- ७४०

२. हि० वि० - पृ० - ७०५ ३. तदेव- - पृ० - ७०६

४. एकाकीससुखेननिस्पृहतयायः काननंगाहते।
तस्यानादि वरावंशजनुष कोलस्यमूर्ध्निस्थितम्।।
कंकोलाकृतिमिन्दुवत्सधवलंदैवादवाप्नोतितत्।
यस्तंधेरयते भवेत सनिधिभिर्मत्याधनाधीशवत्।। शालि० - पृ० - ७४०

५ हि० वि० - पृ० - ७०६

कुलाचल पर्वत पर उत्तमकान्ति वाले बांस होते हैं उन बांसों में बेर के समान मोती होते हैं। उस मोती को स्त्रियाँ कण्ठ में धारण करती हैं।[1]

शंखज मुक्ता– शंख से इसकी उत्पत्ति होती है इसी से इसको शंखज मुक्ता कहते हैं। इस मुक्ता का रंग शंख के पेट के जैसा और परिमाण में यह एक बड़े बेर के जैसी होती है। पाञ्चजन्य शंख के वंशज शंखों से उत्पन्न मुक्ता कबूतर के अण्डे के बराबर और ओले तथा दामिनी की तरह चमकीली होती है। अश्विनी आदि २७ प्रकार की होती है। शुक्ल, अशुक्ल, पीत, रक्त, नील, लोहित, पिञ्जर, कर्ब्बुर और पाटल आदि वर्ण तथा महत,मध्य,लघु परिमाण द्वारा इसके २७ भेद किये गए हैं। गुण में शंखज मुक्ता निकृष्ट होती है।[2] मोती को शंख से भी प्राप्त किया जा सकता है।[3]

पाँचजन्य शंख के वंश के जो शंख समुद्र में हैं, उन शंखों में सफेद तथा नक्षत्र के समान कान्तिवाले और कबूतर के अण्डे के समान गोल मोती उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार के मोती झलकदार, स्निग्ध, हलके और लक्ष्मी जनक हैं तथा एक बार मनुष्यों के स्पर्श होने पर वे फिर से हाथ नहीं आते हैं अर्थात् प्राप्त नहीं होते हैं।[4]

जीमूत मुक्ता– जीमूत मुक्ता का अर्थ मेघ है, मेघ से उत्पन्न मुक्ता जीमूत मुक्ता कहलाती है। मेघ से मुक्ता उत्पन्न होती है। मेघ में जिस प्रकार बिजली उत्पन्न होती है वैसी ही मुक्ता भी जन्म लेती है। बिजली जिस प्रकार मेघ से गिरती है उसी प्रकार सप्तम दामिनी वायुस्कन्ध से दामिनी की जैसी मुक्ता भी गिरती है। किन्तु यह मुक्ता पृथ्वी पर पहुँचने से पहले ही देवताओं द्वारा हर ली जाती है। इसकी प्रभा विद्युत के जैसी होती है। जलबिन्दुओं के परिपाक विशेष से भी मेघ से मुक्ता उत्पन्न होती है। यह मुक्ता मुर्गी के अण्डे के समान गोल, तौल में भारी और सूर्य्य किरण की जैसी दीप्ति युक्त होती है। मनुष्य इसका भोग नहीं कर सकते हैं। मेघज मुक्ता तेज और प्रभा से सभी दिशाओं को प्रकाशित करती है तथा सूर्य के समान यह दृश्य है। इसका तेज अग्नि चन्द्रमा, नक्षत्र, ग्रह और तारागण के तेज से भी अधिक है। इसका प्रकाश रात्रि और दिन में एक समान रहता है। यदि जन्मों के पुण्य से यह मुक्ता किसी को भी मिल जाए तो वह शत्रुरहित होकर सम्पूर्ण पृथ्वी का भोग करता है। यह मुक्ता केवल राजा के लिए ही शुभदायक नहीं अपितु यह मुक्ता जिस किसी स्थान में रहती है उसके चारों ओर सौ योजन तक अशुभ नहीं होता है।

---

१. मुक्तः सन्तिकुलाचलेषुकरकाकान्त्युद्भवावंशजाः।
कर्कन्धूफलबन्धवोनिदधतेकंठेषुशुद्धांगनाः।। शालि०- पृ० - ७४०

२. हि० वि० - पृ० - ७०६

३. कौ० वै० पर० - पृ० - १०७

४. शंखस्याच्युतहारिणोजलनिधौयेवंशजाः कम्बुका।
स्तांष्वंतकिलमौक्तिकमभवतिवैतच्छुतारानिभम्।।
कापोताण्डसमंसुवृत्तमसकृच्छ्रीकसरुपंलघु।
स्निग्धंस्पर्शकृतोहितध्वमपुनर्मर्त्यैस्ता।। युक्ति० श्लो० - ८८-९०

प्रकार- मेघ, जल, ज्योति और वायु से उत्पन्न होता है। अतएव इससे उत्पन्न मुक्ता भी तीन प्रकार की होगी है।

(१) जलप्रधान मेघ से उत्पन्न मुक्ता- जल प्रधान मुक्ता अत्यन्त स्वच्छ, कोमल और कान्तियुक्त होती है।

(२) ज्योतिप्रधान मुक्ता- ज्योतिप्रधान मेघ से उत्पन्न मुक्ता सुगोल सुकान्ति, सूर्यकिरण की जैसी प्रकाशवाली है। आँखें इसके प्रकाश को नहीं देख सकती हैं।

(३) वायुप्रधान मुक्ता- वायु का भाग अधिक हो तो मेघज मुक्ता सुकान्ति, सुकोमल, और सुगोल होती है। इसका आकार छोटा होता है।[1]

दुर्दुर मुक्ता- दुर्दुर मेंढ़क को कहा जाता है, मेंढक के माथे में भी जन्म लेती है। यह मुक्ता नागमुक्ता के समान आदरणीय और गुणों में उसी के समान होती है।[2]

वर्षा ऋतु में जो मेंढक मेघोदर से उत्पन्न होते हैं और यह पृथ्वी पर नहीं गिरते हैं, उन मेंढकों के उदर में मोती उत्पन्न होते हैं। वह मोती पृथ्वी पर नहीं आते हैं बीच में देवता ग्रहण कर लेते हैं। वह मोती सूर्य के तेज से भी अधिक और बिजली के समान प्रभा वाले होते हैं। इस प्रकार के मोती मनुष्यों के लिए तो दुर्लभ हैं ही किन्तु देवता भी इसे ग्रहण नहीं कर सकते हैं।[3]

शुक्ति मुक्ता(शुक्ति सीप) - सीप में जो मुक्ता उपजती है उसे शुक्तिज मुक्ता कहते हैं। इसी प्रकार की मुक्ता ही सब स्थानों में पाई जाती है। **"तेषान्तु शुवयुद्भव मेव भूरि"**। जितने प्रकार की मुक्ताएँ हैं उनमें शुक्तिज मुक्ता बहुतायत में उत्पन्न होती है। अन्य मुक्ता दुर्लभ हैं। केवल समुद्र ही से शुक्ति की प्राप्ति होती है। ऐसा भी नहीं है कहीं-कहीं जलाशयों से भी इसे प्राप्त किया गया है। समुद्र में यह बहुतायत में होती है इसीलिए समुद्र को ही इसका आकर कहते हैं।[4]

वर्षा विशेष की जलधारा ही मुक्तोत्पत्ति का कारण है। मेघ से छूटा हुआ मुक्ताबीज स्वरूप जल जिस देश में या जिस समुद्र में गिरता है वहीं सीप में यह जल रह कर मुक्ता उत्पन्न करता है। स्वाति नक्षत्र के मेघ का जल सीप में पड़ कर मुक्ता हो जाता है। इस मुक्ता की आभा बड़ी ही निर्मल होती है।[5]

---

१. हि० वि० - पृ० - ७०६

२. भेकादिष्वापि जायन्ते मृणयो ये क्वचित क्वचित्।
भोजङ्मणयेस्तलयास्ते विज्ञेया बुधोत्तमैः।। युक्तिः० श्लो० - ८३

३. यन्मेघोदरसम्भवतंद्रव नीमप्राप्तभेवाम रै। व्योंमस्थैरपनीयतेविनियतंवर्षासुमुक्ताफलम्।।
तिग्मांशोर पिटुर्निरीक्ष्यम.शंसौदामनीसन्निभम्। देवानामपिदुर्लभंनमनुजस्यैतरय्यप्राप्तिः पुनः।।
शा० सि६ भू०- पृ०- ७४०

४. हि० वि० - पृ० - ७०७

५. यस्मिन प्रदेशेऽम्बुनिधौ पपात् सुचारू मुक्तामणिरत्नबीजम्।
तस्मिन् पयस्तोयधरावकीर्णं शुक्तौ स्थितं मौक्तिकतामवाप।।
स्वात्यां स्थिते स्थिते खौ मेघैर्ये मुक्ता जलीवन्दवः।
शीर्णाः शुक्तिषु जायन्ते तैर्मुक्ता निर्मलत्विषः।। युक्ति० श्लो०- पृ०- ८६-८८

रुक्मिणी नामक एक जाति की शुक्ति होती है उसमें प्रायः मुक्ता उत्पन्न नहीं होती है। यदि उत्पन्न हो तो उत्तम समझी जाती है। रुक्मिणी नामक शुक्ति में जो मुक्ता जन्म लेती है वह बड़ी कठिनाई से मिलती है। वह मुक्ता चन्द्रमा की किरण के समान उजली, स्वच्छ और परिमाण में जायफल के बराबर होती है। इसकी कान्ति अत्यन्त उत्तम और देखने में बड़ी सुन्दर होती है। बड़े भाग्य से ऐसी मुक्ता मिलती है।[1] रत्न शास्त्रज्ञयों ने मुक्ता की तरह ही शुक्ति को भी ब्राह्मणादि चार श्रेणियों में विभक्त किया है।

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र भेद से शुक्ति चार प्रकार की होती है। अतएव इनसे उत्पन्न मुक्ता भी ब्राह्मणादि भेद से चार प्रकार की होती है। जो मुक्ता श्वेत, निर्मल, भारी तथा शुक्ल प्रभायुक्त होती है वह ब्राह्मण जातीय मुक्ता है। जो कुछ लाल, स्थूल और अरुणप्रभावाली है वह क्षत्रिय जाति की, कुछ पीली, स्निग्ध और शुभ्रप्रभावाली वैश्य जाति की तथा जो मुक्ता स्थूल और काली है वह शूद्र जाति की समझी जाती है।[2]

जो सीपरूप के समान दीप्तिमान अत्यन्त उत्तम गुणयुक्त समुद्र में उत्पन्न होती है उस सीप में कुंकुम के समान प्रभायुक्त जायफल के समान रूपवाले, स्थूल, स्निग्ध, अत्यन्त निर्मल और सदैव प्रकाश करने वाले मोती उत्पन्न होते हैं।[3] मोती को शुक्ति से प्राप्त किया जाता है ऐसा कौटिल्य काल में भी माना गया है।

मुक्ता – मत्स्य, सर्प, शंख, वराह, बाँस, मेघ, शुक्ति इनसे मोती पैदा होता है किन्तु शुक्ति से अधिक पैदा होता है।[4] काला, सफेद, पीला, रक्त जिसमें दो, चार, सात कंचुक (पड़दे) हों ऐसा मोती कनिष्ट, मध्यम, श्रेष्ठ शुक्ति से उत्पन्न कहा है।

---

१. रुक्मिण्याख्या तु या शुक्तिरतत् प्रसूतिः सुदुर्लभा। तत्र जातं सितं स्वच्छं जाती फलसमं भवेत्।।
छायावद्बहुलं रम्यं निर्दोष यदि लभ्यते। अमूल्यं तद्विनिर्दिष्ट रत्नलक्षणकोविदैः।।
दुर्लभं नृपयोग्य स्यादल्पभज्ञैर्न लभ्यते।। ग० पु०, अ०- ६६, श्लो०- ६३-६४

२. ब्रह्मादिजातिभेदेन शुक्तयो चतुर्विधाः। तासु सर्वासु जातं हि मौक्तिकं स्यात्त्चतुर्विधम्।।
ब्रह्मणस्तु सितः स्वच्छो गुरुः शुक्लः प्रभान्वितः। आरक्तः क्षत्रियः स्थूलस्तथरूण प्रभान्वितः।।
वैश्यस्तवापीवर्णोऽपि स्निग्धः श्वेतः प्रभान्वितः। शुद्रः शुक्लवपुः सूक्ष्मस्तथा स्थलोऽसितद्युतिः।।
तदेव- अ०-६६, श्लो० - ६६-६८

३. षट्स्वेतेष्वपिरुक्मिणीवजगतिख्यातिंगतारूक्मिणी।
नाम्नोशुक्तिमतीवचोत्तमगुणासिंधौसमुज्जृम्भते।।
तस्यागर्भवंतुकुंकुमनिभंजातीफलाकृत्तिनम्।
स्थूलंस्निग्धमतीवनिर्मलमलंभूमौप्रकाशं सदा।। शा० नि० भू. - पृ० - ७४२

४. मत्स्याहिशंखवाराहवेणुर्जीमूतशुक्तिः।
जायते मौक्तिकंतेषुभूरिशुत्तयुद्भवंस्मृतम्।। शुक्र० अ०-४, श्लो०- ७३, पृ०-१०२,

मुक्ता के लक्षण-

१-गज मुक्ता का लक्षण-

पुष्य या श्रवण नक्षत्र में चन्द्र या रविवार में उत्तरायण में रवि और चन्द्र के ग्रहण काल में ऐरावत में उत्पन्न जिन भद्र हाथियों का जन्म होता है उन के दन्त कोष या कुम्भों में बड़े-बड़े अनेक प्रकार के और कान्तियुक्त बहुत से मोती निकलते हैं।[1]

२- सुअर ओर मछली से उत्पन्न मोती का लक्षण-

सुअर के दन्त मूल में चन्द्र प्रभा के समान कान्ति वाले बहुत गुणों से युक्त मुक्ताफल निकलते हैं तथा मछली से मछली के नेत्र के समान, स्थूल, पवित्र और बहुत से गुणों से युक्त मुक्ताफल निकलते हैं।[2]

३-मेघ से उत्पन्न मुक्ताफल का लक्षण-

वर्षा कालिक उपल (पत्थर) के समान, सप्तम वायु स्कन्ध से पतित बिजली के समान मेघ से उत्पन्न मोती पृथ्वी पर नहीं पहुँच पाता है यह मुक्ता में स्थित देवयोनियों द्वारा ही उपर हरण कर लिया जाता है।[3]

४-नागज मुक्ता का लक्षण- जो तक्षक और वासुकि के कुल में उत्पन्न स्वेच्छादारी सर्प हैं उनके फनों के अग्र भाग से स्निग्ध, नीली कान्ति वाले मोती निकलते हैं।[4]

५- बाँस और शंख से उत्पन्न मोती- बाँस से उत्पन्न मोती कपूर या स्फटिक के समान कान्ति वाला चिपटा और विषम होता है तथा शंख से उत्पन्न मोती चन्द्रमा के समान कान्ति वाला, गोल चमकीला और सुन्दर होता है।[5]

१- ऐरावतकुलजानां पुष्यश्रवणेदुसूर्यदिवसेषु।
ये चोतरायणभवा ग्रहणेऽर्केन्द्वीश्च भद्रेभाः ।।
तेषां किल जायन्ते मुक्ताः कुम्भेषु सरदकोशेषु।
बहवो बृहत्प्रमाणा बहुसंस्थानाः प्रभायुक्ताः।। बृ० सं०- ८०/२०-२१

२- दंष्ट्रामूले शशिकान्तिसप्रभं च बहुगुणं वाराहम्।
तिमिजं मत्स्याक्षिनिभं बृहत्पवित्रं बहुगुणं च ।। तदेव- ८०/२३

३- वर्षोपलवज्जातं वायुस्कन्धाच्च सप्तमाद्भ्रष्टम्।
ह्रियते किल रवाद्दिव्यैस्तोडित्प्रभं मेघं सम्भूतम्।। तदेव- ८०/२४

४- तक्षक वासुकिकुलजः कामगमा ये च पन्नगास्तेषाम्
स्निग्धा नीलद्युतयो भवति मुक्ताः फणस्यान्ते ।। तदेव- ८०/२५

५- कपूरस्फटिकनिभं चिपिटं विषम च वेणुजं ज्ञेयम् ।
शंखोद्[illegible] ।। तदेव- ८०/२८

६- **शूकर मुक्ता का लक्षण-** एक विशेष प्रकार का सुअर जो कि जंगल में अभय और मस्त होकर घूमता है उसके मस्तिष्क में मोती पाया लाता है।[1]

मत्स्य पुराण एवं आयुर्वेद शास्त्र में मुक्ता के आठ प्रकार के गुण बताये गये हैं-

१- सुतार, २- सुवृत्त, ३- स्वच्छ, ४-निर्मल, ५-धन, ६-स्निग्ध, ७-सुच्छाय, ८- अस्फुटित।

१-**सुतार-** गगन में सुशोभित तारों की जैसी द्युतिविशिष्ट होने से उसे सुतार कहते हैं। सुतार गुण वाली मुक्ता बहुत कम मिलती है।

२- **सुवृत्त-** जो मुक्ता चारों ओर एक समान गोल हो उसे सुवृत्त तथा जो दश दोषों से रहित हो उसे स्वच्छ मलरहित निर्मल कहते हैं। जिस मोती में पूरीतरह से गोलाई होती है उसे सुवृत्त कहा जाता है।

३- **स्वच्छ-** जो मोती १०या १४ दोषों से रहित होता है उसे स्वच्छमुक्ता कहा जाता है।

४- **निर्मल-** जो मोती किसी भी प्रकार के दाग आदि चिन्हों से रहित होता है उसे निर्मल मुक्ता कहते हैं।

५- **घन-** जो मुक्ता तौल में भारी हो उसे धन कहते हैं। धन गुणायुक्त मुक्ता सबसे श्रेष्ठ होती है। जो मोती तौल में भारी होता है उसे घन मौक्तिक कहते हैं ।

६- **स्निग्ध-** जिस मोती के हाथ से स्पर्श करने से, चिकनी वस्तु से परिलिप्त है ऐसा प्रतीत हो, जो मुक्ता स्नेह अर्थात् घी, तेल आदि के जैसे दिखाई पड़ती है उसे स्निग्ध कहते हैं।

७-**सुच्छाय-** जिस मोती को पास से देखने से किसी भी प्रकार की वर्णयुक्त छाया दिखाई देती हो, जिस मुक्ता में किसी न किसी प्रकार की कान्ति (छाया) रहे उसे सुच्छाय कहते हैं।

८- **अस्फुटित-** जो मोती व्रण और रेखाओं से रहित होता है, व्रण अर्थात् छिद्रकार चिह्न या किसी प्रकार की रेखा न रहे उस चिह्न रहित मुक्ता को अस्फुटित कहते हैं। इस प्रकार की मुक्ता बहुत ही मूल्यवान् तथा दुर्लभ होती है।[2]

१- एकाकी सुसखेन निस्पृहतयायः काननं गाहते,
तस्यानादिवराहवंशजनुषः कोलस्य मूर्ध्नि स्थितम्।। र० वि० पृ०- ८७

२. सुतारञ्च सुवृत्तञ्च स्वच्छञ्च निर्मलन्तथा। धनं स्निग्धञ्च सच्छायं तथाऽस्फुटित मेव च। अष्टौ गुणाः समाख्याता मौक्तिकानामशेषतः।। (१०)

तदयथा- तारकाद्युतिसंकाशं सुरीमति गद्यते। सर्वतो वर्त्तुल यत्त्व सुवृत्तं तन्निगद्यते।।
स्वच्छं दोषविनिर्मुक्तं निर्मलं मलवर्जितम्। गुरुत्वं तुलने यस्य तदघनं मौक्तिकं वरम्।।
स्नेहेनैव विलिप्तं यत् तत् स्निग्धमिति गद्यते। छाया समन्वितं यत्त्च सु (स)च्छायं तन्निगद्यते।।
व्रणरेखाविहीनं यत् तत्स्यादस्फुटतं शुभम्। भ्राजिष्णु कोमलं कान्तं मनोज्ञं स्फुरतीव च।।
स्रवतीव च सत्त्वानि तन्महारत्नं संज्ञितम्। श्वेतकाच समाकारं शुभ्रांशु शतयोजितम्।।
शशिराज प्रतिच्छायं भौक्तिकं देवभूषणम्।। म० पु० अ०-१६८, श्लो०- १०-१५

अग्नि पुराण में रत्नपरीक्षा प्रसंग में मुक्ता के चार गुण बताए गए हैं - वृत्तत्व, शुक्लता, स्वच्छ और महत्व। इन चार गुणों के आधार पर मुक्ता का मूल्य निर्धारित किया जाता है।

इन गुणों के अतिरिक्त मुक्ता के और भी कई महागुण हैं। उन सब गुणों वाली मुक्ता को महारत्न कहते हैं वे गुण हैं - **भ्रजिष्णु, दीप्तिविशिष्ट कोमल लावण्ययुक्त, कान्ति- कमनीय, इच्छोद्रेकारि-गुणविशिष्ट।** कहने का तात्पर्य यह है कि जिसे देखते ही लेने की इच्छा हो जाए जो देखने में सुन्दर हो और गुणों के साथ दीप्तियुक्त हो अर्थात् प्रकाश देती हुई दिखाई पड़े तो ऐसी मुक्ता को महारत्न कहते हैं। जो मुक्ता काँच की जैसी और चन्द्रकिरणयुक्त हो वह देवभूषण है अर्थात् दुर्लभ है।[1]

कृष्णवर्ण, शुभ्रवर्ण, पीतवर्ण तथा दो, चार, सात, गुंजा भर और ३, ५, ७ आवरण की मुक्ताएँ उत्तम होती हैं। कृष्ण वर्ण शुक्ति की मुक्ता हीन, श्वेतवर्ण की मध्यम और रक्त वर्ण शुक्ति की मुक्ता श्रेष्ठ समझी जाती है। पीत मुक्ता को जरठ कहते हैं। जो मुक्ता देखने में तारों की जैसे अत्यन्त शुद्ध, स्निग्ध, स्थूल, निर्मल, वर्ण रहित और जो तौल में भारी हो वह बहुमूल्य होती है।[2]

अग्निपुराण, मत्स्यपुराण और युक्तिकल्पतरु में मुक्ता के दस दोष हैं- उनमें से चार महादोष और छ मध्यम हैं। जैसे शुक्ति, लग्न, मत्स्याक्ष, जठर या जरठ और अतिरिक्त ये चार महादोष हैं।

(१) शुक्तिलग्नदोष- जिस मुक्ता के किसी भाग में सीप का टुकड़ा लगा हो उसको शुक्तिलग्न कहते हैं। इस मुक्ता को धारण करने से कुष्ठ रोग दूर होता है।

(२) मत्स्याक्षदोष- किसी-किसी मुक्ता में मछली की आँख जैसा एक प्रकार का चिह्न दिखाई देता है उसी को मत्स्याक्ष कहते हैं। इन दोषों से दूषित मुक्ता को धारण करने से पुत्रनाश होता है।

(३) जरठ या जठर दोष- जिस मुक्ता में दीप्ति या छाया नहीं, उसे जरठ मुक्ता कहते हैं।

(४) अतिरक्तदोष- जो मुक्ता प्रवाल की जैसी लाल होती है उसको अतिरक्त कहते हैं। इसको पहनने से दरिद्रता होती है। यह चार प्रकार के मुक्ता का महादोष माने गए हैं।

(५) त्रिवृत्तदोष- जिस मुक्ता के ऊपर स्तर के सदृश रेखा दीख पड़ती है उसे त्रिवृत कहते हैं। इसको पहनने से सौभाग्य का क्षय होता है।

(६) चिपीट दोष- जो मुक्ता गोल न हो उसको चिपीट अर्थात् चिपटी कहते हैं।

(७) त्रयस्रदोष- लम्बी मुक्ता कृश कहलाती है। यह बुद्धि का नाश करती है।

---

१. हि० वि० - पृ० - ७०६

२. कृष्णंसितंपीतरक्तांद्विचतुः सप्तकंचुकम्।
[illegible] ॥ युक्ति० श्लो०- ७४, पृ०- १०५

(८) कृशपार्श्व दोष- जिस मुक्ता का एक भाग भग्न या भग्नप्राय हो अथवा टेढ़ा या विषम हो उसको कृशपार्श्व कहते हैं। यह मुक्ता दूषित समझी जाती है।

(६) अवृत्तदोष- पीडकायुक्त मुक्ता अवृत्त कहलाती है। इसको धारण करने से सारी सम्पत्ति नष्ट हो जाती है।[1]

इन दोषों के अतिरिक्त मुक्ता के अन्य दोष भी बताए गए हैं। इन दोषों से युक्त मुक्ताओं को धारण करना उचित नहीं, लेकिन ये औषधि के काम में आ सकती हैं। मुक्ता के लिए अन्य प्रकार के दोष भी बताए हैं।

१- मसूरक (मसूर की तरह का), २. त्रिपुटक (तीन खूँट वाला), ३ कूर्मक (कछुये के समान), ४. अर्धचन्द्रक (अर्ध चन्द्र की भांति), ५. कंचुकित (मोटे छिलके के समान), ६. यमक (जड़ा हुआ), ७-कर्त्तक (कटा हुआ), ८. खरक (खुरदरा), ६. सिक्थक (दागवाला), १०. कामण्डलुक (कमण्डलु के समान), ११. श्याव (भूरे रंग का), १२. नील (नीले रंगका) और १३ दुर्बिद्ध (अस्थान विध मोती)।[2]

इस प्रकार से मुक्ता के दोषों का परीक्षण कर लेना चाहिए जिससे पहनने पर कोई हानि न हो ।

---

१. चत्वारः स्युर्महादोषाः षणमध्याश्च प्रकीत्तिताः। एवं दश समाख्यातास्तेषां वक्ष्यामि लक्षणम्।।
यत्रैकदेशे संलग्नः शुक्तिखण्डो विभाव्यते। शुक्तिलग्नः समाख्यातः स दोषः कुष्ठकारकः।।
मीन-लोचन-संकाशो दृश्यते मौक्तिके तुयः। मत्स्याक्षः स तु दोषः स्यात् पुत्रनाशकरो ध्रुवम्।।
दीप्तिहीनं गतच्छायं जरठं त तद्विदुर्तुधाः। तस्मिन् संधारिते मृत्युर्जायते नात्रर्सशयः।।
मौक्तिकं विद्रुमच्छायमतिरक्तं विदुर्वुधाः। दारिद्रयजनकं यस्मात्तस्मात्तत्परिवृर्ज्जयेत्।।
उपर्य्युपरि निष्ठन्ति वलयो यत्र मौक्तिके। त्रिवृत्तं नाम तस्योक्तं सौभाग्य क्षयकारकम्।।
अवृत्तं मौक्तिकं यच्च चिपिटं तन्नोगद्यते। मौक्तिकं भ्रियते येन तस्या कीर्तिभवेत् सदा ।
त्रिकोणं त्रयस्रमाख्यातं सौभाग्य क्षयकारकम।। निर्भग्नमेकतेयच्च दृश पार्श्व तदुच्यते।
सदोषं मौक्तिकं निन्द्यं निरुद्योगकर हितत्।। युक्ति० श्लो० - २१-२६, पृ० - ११६

२- द्रष्टव्य- र० वि०, पृ० -६३
क) मसूरकं त्रिपुटकं कूर्मकमर्धचन्द्रं कंचुकितं यमकं कर्तकं खरकं
सिक्थकं कामण्डलुकं श्यावं नीलं दुर्विद्धं चाप्रशस्तम्।। अ०शा०, अ०-११, श्लो०-४

३- प्रवाल

व्युत्पत्ति- (सं०पु० क्लि०) प्रवलतीति प्रवल प्राणने (ज्वलतिसन्तेभ्यो ण। पा ३/१/१४० वा प्रवल णिच्- अच्। रक्तवर्णवर्त्तलाकार रत्नविशेष मूंगा। [1]

पर्याय- विद्रुम अङ्गारकमणि, अम्भोधिवल्लभ, भीरत्न, रक्ताङ्ग, रक्ताकार, लतामणि संस्कृत भाषा में प्रवाल को प्रवालक, भौमरत्न, विद्रुम, आब्धिजन्तु आदि कहा जाता है हिन्दी में मूंगा, बंगला में पला, मराठी में पोवर्ले, गुजराती में परबाला, तेलगु प्रवालक, अंग्रेज़ी में रेडकोरल (red-coral),वर्मामें ताड़ा(Toda) तथा चीनी सउ-ही-चील-lochi) कहा जाता है।[2]

प्राचीन काल से ही प्रवाल आभूषणों तथा अन्य सजावटोंके काम में आते हैं। इस में कैल्सियम के तत्व की प्रधानता होने के कारण भारतीय चिकित्सा शास्त्र में इस का प्रयोग प्राचीन काल से ही होता आ रहा है। सब से बड़ा प्रवाल-पर्वत आस्ट्रेलिया का ग्रेट बेरियर रीफ(Great Barrier Reef) है। इसकी लम्बाई १२०० मील तक है। प्रवाल वहीं पाए जाते हैं जहाँ समुद्र का तापमान शरद् ऋतु में लगभग ७ अंश तापक्रम से कम नहीं होता है। इस से इस बात का ज्ञान होता है कि प्रवाल स्तर(coral reefs) उन्ही समुद्रों में पाय जाते हैं जो कि बिषुवत् रेखा के दोनों ओर १८०० मील के अन्दर हो।[3]

प्राप्तिस्थान-

मूंगे समुद्र में प्रायः सभी स्थानों पर पाए जाते हैं परन्तु अच्छे तथा पहनने योग्य मूंगे भूमध्य सागर के तटवर्ती अलजीरिया ईरान की खाड़ी, हिन्द महासागर आदि से निकलते हैं। इनमें से भूमध्य सागर के मार्सलीज सर्डानिया आदि से निकलते हैं स्पेन में मिलने वाले मूंगे अधिक गहरे रंग के होते हैं।[4]

प्रवाल के प्रकार- हीरे एवं मुक्ता की तरह प्रवाल भी चार प्रकार की होती है।

१. ब्राह्मण २. क्षत्रिय ३. वैश्य ४. शूद्र

१-ब्राह्मण प्रवाल- जो प्रवाल खरगोशके रक्त के समान अरुण लाल वर्ण का हो कोमल, स्निग्ध हो, जिसे देखते ही मन को प्रसन्नता का अनुभव हो तथा सरलता पूर्वक जिसमें छेद किया जा सके उसे ब्राह्मण जाति का प्रवाल कहा जाता है।

द्रष्टव्य

१. हि० वि० - पृ० - ६३७

२. तदेव- पृ० - ६३८

३- र० वि०, पृ० - १२३

४- तदेव, पृ० - ६४

२-क्षत्रियप्रवाल- जिस प्रवाल का वर्ण गुडहल के पुष्प के समान, बन्धूक पुष्प के समान, सिंदूर के रंग के समान अथवा अनार के पुष्प के समान हो तो वह प्रवाल क्षत्रिय प्रवाल कहलाता है। क्षत्रियप्रवाल को स्पर्श करने से स्निग्धता का अभाव अनुभव होता है। क्षत्रिय प्रवाल कठोर होता है और उस में छेद कठिनता से होता है।

३-वैश्य प्रवाल- जो प्रवाल वर्ण में पलाश पुष्प के वर्ण के समान, पाटल वर्ण के समान, पंरतु गहरा रंग का और सुचिक्कणता लिए हुए होता है तथा जिसकी कान्ति में क्षीणता होती है ऐसे प्रवाल को वैश्य प्रवाल कहा जाता है।

४-शूद्र प्रवाल- जो प्रवाल लाल कमल के दलों के रंग का, कठोर और स्थायी कान्ति से रहित होता है तथा जिसमें सरलता पूर्वक छेद नहीं किया जा सकता हो ऐसे प्रवाल को शुद्र प्रवाल की संज्ञा दी जाती है।[१]

प्रवाल के गुण-

प्रसन्नता अर्थात् परिष्कार कान्यिुक्त, कोमल अर्थात् सुखवेध्य स्निग्ध वा देखने में घृत तैलादि के जैसा और सुराग अर्थात् नोरा वर्ण विशिष्ट विद्रुम ही सर्वोत्कृष्ट माना गया है। सुराग, सुस्निग्ध, सुखवेध्य बहु कालस्थायी लावण्य और सुन्दर वर्ण ही प्रवाल का प्रधान गुण है।[२]

समुद्र में बाल सूर्य की किरणों के समान लाल मूंगे की बेल उत्पन्न होती है वह बेल कसौटी पे घिसने से भी अपनी कान्ति और रंग को नहीं छोड़ती है तथा अमृत के समान गुणकारी। पकी कन्दूरी के फल के समान लाल, गोल, लम्बे, सरल, स्निग्ध, व्रणरहित और स्थूल इन सब गुणों से युक्त मूंगे उत्तम होते हैं।[३]

उत्तम तथा गुणकारी मूंगे सात प्रकार के बताए गए हैं :-

(१) पके हुए बिम्ब फल के समान (२) गोल (३) लम्बा (४) सीधा (५) चिकना (६) खाँचा या गढ़ा हुआ उभार आदि रहित (७) मोटा तथा जिसका रंग सिन्दूर हिंगुल अथा शिंगरफ से भी मिलता जुलता होता है।[४]

---

१. विद्रुमं नाम तद्रत्नमामनन्ति मनीषिणः। ब्राह्माणादि-जातिभेदेन तत्त्वचतुर्विधमुच्यते।।
अरुणं शशरक्ताख्यं कोमलां स्निग्धमेवच। प्रवालं विप्रजातिः स्थात् सुखवेध्यं मनोरमम्।।
जवावन्धूकसिन्दूरं दाड़िमी- कुसुम - प्रथम्। कठिनं दुर्व्वेध्यमस्निग्धं क्षत्रजाति नदुच्यते।।
पलाशकुसुमाभासं तथा पाटल - सन्निभम्। वैश्यजातिर्भवित स्निग्धं वर्णाढयं मन्दकान्तिमत्।।
रक्तोत्पलदलाकारं कठिनं न चिरद्युतिः। विद्रुमं शुद्रजातिः स्याद वायु-बेद्यं तथैव च।।
युक्ति० - श्लो० ३१-३५, पृ० - १०५

२. हि० वि - पृ० - ६३७

३. बालार्क किरण रक्तासागर सलिलीद्रवाच जलतापाय।
नत्यजति निजांरुचिंनिकाषेघृष्टापिसामृताजात्या।।
पकबिंबफलच्छायंवृत्ताय तमवक्रकम्। स्निग्ध भव्रणकंस्थूलंप्रवालंसप्तधाशुभम्।।
शालि० नित्र भू० - पृ०-७४४

४- द्रष्टव्य र० परि० - पृ० - ६४

३- प्रवाल के दोष-

जो प्रवाल दो रंग वाला गढ्ढे वाला तथा धब्बे वाला हो और जिस प्रवाल में चीर पड़े हुए हों वे दोष युक्त माने जाते हैं। ३ विवर्ण और खर वा खसखस ये दो प्रवाल के प्रधान दोष हैं। इनसे भिन्न रेखादि और भी इसके दोष बतलाए गए हैं। रेखायुक्त प्रवाल को धारण करने से वंश और लक्ष्मी प्राप्त नहीं होती है। आवर्त रहने से वंशनाश होता है। पट्टलदोष नाना रोगों के उत्पादक बिन्दु धनविनाशक, त्रासदोष भयोत्पादक और नीलिकादोष मृत्युकारक हैं। [1]

गौरवर्ण, रंग तथा जलभावपन्न वक्र, सूक्ष्मकोटर अर्थात् छिद्रप्राय चिह्न युक्त, रूक्ष, कृष्णवर्ण, हल्का और श्वेतबिन्दुयुक्त प्रवाल अशुभजनक है। [2]

पीतल के समान रंग वाले, पानी के समान रंग वाले, वक्र सूक्ष्म, छिद्रयुक्त, रूक्ष, हल्के और श्वेत ऐसे मूंगे त्याज्य हैं। प्रवाल कभी-कभी जीर्णतां को प्राप्त होता है। [3]

---

१. विवर्णता तु खरता प्रवाले दूषणद्वयम्।
रेखा काकपदौ विन्दर्यथा वज्रेषु दोषकृत् (हृत)
तथा प्रवाले सर्व्वत्र वर्ज्जनीयं विचक्षणैः।।
रेखा हन्याद यशोललक्ष्मीमावर्त्तः कुलनाशनः।
पट्टलो रोगकृत् ख्यातो विन्धन-विनाशकृत्।।
त्रासः सञ्जनयेत्रासं नीलिका मृत्यु-कारिणी।

युक्ति०- श्लो० २४-३०, पृ०- १०५

२. हि० वि० - पृ०-६३७

३. आररंगंजलाकान्तिवक्रसूक्ष्मं सकीटरम्।
रूक्षं कृष्णं लघुश्वेतं प्रवालमशुभंत्यजेत्।। शालि० नि० भू०- पृ०- ७४४

४. पन्ना-

(हि० पु०) उज्जवल हरिद्रावर्ण मणिविशेष पिरोजे की जाति का हरे रंग का एक रत्न जो प्रायः स्लोट और ग्रेनाइट की खानों से निकलता है। [१]

पर्याय- रजनील, गरुड़ाङ्कित, रौहिणेय, सौपर्ण, गरलारी, वापवोल, गरुड़ोत्तीर्ण बंगला में पान्ना, गुजराती में लीलुंपानुं, कन्नड़ में पाचि पच्चे, तैलगु में नीलम, लैटिन में स्मेरेग्डस् (Smaragdus) फारसी में जुमुरंईप, अरबी में जुमुईद कहते हैं। [२]

प्राप्ति स्थान- यूरोप के यूराल और अलटाई पर्वत पर सर्वोत.ष्ट पन्ना पाया जाता है। आजकल सर्वोत्कृष्ट पन्नों के लिए कोलम्बिया की खदानें प्रसिद्ध हैं। इनके अतिरिक्त आस्ट्रेलिया, मिस्र नार्वे, इटली, अफ्रीका तथा भारत में भी पन्ने की खदानें हैं। एशिया महादेश में साइबेरिया के उपकूल तथा ब्रह्म देश में कई जगह पन्ने की खानें हैं। विभिन्न देशों की खानों के पन्ने अलग-अलग रंग के होते हैं। विभिन्न देशों की खानों के पन्ने अलग-अलग रंग के होते हैं। अमरीकी खानों का पन्ना पुष्ट होता है यह रंग और पानी में सर्वोत्तम होता है। रूस का पन्ना कम सख्त होता है। अफ्रीका के पन्ने में श्याम आभा व काले छींटे होते हैं। उदयपुर का पन्ना गहरे रंग का होता है। अजमेर के पन्ने में पीलापन अधिक होता है। इसका रंग आकर्षक होता है। भारत में **'प्यालो'** के पन्ने तथा जगत सेठ के पन्ने इन दो नामों से प्रसिद्ध पन्ने भी मिलते हैं। [३]

पन्ने की छाया- पन्ने में आठ प्रकार की छाया देखी जाती है यथा- मयूर पुच्छ के सदृश नीकण्ठ पक्षी के सदृश, हरिद्वर्ण, काँच के सदृश, नवदूर्वादल के सदृश, शैवाल के सदृश, खद्योत पृष्ठ की सदृश, शुकशिशु के सदृश शिरीकुसुम के सदृश इन आठ प्रकार की छाया से युक्त पन्ने ही सर्वश्रेष्ठ माने जाते हैं। [४]

---

१. हि० वि० - पृ० - ७३३

२. शालि० नि० भू० - पृ० - ७४५

३. र० परी० - पृ० १००

४. भवेदष्टविधा छाया मणेर्मरकतस्य च।
वर्हि-पुच्छसमाभासा चाष-पक्ष समापरा।।
हरित्-काच-निभा चान्या तथा शैवाल-सन्निभा।
खद्योत-पृष्ठ-संकाशा वालकोरसमा तथा।।
नवशाद्वलसच्छाया मरकताश्रयाः।
छायाभिर्युक्तमेताभिः श्रेष्ठं मरकत भवेत्।
पद्मरागगतः स्वच्छोजलविन्दर्यथा भवेत्।
तथा मरकतछाया श्यामला हरितामला।। युक्ति० - श्लो० - ४६-५२

गुण- जो सर्पविष औषध वा मन्त्र से निवरित न हो, पन्ने से उसका विष अवश्य ही दूर होता है। यह निर्मल, गुरु, कान्त्युिक्त, पित्तकारक, हरिद्वर्ण और रञ्जक होता है। इस प्रकार के पन्ने को धारण करने से सभी पाप दूर होते हैं। पन्ना, धन- धान्य वृद्धि, युद्ध में और विष रोग नाश करने में अति प्रसिद्ध है।[1] पन्ने के सात गुण बताए गए हैं - हरे रंग का, भारी, स्निग्ध लोचदार, चारों ओर किरणों को बिखेरने वाला, छूने में देवीप्यमान, सूर्य के समान स्वतः प्रकाश से प्रदीप्त प्रकाश के अनुसार शुभ पन्ना जल की भांति स्वच्छ, पारदर्श, भरी, आबदार, लोचदार, मृदुगात्र, अव्यंग- जो टेढ़ा-मेढ़ा न हो तथा बहुरंगी हो। उत्तम पन्ने में शैवल (घास) मीर और नीलकंठ की आँख, शाद्गल, हरे रंग का कषाय, कौए का पंख, जुगनू तथा शिरीष पुष्प की झाई के तुल्य आभा को निरन्तर धारण किए हुए हो, जो सूर्य की किरणों से संयुक्त किए जाने पर, अपने आस-पास की चारों ओर की वस्तुओं को हरा कर दे वह पन्ना उत्तम जाति का माना जाता है।[2] हरे रंग वाला भारी, स्निग्ध, कान्तिवान, तेजस्वी, दीप्तियुक्त और गरुड़ के समान रूप वाला ऐसा पन्ना उत्तम है।[3]

दोष- रुक्ष व अस्निग्ध पन्ना धारण करने से पीड़ा, विस्फोट, शस्त्राघात द्वारा मृत्यु, पाषाणचाण्डयुक्त पन्ना धारण करने से इष्टनाश मलिन पन्ना धारण करने नाना प्रकार की व्याधियाँ, कंक्ररीला पन्ना धारण करने से पुत्रनाश,कान्तिहीन पन्ना धारण करने से जन्तु विरुद्धवर्ण युक्त पन्ना धारण करने से मृत्यु का डर होता है।[4] कपिलवर्णखरखरा, नीला, पाण्डुवर्ण, कृष्ण, हलका, चिपटा, विकृत, रूखा यह पन्ना उत्तम नहीं माना गया है।[5]

निम्नलिखित दोषों से युक्त पन्ना अच्छा नहीं माना जाता है। लाल-पीली आभा वाला, बालू के तुल्य कणदार अथवा कर्कश, रूखा प्रतीत होने वाला, चिपटा हुआ- जिसके फलक भीतर की ओर सिकुड़े हुए हो वक्र और उबड़-खाबड़ आकृति का, काला और चुरचुरा इन दोषों से युक्त पन्ना उत्तम नहीं होता है।[6]

---

१. निर्मलं कथितं स्वच्छं गरु स्याद् गुरुतायुतम्। स्निग्धं रुक्षविनिर्मुक्त मरजस्कमरेणुकम्।।
सुरागं रागवहुलं मणेः पञ्चगुणा मताः। एतैर्युक्तं सर्व्वपाप भयापहम्।।
गजवाजि-रथान्दत्वा विप्रेभ्यो विस्तराद्धि मे। तत्फलं समवाप्नोति शुद्धे मरकते धृते।।
धन्धान्यादि करणे तथा सैन्य क्रियाविधौ। विषरोगपशमने कर्मखाथर्व्वगेषु च।।
शस्यते मुनिभिर्य मरकत मणिः। युक्ति० श्लो० ५७-६१

२. र० परि०- पृ०- १०२

३. हरिद्वर्वगुरुस्निग्धंस्फुटरश्मिस्यंशुभम् भासुरंभासंतंताक्ष्र्यगात्रसमंसुसंमतम्।। शालि-नि- भू०- ७४६

४. दोषाः सप्त भवर्न्यस्य गुणाः पञ्चविधा मताः। अस्निग्धं रूक्षमित्युक्तं व्याधिस्तस्य धृते भवेत्।।
विस्फोटः स्यात् सपिड़के तत्र शस्त्रहतिर्भवेत्। स पाषाणे भवेदिष्टनाशो मरकते धृते।।
विच्छायं मलिनं प्राहुर्वार्य्य नतु धार्य्यते। शर्करं कर्करायुक्तं पुत्रशोक -प्रदं धृतम्।।
जरठं कान्तिहीनन्तु दष्ट्रिवृहिनभयावहम्। कल्माषवर्गं धवलं ततो मृत्युभयम्भवेत्।।
इति दोषाः समाख्याता वर्ण्यन्तेऽथ महागुणाः।। युक्ति० श्लो०- ५३-५५

५. कपिलंकर्कशंनीलंपाण्डु कृष्णेचलाधृतम्। चिपटं विकृतं रूक्षांश्चमरकतंनशस्यते।
शालि० नि० भू०- पृ०- ७४६

६. र० परि०- पृ०- १०३-१०४

५. पुखराज(पुष्पराग)- पुं (पुष्पस्येव रागो वर्णोऽस्य) मणि विशेषः। पुखराज इति भाषा। तत्पर्य्यायः। मञ्जुमणि (२) वाचस्पति वल्लभः ३।। पीतः पीतस्फटिकः, पीतरक्तः (६) पीताश्म, गुरुरत्नम, पीतमणिः, पुष्पराजः। [1]

एक प्रकार का रत्न या बहुमूल्य पत्थर जो प्रायः पीला होता है किन्तु कभी कभी हल्का नीलापन या हरापन लिए भी होता है।

पर्याय- स्थान भेद से इसके भिन्न-भिन्न नाम हैं यथा- फ़ारसी- Topase, जर्मन और रूस में. Topaz, हिन्दी पोखराज, पुखराज इटली में Topazio, मलयाल - रत्नचम्पक, पारस्य- जबरजाद, शिङ्गपुर में पुपेरणन, स्पेन - Topacio, तामिल और तेलगू - पुष्पीयरागम्, बङ्गला- पोखराज, संस्कृत में पुष्पराग, पीतरत्न, पीत रत्नक, मञ्जुमणि, वाचस्पतिवल्लभ।[2]

प्राप्ति स्थान- पुखराज अधिकतर ग्रेनाइट की चट्टानों और कभी-कभी ज्वलामुखी पर्वतों की दरारों में मिलता है। कार्नवाल (इंग्लैंड) स्काटलैंड, ब्रेजिल, मैक्सिको, साइबेरिया और अमेरिका के सुसुक्त राज में यह पाया जाता है। एशिया में यह यूराल पर्वत से बहुत निकाला जाता है। ब्रेजिल का गहरे पीले रंग का पुखराज सबसे अच्छा माना जाता है। भारत वर्ष तथा पूर्वीय देशों में भी यह थोड़ी मात्रा में पाया जाता है।[3]

पुष्पराग प्रकार- कुछ पीलापन लिए मनोहर पाण्डुवर्ण प्रस्तर ही पुष्पराग कहलाते हैं।

(१) कोरुण्ट पुष्पराग- जो कुछ पीलापन लिए लाल रंग का हो उसे कोरुण्ट कहते हैं।

(२) काषायक- जो पुष्पराग कुछ ललाई लिए पीले रंग का हो, उसे काषायक कहते हैं।

(३) सोमलक- जो कुछ ललाई लिए सफेद हो वह सोमलक।

(४) पद्मराग- जो बिल्कुल लाल हो वह पद्मराग।

ब्राह्मणादि जातिभेद से पुष्पराग भी चार प्रकार का है। साधारणतः इन सब स्फटिकों से शुक्ल, पीत, ईषत् और कृष्ण वर्ण की छाया निकलती है। इसी से इनके चार भेद निर्दिष्ट हुए हैं। [4]

गुण- जो दीप्तिवान्, पीला, भारी, उत्तमरंगदार शुद्ध स्निग्ध निर्मल और उत्तम गोल ऐसा पुखराज श्रेष्ठ होता है यह पुखराज कीर्ति, शौर्य, सुख आयु और अर्थ को देवे है। [5] ईषत्, पीत, छायायुक्त, स्वच्छ और मनोहर कान्तिविशिष्ट पुष्पराग को ही अत्यन्त उत्कृष्ट तथा पवित्र मानते हैं। [6]

---

१. शब्दकल्प० पृ० - २०७ (भाग - ३)

२. हि० वि०- पृ०- ५६४,

३. हि० श० सा०- पृ०- ३०३६, ४. हि० वि०- पृ०- ५६४

५. रक्च्छायपीतगुरुगात्रसुरंगशुद्धम्। स्निग्धंचनिर्मलमतीवसुवृत्तशीलम्।।
यत्पुष्परागममलंकलयेदमुष्य। पुष्णातिकीर्तिमतिशौर्यसुखायुरर्थान्।।
अयंखलुपुष्परागोजात्यस्तथाचार्यपरीक्षकैरुक्तः।। शालि० नि० भू० - पृ०-७४७

६- हि० वि० - पृ० - ५६५

उत्तम पीली कान्ति वाला, हाथ में लेने पर वज़नी, सुन्दर रंग का शुद्ध, अतिशय स्वच्छ, धब्बों से रहित, बड़ा दाना, सम अंग वाला, मुलायम, पीली कनेर अथवा चंपा या अमलतास के फूल के समान पीतवर्ण, स्पर्श में चिकना, छिद्ररहित और चमकदार पुखराज श्रेष्ठ तथा उत्तम माना गया है। [१]

पुखराज भारी, चिकना, निर्मल, स्थूल, गोल, नरम, अमलतास के फूल के समान पीले रंग का और मसृण इन आठ प्रकार से पुखराज उत्तम गुणों से युक्त जानना चाहिए। [२]

दोष -

काले रंग की बूंद-बूंद सा, दो छिद्र युक्त, सफेद रंग का मलिन, हलका, बेरंग, बालू के समान छूने से करकरा, चमक रहित, ऊँचा-नीचा मुनक्का के रंग जैसा, लाल-पीले मिले रंग का, पीला-सफेद मिले पांडु रंग का पुखराज सदोष होता है। [३]

काला, विद्ध, अंकित, व्यंग, (झाइयुक्त) सफेद मलिन, हलका बेरंग, खरखरा ऐसा पुखराज दोषयुक्त माना जाता है। [४]

कृष्ण बिन्दु चिह्न से अंकित, पक्ष, धवल, अथच, मलिन, वज़न में लघु, छाया विहीन और शर्करायुक्त पुष्पराग ही दोषयुक्त है। [५]

---

१. र० परी० - पृ०,- १११

२. पुष्परागगुरुस्निधंस्वछस्थूलं समंमृदु।
कर्णिकारप्रसूनाभमसृणंशंभमष्टधा।। शालि० नि० भू० - पृ०-७४७

३. र० परि० - पृ० - १११

४. कृर्ष्णविद्धाङ्कितंव्यङ्गधवलंमलिनंलघु।
विच्छायंशर्कराभागंपुष्परागंसदोषलम्।। शालि० नि० भू० - पृ०-७४७

५. हि० वि० - पृ० - ५६५

६. माणिक्य–

(स० क्लि०) मणिप्रकारः मणि (स्थूलादिभ्यः प्रकार वचनेकन्। पा ५/४/३) इति प्रशंसाया कन्। ततो मणिकमेवेति। मणिक चातुर्वर्णादीनामुपसंख्यानाम्।" ५/१/१२४। इति वार्तिकबलात् ष्यञ्।[1]

पर्याय– रङ्गमाणिक्य, तरुण रत्न, गु०–माब्यक, क०–माणक, तै०–माणिक्यं, लै०–रूबीनस्– (Rubinus), फा० – लालबदपशानी, अ० – लाल।[2]

प्राप्ति स्थान– सबसे अधिक मूल्यवान् माणिक्य ऐसे पहाड़ों में पाए जाते हैं कि जिनमें ग्रेनाइट, मेग्नीज़ (अभ्रक की जैसी परतदार और कांचमणि या बिल्लौर (Quartz) की जैसी चट्टानें हों।

विविध खानों के माणिक्य– उत्कृष्ट माणिक्य बर्मा से प्राप्त होता है। वहाँ के माणिक्य का रंग गुलाब की पत्ती के रंग से लेकर गहरे लाल रंग तक का होता है। स्याम देश की खानों से प्राप्त उज्जवल से उज्जवल माणिक्य भी बर्मा के माणिक्य की अपेक्षा अधिक कालापन लिए होता है। श्रीलंका के माणिक्य में बर्मा के माणिक्य की अपेक्षा पानी अधिक और लोच कम होती है। यह पीले रंग में मिलते हैं। काबुल के माणिक्य में पानी(मीटा) और चुराचुरापन होता है। इसका रंग सुन्दर होता है।। कोई-कोई माणिक्य बर्मा के माणिक्य से भी अधिक सुन्दर तथा चमकीला होता है।

अफ्रीका में टैंगानिका का माणिक्य बहुत चुरचुरा होता है। इसमें लाल रंग के साथ-साथ श्याम आभा तो होती ही है पर किसी-किसी खण्ड में पीले रंग की आभा भी होती है। जिससे यह रक्तपीत सा दिखाई देता लगता है।। यह पीत आभा ही स्याम देश के माणिक्य को इससे भिन्न बतलाती है।[3]

सिंहल देश में लाल रंग का पद्मराग नामवाला रत्न उत्पन्न होता है। यह सभी में श्रेष्ठ है। कानपुर नामवाले देश में कुरुविन्द नामवाला माणिक उत्पन्न होता है। यह पीला तथा मध्यम होता है और अशोक वृक्ष के पल्लव के सदृश रंग के सौगन्धिक नामवाले माणिक्य को मध्यम श्रेणी के जानना चाहिए। तुम्बरु देश में उत्पन्न होने वाले नीले रंग के माणिक को नीलगन्धि माणिक कहते हैं, यह अत्यन्त निकृष्ट माना गया है और अन्य देश में उत्पन्न होने वाले सर्व मध्यम जानने चाहिए।[4]

---

1. हि० वि० – पृ०–३५२
2. शालि० नि० भू० – पृ०– ७३२ , ३. र० परि० – पृ०–६६
4. सिंहलेतु भवेद्रक्तेपद्मरागमनुत्तमम्।
पीतकाणपुरोद्भूतंकुरुविन्दीमतिस्मृतम्।।
अशोक पल्लवच्छायमिदंसौगन्धिकंविदुः।
तुम्बुरूच्छाययानीलंनीलगान्धिप्रकीर्त्तितम्।।
उत्तमंसिहलोद्भूतं निकृष्टं तुम्बुरुद्भवम्।
मध्यमंमध्यमंज्ञेयंमाणिक्यं क्षेत्रभेदतः।। शालि० नि० भू० – पृ०–७३३

बर्मा की लाल मणियों में तीव्र द्विवर्णिता पाई जाती है। यह दुहरा रंग हलका नारंगी-लाल तथा गहरा जामुनी सा लाल होता है। रंगों में यह गुण खनिजों की भीतरी बनावट के कारण होते हैं। घनाकार तथा रवाहीन रचना वाले खनिजों में द्विवर्णिता नहीं पाई जाती। न किसी रंगरहित खनिज या रत्न में यह गुण होता है। ऐसे खनिजों के भीतर से गुज़रने वाली किरणें सब दिशाओं में एकही वेग से चलती है। इन्हें समवर्तिक कहते हैं। [१]

प्रकार- माणिक्य की पाँच प्रकार की जातियाँ बताई गई हैं।

(१) पद्मराग- सूर्य की भांति किरणें फैलाता है। वह ख़ूब चिकना, कोमल, अग्नि जैसा, तपे हुए सोने जैसा और अक्षीण होता है।

(२) सौगन्धिक- किंशुक के फल जैसा, कोयल, सारस, चकोर की आँख जैसा, अनारदाने के रंग का होता है।

(३) नीलगन्धि- कमल, आलता, मूंगा, ईंगुर के समान कुछ-कुछ नीलाभ और खद्योत की कान्ति वाला होता है।

(४) कुरुविंद- इस जाति का माणिक्य पद्मराग तथा सौगन्धिक जैसी प्रभावाला, परंतु परिमाण में छोटा और पानीदार होता है।

(५) जामुनिया- जामुन व लाल कनेर के फूल जैसे रंग का होता है। [२]

बन्धुक पुष्प के समान, गुञ्जा की, इंद्रगोप कीड़े की और जपा के फूल के समान वर्णवाला और शोभासंयुक्त तथा चमकदार, अनार के बीच के सदृश रंगवाला माणिक होता है। टेसू के फूल के समान प्रभायुक्त सिन्दूर के सदृश, लाल कमल के समान, कुंकम के समान, लाख के समान तथा चकोर, कोकिला तथा सारस इनके नेत्रों की कान्ति के समान वर्णवाले माणिक किंचित् होते हैं। [३]

गुण- लाल कमल की पंखुड़ियों सी दमक वाला, पारदर्शक, चिकना, बड़ा सुडौल, अच्छे रंग का गोल लम्बा माणिक्य श्रेष्ठ होता है। अच्छे माणिक्य के गुण सुच्छाया, चिकनापन, लाल कांति, कोमलता, भारीपन, सुडौलपन तथा बड़े आकार के बताए गए हैं। नीलगन्धि नामक माणिक्य बाहर से लाल और भीतर से नीला होता है। श्रेष्ठ माणिक्य वह है जिसे दूर से देखने पर वह पिघली लाख के रंग का लाल कमल के रंग का कान्धारी अनार के दानों के रंग का होता है। इसका लाल रंग गुलाबी से लेकर बैंजनीपन के रंग तक का होता है। सबसे उत्तम माणिक्य कबूतर के खून जैसे वर्ण का होता है। [४]

दोष- वह माणिक्य अशुभ तथा दोषयुक्त माना जाता है जो चमक से रहित अथवा सुन्न हो, शर्करिल अथवा बालू के रेत के कणों के समान किरकिरा हो अथवा चुरचुरा हो, जो दूध जैसा हो, धूसर अथवा मैले रंग के हों, धुएँ के रंग का हो, जिस पर काला या सफेद दाग हो, जो कम पारदर्शक हो, शहद के रंग का अथवा शहद के रंग के छींटे वाला हो, हलका हो, विकृत हो, जिस पर चीर हो और जिस पर अभ्रक की परतें हों। [५]

---

१. र० परि०- पृ० ६८, २. तदेव- - - -

३. शालि० नि० भू० - पृ०-७३४

४. र० परि० - पृ०-६७, ५. तदेव- - -

७. नीलम- (फा० पु०) नीलमणि, नीलेरंग का रत्न, इन्द्रनील। १ मणि विशेषः। नीलम् इति पारस्यभाषा।। अस्यधिष्ठातृ शनिः। २ शौरिरत्न, नीलाश्मा, नीलरत्नम, नीलोपल, तृणग्राही, महानील, सुनीलक(मसार) हि०- नीलमणि, वं०- नीलमणि,म०- नीलमणि, गु०- नीलम्, क०-नील, तै०-नीलं, लै०-सेफायर्स (Saffirus)[४]

प्राप्ति स्थान- सिंहल नदी के मध्यगत रावण गंगा के सान्निहृत पद्माकर प्रदेश में यह रत्न पाया जाता है। प्राचीन काल में पारस्य और अरब देश में यह रत्न मिलता था। वर्तमान परिस्थिति में भारत में भी अब इसकी खानें बहुत कम रह गई हैं। कश्मीर में भी अब यह बहुत कम मात्रा में पाया जाता है। बर्मा में माणिक के साथ नीलम भी निकलता है। उत्तरी अमेरिका दक्षिणी अमेरिका, आस्ट्रेलिया आदि स्थानों में भी नीलम पाया जाता है।

नीलम वास्तव में एक कुरंड है जिसका नम्बर कड़ाई में हीरे से दूसरा है। नीलम आक्साइड आफ एलुमिना और आक्साइड आफ कोवाल्ट इन्हीं दो पदार्थों से प्रस्तुत होता है। यथार्थ में यदि देखा जाए तो अम्लजन वायु (Oxygen) और एलुमिनियम कोवाल्ट (Aluminium Cobalt) नामक अत्यन्त सामान्य द्रव्य भी इसमें देखने में आते हैं। [५]

वर्ण भेद- यह वर्ण भेद से चार भागों में विभक्त है। श्वेतका, आभायुक्त नील, रक्तक-आभायुक्त नील, पीत आभायुक्त नील और कृष्ण का आभायुक्त नील। इन चार श्रेणियों के इन्द्रनील यथाक्रम से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र नाम से प्रसिद्ध हैं।[६]

पद्मराग जिस प्रकार से उत्तम, मध्यम और अधम के भेद से तीन प्रकार का है इन्द्रनील के भी उसी तरह तीन भेद हैं- जैसे साधारण इन्द्रनील, महानील और इन्द्रनील। महानील के सम्बन्ध में लिखा गया है कि यदि यह सौ गुणा दूध में डाल दिया जाए तो दूध नीला हो जाता है। सबसे श्रेष्ठ इन्द्रनील वह है जिसमें से इन्द्रधनुष की सी आभा दिखाई पड़े। किन्तु इस प्रकार का नीलम कठिनता से ही दिखाई पड़ता है। [७]

पद्मराग जैसा नीलम तीन अवस्थाओं में पाया जाता है-

(१) शुभ्र स्वच्छ चूने के पत्थर (White Crystilline lime stone) के मध्य निहित अवस्था में देखा जाता है।

---

१. शब्दकल्प० - पृ०-६१३, भाग-२

२. हि० वि० - पृ०-१७३

३. नीलस्तुशौरिरत्नंस्यान्नीलाश्मानीलरत्नकः।
नीलोपलस्तृणग्राहीमहानीलसुनीलकः।। शालि० नि० भू० - पृ०-७४७

४. तदेव- - - - - , ५. हि० वि० - पृ०-१७३

६. तदेव - १७४, ७. तदेव- - - १७५

(२) पहाड़ के निकटवर्ती मिट्टी के मध्य शिथिल अवस्था में पाया जाता है।
(३) रत्नप्रसति कंकड़ के मध्य कभी-कभी देखा जाता है। साधारणतः द्वितीय अवस्था का नीलम ही श्रेष्ठ माना जाता है।

अलंकार के लिए इन्द्रनील का इतना आदर है जितना किसी अन्य रत्न का नहीं है। नीलम इतना कठिन पदार्थ है कि जिस पर नक्काशी आदि का कार्य करना कठिन है। किसी-किसी इन्द्रनील में नक्षत्र की ज्योति निकलती है। इस प्रकार के नीलम को हिन्दुओं का पवित्र पदार्थ माना गया है। प्राकृत शुद्ध नीलम रात-दिन सब समय नीलवर्ण की रोशनी देता है। कभी-कभी ऐसा भी देखा गया है कि दिन में दो खण्ड नीलम एक सी रोशनी देते हैं और रात होते ही उसमें भिन्न-भिन्न तरह की रोशनी होती है। इनमें एक सा रंग नहीं रहता है। सफेद नील हीरे से मिलता-जुलता है। यदि इसको अच्छी प्रकार से काट दिया जाए और बिना पॉलिश किए का रहे तो हीरे और नीलम में अंतर करना कठिन हो जाता है।[1]

सफेद, लाल, पीला और काला इन भेदों से नीलम चार प्रकार का है सफेद रंग का ब्राह्मण, लाल रंग का क्षत्रिय, पीले रंग का वैश्य और काले रंग का शूद्र होता है। नीलम धारण करने से हीरे के समान फल प्राप्त होता है।[2] संस्कृत ग्रन्थों में नीलम दो प्रकार का बताया गया है- **१- जल नीलम, २- शक्रनीलम।**

जिस नीलम के बीच में से श्वेताभा आती हो और आसपास से भी नीलाभा आती हो एवं इसकी हल्की नीलाभा हो उस नीलम को 'जल नीलम' कहते हैं। जिस नीलम के मध्य में से काली आभा आती हो वह इन्द्र या शक्र नीलम कहलाता है। जो नीलम तीसी के फूल के रंग का होता है वह उत्तम और सर्वप्रिय होता है। कठोरता में यह दूसरे नम्बर का रत्न है। कठोरता के कारण ही नीलम को सरलतापूर्वक नहीं काटा जा सकता है।[3]

गुण- नीलम के पाँच गुण बताए गए हैं। **गुरुत्व, स्निग्धत्व, वर्णाढयत्व, पार्श्ववर्तित्व** और **रञ्जकत्व**।

१- गुरुत्व- जिस इन्द्रनील का आपेक्षित गुरुत्व बहुत अधिक हो अर्थात् जो देखने में छोटा होता है, पर तौल में भारी हो उसे गुरु कहते हैं।

२- स्निग्धत्व- जिसमें स्निग्धत्व होता है उसमें से चिकनाई छूटती है।

३- वर्णाढयत्व- जिसमें वर्णाढयत्व होता है उसमें प्रातः काल सूर्य के सामने रखने से नीली शिखा फूटती दिखाई पड़ती है।

४- पार्श्ववर्तित्व- पार्श्ववर्ती गुण उस नीलम में दिखाई पड़ता है जिसमें सोना चाँदी तथा स्फटिक आदि दिखाई पड़े।

---

१. हि० वि० - पृ०-१७५

२. सितशोणपीतकृष्णच्छायानीलाःक्रमादिमेकथिताः।
विप्रादिवर्णसिद्धयैधारणमस्यापिवज्रवत्फलदम्।। शालि० नि० भू०

३. श्वैत्य- गर्भित- नीलाभं लघु तज्जनीलकम्।
काष्ण्र्यगर्भित नीलाभं सभारं शक्रनीलकम्।। र० वि० - पृ०-[illegible]४

५- रंजकत्व- जिस नीलम को जलपात्र आदि में रखने से सारा पात्र नीला दिखाई पड़े, वह रंजक नीलम कहलाता है।[1]

दोष- अभ्रक, त्रास चित्रक, मृदगर्भ, अश्मगर्भ और रौक्ष्य यह छः प्रकार के दोष इन्द्रनील में पाए जाते हैं।

१- अभ्रक- जिस इन्द्रनील के ऊपरी भाग में अभ्र सी छाया दिखाई पड़े उसे अभ्र कहते हैं इस प्रकार के इन्द्रनील को धारण करने से आयु और सम्पत्ति नष्ट हो जाती है।

२- त्रास- जो इन्द्रनील विशेष चिन्ह द्वारा भग्न मालूम पड़े वही त्रासनील कहलाता है। इस प्रकार के नीलम से भय उत्पन्न होता है।

३- चित्रक- जिसमें भिन्न-भिन्न रंग दिखाई पड़ें उसे चित्रक इन्द्रनील कहते हैं। चित्रक के दोष से कुल नष्ट हो जाता है

४- मृदगर्भ- जिसके मध्यभाग में मिट्टी लगी रहती है वह मृदगर्भ कहलाता है। मृदगर्भ के दोष से गात्रकष्टु आदि नाना प्रकार के त्वग् रोग उत्पन्न होते हैं।

५- अश्मगर्भ- जिसके भीतर से पत्थर का खण्ड दिखाई पड़े उसका नाम है अश्मगर्भ। यह दोष विनाश का कारण है।

६- रौक्ष्य- जो शर्करायुक्त है वही रौक्ष कहलाता है। रौक्ष्यदोषाश्रित इन्द्रनीलधारी व्यक्ति को यमराज का द्वार देखना पड़ता है।[2]

---

१. गुरुः स्निग्धश्च वर्णाढयः पार्श्ववाञ्चैव रञ्जकः। इन्द्रनीलः समाख्यातः पञ्चभिः सुमहागुर्णैः
प्रमाणेऽल्पोगुरुर्माने कुरुवृद्धि करो गुरुः। स्नेहं स्रवदिवाभति स्निग्धं धनीविवर्धनम्।
बालार्काभिमुखो नीलो वमेन्नलां शिखां द्वियः। वर्णाढयो नाम नीलोऽयं धन-धान्य-विवर्द्धनः।
स्फटिकं रजतं स्वर्णमन्यद्वा वस्तु तेजसम्। पार्श्वस्थितं नील-मणि पार्श्ववर्ति यशः प्रदम्।
आश्रयं नीलमणिर्यतु तमसेव समावृतम्। रञ्जको नाम नीलीयं श्रीयशः कुलवर्द्धनः।।
युक्ति०-श्लो०- ८-१२,पृ०-१२५

२. अभ्रक-पटलच्छाया त्रासश्चित्रक एव च। मृदश्मगर्भरौक्षाणि महानीलेषु दूषणम्।।
दोषा नीले प्रवक्ष्यामि नामभिर्लक्षर्णैश्च षट्। अभ्रवत् पटलं यस्य तदभ्रकमिति स्मृतम्।।
धारणे तस्य सम्प्रीतरा युश्चैवविनश्यति। शर्करामिश्रितमिति तद्विश्रेयं सशर्करम्।।
तस्मिन् धृते दरिद्रत्वं देशम्यागश्च जायते। भेद-संश्रयहृत्रासस्तेन दंष्ट्रिभयम्भवेत्।।
भिन्नं भिन्नंमिति प्राहुर्भार्य्यापुत्र-विनाशनम्। मृत्तिकागर्भकं नाम त्वगदीप जनकम्भवेत्।
दृशत् प्रलक्ष्यते गर्भे अश्वगर्भं विनाश.त्(हृत)चित्रवर्ण इवाभाति चित्रकः कुलनाशनः।।
युक्ति० श्लो०- १३-१८, पृ०- १२५-१२६

क- ब्रह्मादिजातिभेदेन तच्चतुर्विधमुच्यते। अरुणं शशश्क्ताख्यं कोमलं स्निग्धमेव च।।
इन्द्रनीलं विप्रजातिः स्थात् सुखवेध्यं मनोरमम्। जवाबन्धूकसिन्दूरं दाडिमी कुसुम प्रभम्।।
कठिनं दुर्वेध्यमस्निग्धं ... ... । र० नि० पृ०-१२५

८.इन्द्रनील- पुं.(इन्द्रवत् नीलः।) मरकतमणिः। इन्द्रइव नीलः श्यामलः। मरकतमणि नीलम।[१]
पर्याय- सौरिरत्न, नीलाश्म, नीलोत्पल, तृणग्राही, महानील, प्रभृति, संस्कृत भाषा में इन्द्रनील को नीलोत्पल, नीलरत्न महानील एवं शनिरत्न कहा जाता है। हिन्दी में नीलम, बंगला में इन्द्रनील, मराठी में नीलरत्न, फारसी तथा अरबी में याकूत, चीन में चांग श्याक (chang- shyak) और अंग्रेज़ी में sapphire कहा जाता है।[२] सबसे उतम श्रेणी का नीलम लंका में पाया जाता है। लंका में यह अन्य रत्नों की ही तरह नदियों के बालू में पाया जाता है। लंकाके नीलमों की महत्त्वपूर्ण बात यह है कि यह जब इनको काटा जाता है तो इनमें से ६ प्रकार के प्रतिबिम्ब निकलते है।

वर्ण- इन्द्रनील विभिन्न प्रकार के वर्णों में पाया जाता है यथा नीलपद्म, नीलाम्बर, खड्गधारा, शिवनीलकंठ वा नीलकंठ पक्षी के गले के सदृश, निर्मल समुद्र के जल, मयूर तथा कोकिल के कण्ठ और नील रङ्ग के बुलबुल के जैसा होता है। मृत्तिका, पाषाण, शिला, वज्र, कड्कड़, अभ्रिका, पटलाख्य छायादि और वर्ण दोष से मणि बिगड़ जाता है। काव, उपल, स्फटिक और वैदूर्य देखने में बिल्कुल इन्द्रनील जैस ही होता है किन्तु अल्प ताम्रवर्ण धारण करने वाला इन्द्रनील रखने योग्य है। जिसमें रामधनुः का रङ्ग झलकता हो वह दुर्लभ तथा महामूल्य कहलाता है।[३]

१- इन्द्रनील के प्राकृतिक गुण- प्रकृति में जो नीलम पाया जाता है उसका रंग अलसी के फूल की भान्ति, नीले कमल के फूल के सदृश और नील कंठ पक्षियों की ग्रीवा की तरह होता है।[३]

२- इन्द्रनील के प्रकार-

१- नीलाबलीय (नीलीधारियों वाला), २. मोर पंख के समान, ३. कलाय पुष्पक (मटर पुष्प के समान), ४. महानील (गहरे काले नीले रंग का), ५. जाम्बवाभ (जामुन के समान), ६. जीमूतप्रभ (मेघ के समान), ७. नन्दक (भीतर से श्वेत तथा बाहर से नीला), ८. स्रवन्मध्य(जलप्रवाह के समान तरलित किरणों वाला)।

३- इन्द्रनील के गुण- जो इन्द्रनील कालापन लिए नीले रंग का अथवा गहरे नीले रंग का, वजन में भारी, एक समान छाया वाला,गोल चिकना,नरम और बीच में अत्यधिक चमकदार हो वह उत्तम गुणों से युक्त माना जाता है।[४]

इन्द्रनील शनि ग्रह को प्रिय है इसमें शनि दोष शान्त हो जाता है। इन्द्रनील का वर्ण निबिड़ मेघ जैसा रहता है। यह मध्यम रत्न है। अतसी पुष्प की तरह इन्द्रनील का वर्ण होता है जो कि छाया और शीर्हणादि से उपजता है। सिंहल तथा कलिंग देश में इसकी खानें पाई जाती हैं।

४-इन्द्रनील के दोष- जो इन्द्रनील तेजहीन अनेक वर्ण वाला कुछ हिस्से में एक रंग और कुछ में दूसरा रंग,खुरदरा, हलका, चिपटा,बहुत छोटा और जिसके भीतर लालरंग की आभा दिखाई देती है ऐसा इन्द्रनील दूषित माना जाता है।[५]

१- द्रष्टव्य शब्दकल्प० भाग- १, पृ० ६७
२- ----- र० वि०, पृ० - १७१
३- तदेव पृ०- १८३, ४- हि० वि०,पृ०- ३५, ५- तदेव- पृ०- ३५-३६

६. पद्मराग–

संस्कृत भाषा में पद्मराग को माणिक्य, शणिरत्न, लोहितरत्न, कुरुविन्द, रविरत्न आदि कहा जाता है। हिन्दी में माणिक्य, बंगला में माणिक, गुजराती में चुन्नी, मराठी में माणिक, तेलगु में माणिक्यम् तथा अंगेज़ी में रुबी(Ruby) कहा जाता है। ४ माणिक्य लाल कमल के रंग का, कोरुंड जाति का रत्न होता है। इस रत्न से कई प्रकार की आभाएं निकलती हैं, जैसे- कदली के फूल की, अनार के दाने की, अड़हुत के फूल की, पारिजात के फूल की, डण्डी की, गुंजा के फूल की, जलते हुए अंगारे की इत्यादि।

जिस माणिक्य में कुछ हरापन दिखाई देता हो आज वही माणिक्य अच्छा समझा जाता है। स्वास्थ्य सुधार के लिए इसका इतना प्रयोग नहीं समझा जाता है जितना कि आभूषणों केलिए समझा जाता है। [1]

पद्मराग के पाँच प्रकार–

१- सौगन्धिक (सायंकाल खिलने वाले सौगिन्धक नामक नीलवर्ण युक्त कमल के समान)

२- पद्मनामक कमल के समान,

३- अनवद्यराग (केशर के समन)

४- पारिज़ात पुष्पक (हरसिंगार पुष्प के समान)

५- बालसूर्यक (उदय होते हुए सूर्य के समान)। [2]

पद्मराग के प्राकृतिक गुण–

१- पद्मराग अनियमित आकृतिमें प्रायः प्रसारित और कोणावृति बिन्दुओं में पाया जाता है।
२- प्राकृतिक पद्मराग के विभिन्न भागों से रंग निकलते है। ३- पद्मराग प्रस्तर की बाह्य सीमा तक सूत्र या तो नितान्त सीधे जाते हैं या कोणाकृति (Angular) रूप में पाए जाते हैं । [3]

गुण– जो पद्मराग स्निग्धा, कान्ति से दीपित, स्वच्छ क्रांति से युक्त, भारी सुन्दर आकार वाले, मध्य में प्रभा से युक्त अति लोहित होता है वही श्रेष्ठ गुणों से युक्त पद्मराग माना जाता है। [4]

दोष–

१- विच्छाय दोष– विच्छाय दोष उस दोष को कहा जाता है जिसमें माणिक्य दीप्ति या चमक से रहित होता है।

२- विरूप दोष– जिस पद्मराग में हाथी दाँत के समान सफेदी और थोड़ा लाल रंग तथा इधर उधर लम्बाई में काला या मटमैला होता है, उस पद्मराग को विरूप दोष से युक्त माना जाता है।

१- द्रष्टव्य हि० वि०, पृ०-३४
२- सौगन्धिकः पद्मरागः अनवद्यरागः पारिजातपुष्पकः बालसूर्यकः। अ० शा०, ११/३
३- द्रष्टव्य र० वि०, पृ०- १८२
४- द्रष्टव्य र० वि०, पृ०- १७०

३- सम्भेद दोष- उस दोष को कहा जाता है जिसमें पद्मराग के बीच में ऐसा आभास होता है कि रत्न टूटा हुआ है।

४- कर्कर- जिस पद्मराग को अगुँलियों से स्पर्श करने पर सुचिक्कणता का अनुभव न होकर खुरदरेपन का अनुभव होता हो उस पद्मराग को कर्कर दोष से युक्त माना जाता है।

५- अशभिन दोष- जिस पद्मराग को हाथ में लेने पर मन बुद्धि तथा हृदय को प्रसन्नता अनुभव न हो, उसे अशभिन दोष से युक्त माननना चाहिए।

६-कोकिल दोष- माणिक्य में जब शहद की बूंद के समान छाया दिखाई देती हो तब उसे कोकिल दोष से युक्त माना जाता है शहद की बूंद जब किसी अरूणवर्ण कठोर द्रव्य पर डाली जाती है तो वह बूंद सफेद और काली आभा युक्त दिखाई देती है। इसी प्रकार माणिक्य में से सफेद काली छाया युक्त बूंद दिखाई दे तो वह माणिक्य कोकिल दोष से युक्त माना जाता है।

७-जाल दोष- जिस पद्मरागमें आडी या तिरछी रेखाएं निकल कर जाल की तरह दिखाई देती हों उसे जाल दोष कहा जाता है।

८-धूम्रदोष- जिस पद्मराग में धुएं के समान सफेद काली छाई दिखाई देती हो तब उस पद्मराग को धूम्रदोष से युक्त माननना चाहिए। [१]

१०. मरकत-

संस्कृत भाषा में मरकत को गारुत्मत, अश्मगर्भ हीरुमणिः, गारूण, बुधरत्न और हरिद्रत्न कहा जाता है। हिन्दी में पन्ना,बंगला में पाना,मराठी में पाँचूरत्न, चीनी में बर्मी तथा अंग्रेज़ीमें इमराल्ड(Emerald) कहा जाता है।[२]

भारत वर्ष के बड़े-बड़े नगरों के पन्ने का निर्माण केन्द्र एवं विक्रेय केन्द्र जयपुर को माना गया है। सबसे विख्यात बड़ा पन्ना डेवनशायर पन्ना है जो प्रायः १,४५० रती का है। यह पन्ना दक्षिण अमेरिका के कोलंबिया की खान से निकाला गया था। दूसर बड़ा पन्ना जो कि ब्रिटिश संग्रहालय में है यह १७० रत्तो का माना जाता है। [३]

१- मरकत के गुण- जो मरकत हरे रंग का वजन में भारी स्निग्ध, उज्जवल किरणों वाला, तेज युक्त, कर्कशता रहित पन्ना उत्तम गुणों से युक्त माना जाता है।[४]

१- नीलावलीय इन्द्रनीलः कलाय पुष्पको महानीलो जाम्बवाभो जोमूतप्रभोनन्दकः स्रवन्मध्यः। अ० शा०, ११, श्लो०- ५

२- द्रष्टव्य भा० प्र० नि०, श्लो० -१८३, पृ०- ५०७

३- द्रष्टव्य र० वि०, पृ० -१८८

४- द्रष्टव्य हि० वि०, पृ० -३५

क- द्रष्टव्य भा० प्र० नि०, पृ०-५०५, श्लो० -१८०

जो मरकत सिरस के पुष्प के सदृश लहलहाते धान के खेत की भान्ति, सुग्गे के पंख के रंग की तरह, मोर के पंख की भान्ति, नीम, बबूल तथा बेल की पत्तियों की भान्ति का होता है तथा जिसके हरेरंग में पीलापन हो ऐसा मरकत उत्तम गुणों से युक्त माना गया है। अन्य रत्नों की अपेक्षा यह रत्न मुलायम होता है।[1]

२- मरकत के दोष-

१-गाँजा- जो मरकत अपारदर्शक और पानीरहित होता है वह गाँजादोष से युक्त माना जाता है।

२-अभ्रकी- वह मरकत जिसमें अभ्रक के समान रंग और चिटकापन हो वह अभ्रकी दोष से युक्त माना जाता हैं।

३-रुखापन- जिस मरकतमें चमक न हो उसे रुखापन दोष युक्त मरकत या रुक्ष मरकत कहते है।

४-चुरचुरा- जिस मरकत में पानी कम हो एवं साधारणता घर्षण करने से भगुरत्व या टुकड़े-टुकड़े हो जाता हो, वह मरकत चुरचुरे दोष से युक्त माना जाता है।

५-गड्ढा- जिन मरकत मणियों में गर्त या गड्ढे पाए जाते हैं वे गड्ढे दोष से युक्त होते हैं।

६-रेखा- जिस मरकत में कृष्णवर्ण अथवा श्वेतवर्ण की रेखा या लाइन दिखाई देती हो वह रेखा दोष से युक्त माना जाता है।

७-चीर- किसी पारदर्शक वस्तु के भग्न हो जानेपर उसे पुनः संयोजित करने पर भी एक खास प्रकार की लाइन दिखाई देती है उसे चीर दोष कहते हैं इसी कारण से सूर्य रश्मिया प्रत्यावर्तित नहीं हो पाती हैं अतः उनकी दीप्ति या पानी नष्ट हो जाता है।

८-छींटा- जिस मरकत में कृष्ण, पीत, श्वेत अथवा अरुणवर्ण के बिन्दु दिखाई देते हों, उसे छींटा दोष से युक्त माना जाता है।

९-सीनामक्खी- मरकत में कभी कभी पीतवर्ण के समान चमकदार बिन्दु दिखाई देते हैं, ऐसे मरकत को सीनामक्खी दोष से युक्त माना जाता है।[2]

१-द्रष्टव्य हि० वि०, पृ०-३५
२-द्रष्टव्य र० वि०, पृ० -१६२

११. वैदूर्य- वैदूर्य-

(सं० क्ली०) विदूरात् प्रभवतीति विदूर (विदूरात् ञ्यः पा ८/३/८४) ई ञ्य। मणि विशेष। क्ली(विदूरात् प्रभवतीति)"विदूर+विदूरात ञ्य्"। केतुरत्नम् कैतवम् प्रवृष्यम्, अभ्ररोहम्, छखशब्दाङ्कुरम्, विदुरत्नम्, विदूरजम्। [1]

संस्कृत भाषा में वैदूर्य को विदूररत्न, केतुरत्न, विदूरज, विडालाक्ष आदि कहा जाता है। हिन्दी में वैदूर्य मणि, सूत्रमणि, गुजराती में लसणियो, अरबी में एन अ हिर, चीनी में मो जी गन तथा अंग्रेज़ी में (cat eyes) कहा जाता हे। [2]

वैदूर्य रत्न महारत्नों में गिना जाता है। किसी-किसी के मत से यह रत्न विदूर पर्व पर उत्पन्न होता है इसी से इसका नाम वैदूर्य हुआ है। 'विदूरे भवं वैदूर्य' इस व्युत्पति के अनुसार भी विदूरजात मणि ही वैदूर्य नाम से ख्यात है। **"वैदूर्य केतुप्रीति कृतं" "वैदू मध्यम स्मृत"** यह रत्न केतु ग्रह का प्रतिकारी है और हीरक रत्नापेक्षा मध्यम रत्न कह जाता है। [3]

वैदूर्य के भेद-

१- उत्पलवर्ण(लाल कमल के समान), **२- शिरीष पुष्पक** (शिरीष पुष्प की भांति **३- उदकवर्ण** (जल के समान), **४- वंश राग** (बाँस के पत्ते के समान), **५- शुकपत्रवर्ण** (तोते के पंख की तरह), **६- पुष्यराग**(हलदी के समान), **७- गोमूत्रक** (गोमूत्र के समान), **८- गोमेदक** (गोरोचन के समान)। [4]

१. प्रकार- वैदूर्य तीन प्रकार के होते हैं। पहला वेणुपलाश अर्थात् बांस की पत्ती क तरह का, दूसरा मयूरकण्ठ की तरह का, तीसरा मार्जार आँख की तरह का। इनमें जो बड़ा स्वच्छ, स्निग्ध और वजन में भारी हो वह उत्तम है। जो विच्छाय अर्थात् विवर्ण और जिसके अन्दर मिट्टी या शिलोका दाग दिखाई देता है, जो वजन में हल्का, रुख क्षतयुक्त, त्रासचिन्ह से चिन्हित, कर्कश और कृष्णाभ है, वह वैदूर्य निन्दित है। इस तरह का निन्दित वैदूर्य धारण करने से अशुभ फल होता है। [5]

---

१. द्रष्टव्य हि० वि०- पृ० - २८३, र० वि०, पृ० - २००

२. --- शब्दकल्प० भा० - ४, पृ० - ५११

३. ----- हि० वि०- पृ० - २८४

४. वैदूर्य केतु प्रीतिकृत। गरूत्मतंच माणिक्यंमौक्तिकंश्रेष्ठमेवाहि।
इन्द्रनीलपुष्करागौवैदूर्यमध्यमंस्मृतम्।। शुक्र०- अ०- ४, श्लो०- ६०- ६२

५. एकं वेणुपलाशकोमलरूचा मायूर कण्ठत्विषा। माजरिक्षणपिङ्गलच्छविजुषा ज्ञेयं त्रिधाच्छायया।।
यङ्गात्रं गुरुतां दधाति नितरां स्निग्धन्तुदोषोषितं। वैदूर्य विशदं वदन्ति सुधियः स्वच्छञ्च तत्छोभनम्
विच्छायं मृच्छिलागर्भं लघु रुक्षञ्च सक्षतम्। सत्रासं परुषं कृष्णं वैदूर्यं दूरतां नयेत्।।
धृष्टं यदात्मना स्वच्छं स्वच्छायां निकषाश्मनि। स्फुटं प्रदर्शयदेतवैदूर्य जात्यमुच्यते।।
राज०- श्लो०- ८७, पृ०- ६८

२- वैदूर्य के गुण- सुतार, धन, अत्यच्छ, कलिल और व्यङ्ग ये पाँच वैदूर्य महागुण सम्पन्न होते हैं।

१- सुतार- जिन वैदूर्य मणियों में निकलती हुई रश्मियां चमकदार, सुन्दर और आकर्षक दिखाई देती हों वे सुतार लक्षण से युक्त मानी जाती हैं। उनमें बिल्ली के नेत्र की तरह या लहसुन के रङ्ग का कलिल, निर्मल और व्यङ्ग गुण विशिष्ट जो वैदूर्य है उसे देवगण भूषण रूप से व्यवहार करते हैं।

२- घन- जो रत्न भारीपन लिए होता है वे घन लक्षण से युक्त माना जाता है।

३- अत्यच्छ- कलंक रहित लक्षण से युक्त वैदूर्य निर्मल कहा जाता है।

४- कलिल- जो वैदूर्य ब्रह्मसूत्र (जनेउ के धागे) के समान कलाकृतिमयता और प्रकाश की चंचलता से युक्त होता है वह कलिल वैदूर्य कहलता है। यह राजाओं को भी सम्पत्तिदायक है।

५-व्यंग- रत्न के प्रत्येक अंग यथा सुतारत्व, धनत्व, निर्मलत्व, कीललत्व आदि गुणों से युक्त लक्षणों को व्यंग कहा जाता है। [१]

३- वैदूर्य के दोष-

जो वैदूर्य काले रंग का हो, कान्तिहीन, चपटा, वजन में हलका हो तथा खुरदरेपन से युक्त हो और जिसके भीतर लाल रंग की रेखा दिखाई देती हो, वह निकृष्ट माना जाता है। इस मणि के जैसे पाँच गुण हैं। वैसे ही पाँच महादोष हैं। जैसे कर्कर, कर्कश, त्रास, लङ्क और देह। जो देखने में शर्करायुक्त अर्थात् कर्कर युक्त दिखाई दे वह कर्कर दोष है। इसके धारण करने पर बन्धुनाश होता है। जिसके देखते ही टूटने की भ्रान्ति होती है। वह त्रास नामक दोष है। इसके धारण करने से वंश नाश होता है। जिसकी गोद में विजातीय घन दिखाई दे, उस दोष का नाम कङ्क है। इसको धारण करने पर उस व्यक्ति का स्वयं नाश हो जाता है। जिसमें देखने से मालूम हो कि मललिप्त है, वह भी सदोष है। इस दोष को देहदोष कहते हैं। इस देहदोष युक्तवैदूर्य को धारण करने से शरीर क्षयरोग युक्त होता है। [२]

१- वैदूयः उत्पलवर्णः शिरीषपुष्पक उदकवर्णो वंशरागः। शुक पत्रवर्णः गोमूत्रको गोमेदकः।
अ० शा०, अ०- ११, श्लो०-४

क- माज्र्जार- नयन- प्रख्यं रसोन- प्रतिमं हि वा। कलिलं निर्मलं व्यङ्ग-वैदूर्य देवभूषणम्।।
सुतारं धन मत्यत्त्छं कलिलं व्यङ्ग मेव च। वैदूर्याणां समाख्याता एते पञ्च महागुणाः।।
युक्ति०श्लो०-७५-७६,पृ०- १२१

२- उद्गिरन्निव दीप्ति योऽसौ सुतार इति गद्यते। प्रमाणताल्पं गुरु यद् धनमित्याभि धीयते।।
कलङ्कादि-विहीनन्तदत्यच्छमिति कीर्त्तितम्। ब्रह्म-शूद्रं कलाकारश्चञ्चलो यत्र.श्यते।।
कलिलं नामतद्राज्ञः सर्व सम्पत्ति कारकम्। विश्लिष्टाङ्गन्तु वैदूर्य व्यङ्गमित्यभिधीयते।।

गुणवान् वैदूय- मणिर्योजयति स्वामिनं वरभा (भो) ग्यैः। दोषैर्युक्तो दोषैस्तस्माद यत्नात् परीक्षेत।।
कर्करं कर्कशन्त्रासः कलङ्को देह इत्यपि। एते पञ्च महादोषा वैदूर्यणामुदीनिताः।।
शर्करायुक्तमिव यत् प्रतिभाति च कर्करम्। स्पर्शेऽपि च यत्तजज्ञेयं कर्कशं बन्धुनाशनम्।।
भिन्न भ्रान्ति करस्त्रांसः स कुय्यार्त कुल संक्षेयम्। विरुद्ध वर्णो यस्याङ्के कलङ्क क्षय कारकः।।
मलदिग्ध इवाभाति देहो देह विनाशनः। जयति यदि सुवर्ण त्यागहीन यद।।

क- द्रष्टव्य र० वि०, पृ० -२०४, ख- द्रष्टव्य भा० प्र० नि०, पृ० ५०६

१२. गोमेद-

पुं० (गौलर्जलमिव मेदयति स्नेध्यतीतिमिद्+यचाटाच्।। गोमेद मणि। [1] मणि विशेष, पर्याय- राहुमणि, तमोमणि, स्वर्भानव, लिङ्ग, स्फटिक। [1]

संस्कृत भाषा में गोमेद को गोमेदक, राहुरत्न,तृणवर आदि नाम दिए गए हैं। हिन्दी में गोमेदमणि, बंगला में लोहितमणि, अरबी में यमनी, अंग्रेज़ी में izrcon कहा जाता है। गुजराती में गोमूत्र जेवुं पीला रंगनुं, कन्नड में गोभेद, तै०- गोमेदकं, इं०- ओनिक्स तथा लै०- ओनिक्स (Onyx) उर्दू/फारसी- जरकूनिया या जारगुन, अरबी (सिंदूरी)। [2]

गोमेद का उपयोग आभूषणों एवं औषधियों के लिए किया जाता है, परन्तु सबसे अधिक परिमाण में इसका उपयोग औद्योगिक रूप में ही होता है। गोमेदरत्न की छोटी-२ कणिकाएं घड़ियों के पुर्जों के संयोजन स्थान पर जोड़ने के काम में लाई जाती हैं। इसी प्रकार 'जिरकोनियम आक्साइड' नामक द्रव पदार्थ लोहे की तरलावस्था में मिलकर लोहे को उत्कृष्ट बनाने में उपयोगी सिद्ध होता है। इस प्रकार से यह रत्न औद्योगिक कामों में अधिक लाया जाता है।[3]

प्राप्ति स्थान -

गोमेद सायेनाइट शिला में काफी मात्रा में पाया जाता है, एक ही स्थान में बहुत अधिक मात्रा में यह प्रायः नहीं मिलता है। गोमेद रत्न गोल चिकने पत्थरों और पानी में घिसे रत्नों के रूप में पानी में घुलकर नीचे बैठी तलछट में मिलता है। इस प्रकार से यह ज्यादातर श्रीलंका, क्वीन्सलैंड, आस्ट्रेलिया तथा थाईलैंड में विशेष रूप से पाया जाता है। श्रीलंका में पाया जाने वाला गोमेद आज भी मैतुरा हीरे के नाम से प्रसिद्ध है। पीले भूरे गोमेद दक्षिणी अफ्रीका की किंबरली खानों से हीरों के साथ होते हैं।

प्रकार-

हिमालय पर्वत पर तथा सिन्धु नदी में गोमेद मणि की उत्पत्ति है। यह मणि स्वच्छकान्ति, भारयुक्त, स्निग्ध, दीप्तियुक्त एवं शुक्लवर्ण व पीतवर्ण होती है। इसके चार भेद हैं- शुक्ल वर्ण गोमेद को ब्राह्मण, रक्तवर्ण को क्षत्रिय, ईषत् पीतवर्ण को वैश्य एवं ईषत् नीलवर्ण गोमेद को शुद्रजाति की बताई गई है। इसी प्रकार से इसकी छाया भी चार प्रकार की बताई गई है। सफेद, लाल, पीली और काली होती है। [4]

---

१. हि० वि० - पृ० - ३५२

२. शालि० नि० भू० - पृ० - ७४६

३. र० परि० - पृ० - १३७

४. हिमालये वा सिन्धौ वा गोमेद-मणिसम्भवः। स्चच्छकान्र्गिुरुः स्निग्धो वर्णाढयो दीप्तिमानपि।। वलक्षः पिञ्जरो धन्यः गोमेद इति कीर्त्तितः। चतुर्थ जाति-भेदस्तु गोमेदेऽपि प्रकाश्यते।। ब्राह्मणः शुल्कवर्णः स्यात् क्षत्रियो रक्त उच्यते। आपीतो वैश्यजातिस्तु शुद्रस्त्वानील उच्यते।। छाया चतुर्विधा श्वेता रक्ता पीताऽसिता तथा।। युक्ति० श्लो०- ३४-३७, पृ०- १०६

तीन प्रकार के गोमेद उच्च, मध्य एवं निम्नवर्गीय विशेषताओं तथा व्यवहार में अलग-२ बताए गए हैं।

उच्चवर्गीय गोमेद- उच्चवर्गीय गोमेद चतुष्कोण का होता है। इसकी द्विवर्णिता इतनी अधिक होती है इसमें दो रंग नीला और श्वेत आसानी से दिखाई देते हैं। इसको सरलता से काटा जा सकता है।

मध्यवर्ग गोमेद- मध्यवर्गीय गोमेद लाल और भूरापन लिए हुए लाल रंग का होता है।

निम्नवर्ग गोमेद- निम्नवर्ग का गोमेद हरे रंग की झाइयों में मिलता है। यह भूरे और नारंगी रंगों में भी पाया जाता है। इसमें द्विवर्णिता बहुत कम पाई जाती है।

गोमेद रत्न इतने विविध रंगों में पाये जाते हैं कि उनके नाम अलग-अलग हो जाते हैं। लाल से लेकर झाई वाले भूरे गोमेद अँग्रेज़ी में जैसिंथ (Gacinth) और पीताभ पीले रत्न (Gorgoon) जार्गुन कहलाते हैं। रंगरहित गोमेद तो पीले अथवा भूरे रत्नों को गरम करने से ही बनते हैं। रंगीन रत्न कभी-कभी धुंधले होते हैं, परंतु इनमें जाज्वल्यामानत् साफ दिखाई देती है। रंगरहित अथवा श्वेत तो चमक में हीरे की तरह होते हैं। दोरंगी चमक केवल नीले में ही दिखाई देती है।[1]

गुण-

जो गोमेद स्वच्छ, गोमूत्र के समान वर्णवाला, उज्लवल(चमकदार) चिकना समतल, भारी निर्मल, कोमल और प्रकाशवान इन गुणों से युक्त होता है,वह उत्तम श्रेणी का माना जाता है। जो गोमेद गाय की मेद अर्थात् चरबी के रंग का हल्के पीले वर्ण का हो उस गोमेद को उत्तम माना जाता है। श्रेष्ठ तथा गुणकारी गोमेद वह है जिसमें निर्मल गोमूत्र की सी आभा हो, चिकना, स्वच्छ, समडौल, भारी, दलरहित भरी तथा प्रकाशवान हो।[2]

दोष-

१ रुक्ष, २. छाल, ३. अबरखी, ४. गढ़ा, ५. चीर, ६. धब्बा ७. दुरंगा, ८. श्यामा, ९. रक्तबिन्दु, १०. सफेद बिन्दु, ११.जाल और १२. सुन्न। यह बाराह प्रकार के दोष गोमेद में पाये जाते हैं।

जो गोमेद दूर से स्वच्छ गोमूत्र के समान न प्रतीत होता हो, दड़कदार न हो, पीले कांच- खंड सा दिखाई देता हो, परतदार हो, ऐसा गोमेद इन दोषों से युक्त माना जाता है।[3] जो दोष हीरे में होते हैं वही गोमेद मणि में होते हैं। इसीलिए इसकी परीक्षा शान तथा अग्नि से करनी चाहिए।[4]

द्रष्टव्य

१- र० वि०, पृ० -१३६,२७९

२- भा० प्र० नि०, पृ०-५०६

३- शालि० नि० भू०- पृ० - ७५०

४- र० वि०, पृ० -१३६, १२९, ७०८

१३. चन्द्रकान्त- चन्द्रकान्तः पुं (चन्द्रः कान्तः प्रियो यस्य) कैरवम्।(चन्द्र इव कान्त्युक्तः। चन्द्रकान्तः) अभीष्टो अधिष्ठातृदेवोऽस्येति वा मणि ...। इति मोदिनी ते

पर्याया- चन्द्रमणिः, चान्द्रः, चन्द्रोपलः, इन्द्रकान्तः, चन्द्राश्मा, संपलवोपलः, शीताश्म चन्द्रिकाद्रावः, शशिकान्तः, प्रस्तरोपल।[१] (स० पु० चन्द्रकान्त) प्राचीन ग्रन्थों के अनुसार एक मणि या रत्न।

विशेष- इसके विषय में प्रसिद्ध है कि यह चन्द्रमा के सामने करने से पसीजता है और इसमें बूँद-बूँद पानी टपकता है।[२] चन्द्रमा की किरणों के स्पर्श से जिसमें अमृत(जल) टपकता है उसी को चन्द्रकान्तमणि कहते हैं यह कल्युग में अत्यन्त दुर्लभ है।[३]

गुण- स्निग्ध, शिशिर, शिवप्रीति, स्वच्छ, अस्त्रदाह और अलक्ष्मीनाशक है। इससे उत्पन्न जल का गुण विमल, लघु, कफ, पित्त, मूर्च्छा, अस्र दाह, कास और मदात्यरोगनाशक है।[४] चन्द्रकान्त मणि शीतल, स्निग्ध, स्वच्छ, शिवप्रिय तथा रुधिर विकार, दाह, ग्रह और अलक्ष्मी का नाश करे।[५] चन्द्रकान्तमणि का जल रूखा, शीतल और दाह को दूर करता है।[६]

सूर्यकान्तमणि- अग्नि मणि। एक बहुमूल्य पत्थर सूर्यमुखी शीशा। आतसी शीशा। नाम- अग्निगर्भ, अग्निजार या गजपिप्पली का पौधा, शमिवृक्ष।[८] दीप्तोपल, सूर्यकान्त ज्वलनाश्मा, अग्निगर्भक (रविकान्त) अर्कोपल, तापन, तपनमणि, सूर्य्याश्मा, दहनोपल सूर्यमणि।[९] संस्कृत में सूर्यकान्त, हिं० आतसीसीसा,वं० आतस पाथर। मं० सूर्यकान्तमणि गु० अगनत्तशमांनो काच, इं० मेग्निफाइंग ग्लास (Magnifying Glass)[१०]

गुण- गरम, निर्मल, रसायन, वात और कफनाशक और मेधाजनक और इसका पूजन करने से सूर्य संतुष्ट होता है।[११] त्रिदोशनाशक, मेधाजनक, रसायन कफ और वात को दूर करती है।[१२] जो चिकना, व्रणरहित, तुषरहित, घिसने से आकाश के समान निर्मल हो जाए और धूप में रखने से जिसमें अग्नि जल उठे ऐसी सूर्यकान्त मणि उत्तम कहलाती है।

१. शब्दकल्प० - पृ० ४२८ २. हि० श० स० - भा० - ३

३. पूर्णेन्दुकरसंस्पर्शातअमृतंस्रवतिक्षणात्। चन्द्रंकान्तंतदाख्यातं दुर्ल्लभंत्कलौयुगे।।
युक्ति० श्लो०- ८, पृ०- १३७

४. शब्द कल्प०-पृ०- ४२८

५. शालि० नि० भू०- पृ०-७५४

६. चन्द्रकान्तोद्भवंरूक्षंशीतंदाह विनाशनम्। तदेव

७. हि० श० सा० - पृ० - १०१ ८. तदेव - पृ० - १००

९. दीप्तोपलः सूर्यकान्तोज्वलनाश्माग्निगर्भकः। - शालि० नि० भू० - पृ० - ७५२

१०. सूर्य्यकान्तोभवेदुष्णो निर्मलश्चरसायनः। वातश्लेष्महरोमेध्यः पूजनाद्रवितुष्टिदः।।
शालि० नि० भू० - पृ० - ७५३

१२. सूर्य्यकान्तस्त्रिदोषघ्नोमेध्योष्णश्चरसायनः। कफ वात हरः प्रोक्तः पूर्वै ...युर्विदिर्जनैः।। तदेव

१३. शुद्धः स्निग्धोनिर्व्रणोनिस्तुषस्तुयोनिर्घृण्टोव्योमनैर्मल्यमेति।
यः सूर्य्याशुस्पर्शनिर्व्यूतवह्निर्जात्यासोयंचक्षतेसूर्यकान्तः।। तदेव - -

१४. अकीक–

(अ० पु०) एक प्रकार का चमत्कारिक पत्थर जो कई रंग का होता है। भारत में कई प्रकार के पत्थर अकीक नाम से विख्यात हैं। इनके पर्याय हिन्दी में अकीक, पंजाबी में मंक, उर्दू में यम्नी, संगसुलेमानी तथा अँग्रज़ी में एगेट(Agate), कारनेलियन (Carnulian), ओनिक्स (Onyx), इत्यादि।[1]

प्राप्ति स्थान–

बङ्गाल प्रान्त के राजमहल, छोटा नागपुर, और अन्यान्य पहाड़ी स्थानों में यह पाया जाता है। पश्चिमोत्तर प्रान्त के बांदा ज़िले में मध्य प्रदेश के जबलपुर में बम्बई प्रान्त के रेवाकान्त रतनपुर, राजपीपला और खम्भात में यह बहुत होता है। भारतवर्ष के पर्वतीय स्थान से निकली हुई नदियों में एवं कृष्णा, गोदावरी और भीमा नदी के प्रस्तरों में पर्याप्त पात्रा में अकीक पाया जाता है। कश्मीर के रड़ीक नाम स्थान के पार्श्ववर्ती स्थानों में अकीक एवं गोमेद या स्फटिक की तरह कार्नेलियन ;ब्ंतदमसपवदद्धए नामक प्रकार पर्याप्त मात्रा में पाया जाता है। बिहार के संथाल परगने में एवं मद्रास प्रान्त के राजमहेन्द्री राज्य के पार्श्ववर्ती स्थानों में अकीक, जेरपर, कार्नेलियन पर्याप्त पाए जाते हैं। गन्टूर नामक स्थान की कृष्णा नदी में अकीक एवं आनिक्स(Onyx), पाया जाता है। नर्मदा नदी के पास मेड़ा घाट पर, जबलपुर, अहमदाबाद काठियाबाड़ में ये पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होता है।[2]

प्रकार– **१. अकीक** (Agate) **२. जालयुक्त अकीक** (Veined agate)
३. शैवाल अकीक(Moss agate) **४. साधारण अकीक**(Common agate)

अकीक स्फटिक वर्गान्तर्गत गुप्त स्फटिकीय (Anarphus) प्रकार है। शैवाल अकीक (Moss agate) का रंग बिल्कुल हरित् वर्ण शैवाल के समान होता है। हरित् वर्ण की प्रधानता लिए हुए श्वेत भूरापन का भी होता है। अकीक में जब लौहांश की मात्रा होती है। तब इसका रंग कुछ हरित कृष्णाभा युक्त भी हो सकता है। जालयुक्त अकीक का रंग शिलाओं के जाल के समान रेखायुक्त होता है। साधारण अकीक भूरेपन का होता है। पालिश करने से देखने में यह बड़े ही आकर्षक लगते हैं।[3] जलपूर्ण मेघ के समान श्यामल पाण्डुरवर्ण, कुछ सफेदी लिए हुए नीलरंग की आभा के साथ मिलते हैं।[4]

द्रष्टव्य

१– हि० वि० – पृ०– ३७
२– र० वि० – पृ०– २३६
३– तदेव– पृ०– २३८
४– हि० वि०– पृ०– २७–२८

१५. फिरोज़ा-

पिरोज़ा को संस्कृत में पेरोजक, पेरीज, हरिताश्च कहते हैं। हिन्दी में पिरोज़ा तथा फ़िरोज़ा कहते हैं। गुजराती में पीरोजों, मराठी में पेरीज़, उर्दू में फिरोज़ा, फारसी में फिरोज़ज़, अंग्रेज़ी में टरक्वाइज़ (Turquoise) लेटिन- टर्चेसिन्स टरचाइना (Terchesins Turchina)।[१] उत्कृष्ट फिरोज़ा फारस की पहाड़ियों में पाया जाता है। अमेरिका से भी फिरोज़ा बहुत मात्रा में आता है।[२]

प्रकार-

फिरोज़ा कुछ मटमैले रंग का भूरा, श्वेत वर्ण एवं हरित वर्ण का फिरोज़ा दो प्रकार का होता है। परासियल फिरोज़ा चमकदार नीलवर्ण युक्त होता है तथा इजिप्शियन फिरोज़ा प्रगाढ़ नीलवर्ण एवं पीताभायुक्त आकाशीय नीलवर्ण अथवा पीताभायुक्त हरितनीलवर्ण होता है। अमेरिकन फिरोज़ा प्रगाढ़ पीताभायुक्त निम्बूकप्रभ होता है।[३]

१६. लाजवर्त-

लाजावर्त को संस्कृत में नृपावर्त, आवर्तमणि, नृपीपल नीलाश्म तथा राजावर्त कहते हैं। हिन्दी में लाजवरत, रजवरल, गुजराती- रेवटी रावटी, पंजीबी- लाजवर्द, मराठी- कर्णाटकी, राजावर्तमणि, उर्दू तथा फारसी में लाज़वर्त अंग्रेजी में लेपिस-लजुली (Lapis-Luzuli) लैटिन में लेज्यूराइट (Lazurite) कहते हैं।[४]

प्राप्ति स्थान-

लाजावर्त का उद्गमस्थान मुख्यतः अफगानिस्तान रहा है। इसके अतिरिक्त भरतपुर, सिन्धु नदी के मूल उद्गम स्थान के पार्श्ववर्ती स्थानों में, लंका तथा उत्तरी अफ्रीका में भी पाया जाता है। हिमालय पहाड़ पर, मध्यप्रदेश तथा लंका से भी यह आता है।[५]

प्रकार- लाजवर्त दो प्रकार का माना गया है। (१) संगे बादल (२) संगे मूसा

(१) संगे बादल- यह कृष्ण आभा लिए हुए सुचिक्कण होता है। यह तुर्किस्तान और लंका में पाया जाता है। भारतवर्ष में नर्मदाञ्चल एवं विन्ध्य गिरिशृगों से भी उपलब्ध होता है। संगे बादल का सूक्ष्मातिसूक्ष्म चूर्ण मक्खन में मिलाकर मुख पर लगाने से च्यग, न्यच्छ, नीलिका (Capillary argiomata, mother's mark, nae vusmaternus) आदि क्षुद्र रोग नष्ट होते हैं।

(२) संगे मूसा- यह आकाश में बादलों की काली घटा के सदृश कृष्णश्वेत और सुचिक्कण होता है।[६]

---

१. र० वि०- पृ० - २०७
२. हि० वि०- पृ० - २२५
३. र० वि० - पृ० - २०७
४. र० वि० - पृ० - २११
५. हि० वि०- पृ० - ३७
६. र० वि० - पृ० - २१२

गुण- राजावर्त किंचित् अरुण वर्ण और प्रधानतः नील-अरुण वर्ण मिश्रित वर्ण होता है। जो राजावर्त वज़न में भारी, कोमल, सुचिक्कण हो वह श्रेष्ठ माना जाता है। निर्मल, सुचिक्कण, मलरहित, स्निग्ध, स्वच्छ बादल के समान नीलवर्ण, कृष्ण नीलवर्ण मिश्रित वर्ण-मयूर कण्ठ के समान वर्ण वाला समुज्जवल राजावर्त उत्तम होता है। अन्यथा यह मध्यम श्रेणी का माना जाता है। [१]

दोष- राजावर्त में गढ़ा, चीर, धब्बा, दो रंग, लूक, मैल, श्याम तथा बिंदु आदि दोष पाए जाते हैं। [२]

१७. पुलक- (सं० पु०) पुल-स्वार्थे कनू। प्रस्तर मणि भेद, एक प्रकार का रत्न (Garnet) [३]

उत्पत्ति- भुजङ्गगण ने दानवपति की उपयुक्त पूजा करके उनके नखों को पुण्यजनक, पर्वत, नदी और अन्यान्य प्रसिद्ध स्थानों पर स्थापित किया था। इसी कारण से उन सब स्थानों में पुलकमणि उत्पन्न होती है। दशार्ण गोगदाद, मेकल और कायगाद्रि आदि स्थानों में पुलकमणि उत्पन्न होती है। वहाँ कृष्ण, मधुपिङ्गल, मृणालरूप, गन्धर्वलता वर्ण, अग्निवप और कढली वर्ण की सर्वापेक्षा उत्कृष्ट पुलकमणि पाई जाती है। [४]

गुण- शंख, पद्म, भृङ्ग और अर्कवर्णाभ विचित्राङ्ग पुलक मङ्गलजनक और उत्तम है।

दोष- काक, कुक्कर, गर्दभ, शृगाल, वृक और गृध्र के रक्तमांसलिप्त-मुख के जैसा विकटरूप पुलक मृत्युकारक है। इसीलिए इस प्रकार के पुलक को कभी भी अपने पास नहीं रखना चाहिए। [५]

पुलक मणि द्वारा स्फटिक काटा जा सकता है। इसके उपरान्त इन्द्रनील वा माणिक से भी इसे काट सकते हैं। काँच की तरह इसमें भी चमक-दमक होती है। घिसने से इसमें घन ताड़ित होता है और चुंबक के निकट रखने से गति होती है। साइलेकस (Silex), आलुमिना(Alumina) और अल्प परिमाण में आक्साइड ऑफ आयरन (Oxide of Iron), इस मणि का उपादान है। [६]

प्रकार-

वर्ण में अथवा आयतन में इस मणि के जितने भेद हैं, उतने भेद किसी में देखने को नहीं मिलते हैं। श्वेत, पीत, हरित, रक्त, कृष्ण और पांशु आदि नाना वर्गों का पुलक सब जगह पाया जाता है। नारवे, स्वीडन, स्विज़लैंड, स्पेन, ग्रीनलैंड, युनाइटेड स्टेटस, मैक्सिको, ब्राज़ील, आस्ट्रेलिया आदि स्थानों में प्रथम श्रेणी का पुलक पाया जाता है। यह मणि देखने में लाल वर्ण लिए नीली होती है। भारत के चेर देश में यह मणि यथेष्ट मिलती है। सिंहल में प्रधानता से यह मणि पाई जाती है। यह पत्थर नरम होने के कारण इस पर नक्काशी करना आसान है। [७]

१- राजावर्तोऽत्यरक्तोरूनीलिकामिश्रितप्रभः। गुरुश्च मसृणः श्रेष्ठस्तदन्यो मध्यमः स्मृतः।।
र० वि० -पृ० - २१०

२- हि० वि० - ३७, ३- हि० वि०- पृ०- २०२, ४- ग० पु० ६८- १-८
५- र० वि०- पृ० २१२, ६- र० वि०- पृ० २१४ ७- हि० वि०- पृ० २०२-२०३

१८. शंख-

(सं० पु० क्ली०) शम्यति अशुभ भस्मादिति शम-ख। शमेः खः /३०/१/१०४, समुद्रोद्भव जन्तु विशेष एक प्रकार का बड़ा घोंघा जो समुद्र में पाया जाता है। **पर्याय-** कम्बु, कम्बोज, अब्ज, जलज, अर्णोभव, पावनध्वनि, अन्तः कुटिल, महानाद, श्वेत, पूत, मुखर, दीर्घनाद, बहुनाद, हरिप्रिय। [1]

उत्पत्ति-

देदीप्यमान शूल जब दानवप्रधीर शंखचूड़ के ऊपर गिरा तब उसकी देह भस्म हो गई। इस पर महादेव बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने हड्डियों को लवणाम्बु में फेंक दिया। उन्हीं सब हड्डियों से नाना प्रकार के शंखों की उत्पत्ति हुई थी।

देवतादि की पूजा में शंख अति पवित्र पदार्थ है। इसका जल तीर्थजल स.श तथा देवताओं का अत्यन्त प्रतिंपद है। शंख की ध्वनि जहाँ तक जाती है वहाँ लक्ष्मी देवी स्थिर भाव से अवस्थान करती है। शंख में सर्वदा हरि वास करते हैं, अतएव जहाँ शंख रहता है, लक्ष्मी वहाँ का कुल अमंगल दूर कर सर्वदा उस स्थान में वास करती हैं। किन्तु यदि स्त्रीशुद्र द्वारा वह शंख बजाया जाए तो लक्ष्मी भयभीत और अप्रसन्न होकर वहाँ से चली जाती है। शंख में कपिला गाय का दूध भर कर उससे नारायण भगवान को स्नान कराने से सहस्र यज्ञ का फल लाभ होता है। अन्य किसी गाय का दूध शंख में भर कर नारायण को स्नान कराने से ब्रह्म पद का फल लाभ होता है। शंखस्थ गङ्गाजल द्वारा **'नमो नारायण'** कह कर विष्णु को स्नान कराने से जीव योनि संकट से मुक्त होता है। शंखसंलग्न विष्णुपादोदक में तिल या तुलसी मिलाकर भक्त वैष्णवों को देने से चन्द्रायण व्रत का फललाभ होता है। नदी, तड़ाग, कूप, सरोवर आदि जिस किसी जलाशय का जल क्यों न हो वह शंख में डालने से गंगाजल के समान हो जाता है। जो वैष्णव शंखस्थ विष्णुपादाम्बु को मस्तक पर धारण कर नित्य वहन करता है, उसकी गिनती श्रेष्ठ तपस्वी में होती है। त्रिभुवन में जितने भी तीर्थ हैं, वासुदेव की आज्ञा से सभी शंख के भीतर अधिष्ठित है। इस कारण से **"त्वं पुरा सागरोत्पन्नो विष्णुना विधृतः करे। नमितः सर्वदैवेश्च पाञ्चजन्य नमोऽस्तुते"** इस मंत्र से सर्वदा शंख की अर्चना करना कर्त्तव्य है। [2]

फलपुष्पचन्दनादि द्वारा जो वासुदेव के सामने शंख की अर्चना करते हैं, लक्ष्मी सदा उन पर प्रसन्न रहती है। शंख की अर्चना यदि न भी की जाए तो उसके दर्शन मात्र से ही सूर्योदय होने पर शिशिर बिन्दु की तरह पाप राशि विलुप्त हो जाती है। पंचजन्य शंख के नाद से असुर पत्नियों के गर्भ सहस्र भागों में विभक्त हो विनष्ट होते हैं। यमदूत, पिशाच, उरग, राक्षस आदि जिस व्यक्ति को शिर पर शंखोदक दे, उसे देख

१- दृष्टव्य हि० श० सा०- पृ०- ५६२, र० वि०, हि० वि० को०, ग०पु०, अ० पु०।
२- तदेव- - - - -

भयभीत हो दूर भागते हैं। नित्य, नैमित्तिक और काम्य स्नानार्चन विलेपनादि से जो शंख की अर्चना करते हैं, श्वेतद्वीप में उनकी गति होती है।

दक्षिणवर्त्त शंख–

पूर्वदिग्गामिनी नदी के किनारे जा कर दक्षिणावर्त्त शंख द्वारा विधिवत अभिषेक करने से सभी पाप नष्ट होते हैं। तिल और जल संस्पुष्ट दक्षिणावर्त्त शंख द्वारा उक्त प्रकार की पूर्वदिग् गामिनी नदी के गर्भ में नाभि पर्यन्त निमाज्जित कर यथा विधि अभिषेक करने से जीवन भर का किया हुआ पाप उसी समय नष्ट होता है। दक्षिणावर्त्तशंख द्वारा परिशोधित जल दृष्टवित्त से मस्तक पर धारण करने से जन्मार्जित पाप उसी समय जाते रहते हैं। इससे कभी भी मछली या शूकर को नहीं मारना चाहिए। इस शंख में जलपान करना सर्वदा निषिद्ध है।

दक्षिणावर्त्ती शंख साधारणतः दुष्प्राप्य है। इस कारण मूल्य भी अधिक है। वामावर्त्तशंख में जहाँ हम मुँह लगा कर शंखनाद करते हैं, दक्षिणावर्त्त का वह मुख कान में लगाने से अपूर्व मधुर ध्वनि कर्ण कुहर में प्रवेश करती है। इस कारण से यह रत्नों में गिना जाता है। दक्षिणावर्त्ती शंख द्वारा हरि की अर्चना करने से सप्त जन्म .त पाप नष्ट हो जाते हैं। [1]

शंख दिव्य मणि है। यह समुद्र और नदियों से लाया जाता है। शंख मणि आयुवर्द्धक है। शंख मणि से रोग, दुर्बुद्धि और दुःखद रोगकृमियों को हटाते हैं। शंख सभी रोगों की दवा है, यह मोती है और हमें पापों से बचाता है। देवी की अस्थि चेतन शंखरूप होकर जल में रहती है। चमकने वाले मुख्य शंख समुद्र से ही निकलते हैं। शंख मणि वायु से और विद्युत की ज्योति से बनी है। शंख मणि से राक्षसों और रोगकृमियों को नष्ट कर सकते हैं। शंखमणि से रोग, दुर्बुद्धि और निर्धनता को दूर करते हैं। [2]

१- हि० श० सा०- पृ०- ५६३, शब्दकल्पद्रुम भा०- ४, पृ०- २५६

२. दिवि जातः समुद्रजः सिन्धुतस्पर्याभूतः। — अथर्व०- ४/१०/४
शंख आयुष्प्रतरणों मणिः। — तदेव - ४/१०/४
शंखेनामी वाममतिं शंखेनीत सदान्वाः। — तदेव- - ४/१०/३
शंखो नो विश्वभेषजः कृशनः पात्वंहसः। — तदेव- - ४/१०/३
तदात्मन्वत् चख्यस्वन्तः। — तदेव- - ४/१०/७
यो अग्रतो रोचनानां समुद्रादधि जज्ञिषे। — तदेव- - ४/१०/२
वाताज्जातो अन्तरिक्षाय विद्युतो ज्योतिषस्परि। — तदेव- ४/१०/१
शंखेन हत्वा रक्षांसि अत्रिणो वि षहासहे। — तदेव - ४/१०/२
शंखेनामीवाममतिं शंखेनोत सदान्वाः। — तदेव - ४/१०/३

शंख को रत्नविशेष में गिना गया है। यह शंख क्षीरोदीपकूल में सुराष्ट्र देश में या तद्भिन्न अन्यान्य स्थलों में भी पाया जाता है। इसका वर्ण तरुण सूर्य की तरह या शशिशुभ्र होता है। मुख बहुत सूक्ष्म और यह बहुत भारी तथा बड़ा होता है। वाम और दक्षिणावर्त्ती भेद से यह दो प्रकार का है। उनमें से दक्षिणावर्त्ती आयु, यश और धनवर्द्धक है। जो इस शंख से श्रद्धापूर्वक जलग्रहण करते हैं, वे सब पापों से मुक्त हो पुण्य लोक में जाते हैं। ४

गुण- वृत्ताकार भाव, स्निग्धता और निर्मलता ये तीन शंख के गुण हैं। इस शंख में यदि आवर्त्तभङ्गरूप कोई दोष हो तो सुवर्ण संयोग द्वारा उस दोष की शान्ति हो सकती है। यह शंख भी ब्राह्मण क्षत्रियादि भेद से चार प्रकार का माना गया है। देवपूजा काल में बजाने के लिए शंख की आवश्यकता होती है।

प्राचीन काल से ही हिन्दुओं के निकटं शंखवाद्य परम पवित्र रहा है। स्वयं विष्णु शंखचक्र गदाधारी हैं। युद्ध में प्रधान रथी या सेनादल भी शंखनिनाद से धरातल को कंपा देते थे, यह उस समय तुरीभेरी से अधिक प्रचलित था। प्रत्येक रथी के पास अपना अपना शंख रहता था। यथा -

भागवान् श्रीकृष्ण का पाञ्चजन्य, अर्जुन का देवदत्त, भीम का पौण्ड्र, युधिष्ठिर का अनन्तविजय, नकुल का सुघोष, सहदेव का मणिपुष्पक इत्यादि। प्रति हिन्दू मन्दिर में पूजा के समय अथवा संध्याकाल में शंखनाद होता है। किसी-किसी स्थान में अन्त्येष्टि क्रिया के लिए जाते समय और श्राद्धादि समय में भी शंख बजाते देखा जाता है।[२]

---

१. क्षीरोदकूलेऽपि सौराष्ट्रदेशे, तदन्यतोऽपि प्रभवन्ति शङ्खाः।
अरुष्कवर्णाः शशि-शुभ्रभास, सुसूक्ष्मवक्त्रा गुर्वी महान्तः।।
ते वाम दक्षिणावर्त्त भेदेन द्विविधा मताः। दक्षिणावर्त्त शङ्खस्तु कुर्य्यादायुर्यशोधनम्।।
तेनैव शिरसा यस्तु श्रद्धधानः प्रतीच्छति। वारि हीत्वा स पापानि पुण्यमाप्नोमि मानवः।।
वृत्तत्वं स्निग्धताच्छन्नं शङ्खस्येति गुणत्रयम्। आवर्त्त भङ्गदोषो हि हेम-योगविनश्यति।।
ब्रह्मादि-जातिभेदेन स पुनस्तु चतुर्व्विधः।

तद्यथा- ये स्निग्धमसृणाकारा मृदवो लघवस्तथा। ब्राह्मणाः प्रस्तरा ज्ञेयाः सर्व्वकर्मसु शोभनाः।।
ये दृढ़ाङ्गा सुगुरवः तथांशांश-विभागिनः। अश्मानः क्षत्रिया ज्ञेयाः कर्कशाङ्गस्तथैव च
मृदवो गुरवो ये तु ये ये स्नेहेनैव रक्षिताः। ते वैश्याः सु (ख) विभक्तांश युज्यते सव्वकर्मसु।
ये कर्करावृताङ्गाश्च कर्करा ये प्रतिष्ठिताः। येऽत्यन्त गुरवः स्निग्धाः ते सूद्राः प्रस्तराधमाः।।
इति प्रोक्तामशेषेण सम्यक् पाषाण लक्षणम्। विचार्य मतिमान् कार्ये नियोक्तव्यं विचलक्षणैः।।
युक्तिः श्लोक- १७-२६, पृ०- ११८-११९

२. ततः श्वेतैर्हयैर्यक्ते महति स्यन्दने स्थितौ। माधवः पाण्डवश्चैव दिव्यौ शङ्खौ प्रदध्मतुः।।
पाञ्चजन्यं हृषीकेशो देवदत्तं धनञ्जयः। पौण्ड्रं दध्मौ महाशङ्ख भीमकर्मा वृकोदरः।।
अनन्तविजयं राजा कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः। नकुलः सहदेवश्च सुघोषमणिपुष्पकौ।।
गीता - अ० - प्रथम, १४-१६

१६. मणि विवेचन

(स० पुं० स्त्री०) "मण सर्वधातुभ्य इन।" उण ४/११७

१. पारस मणि, २. कौस्तुभ मणि, ३. चित्तसिद्धि मणि।

संज्ञा पुं० (सं० स्पर्श, हिं० परस) एक कल्पित पत्थर जिसके विषय में प्रसिद्ध है कि यदि लोहा उससे छुआया जाए तो सोना हो जाता है।[1]

वराह पुराण के ११ अध्याय में गौरमुख मुनि का चित्तसिद्धि मणि के प्रभाव से दुर्जय का आतिथ्य सत्कार और चित्तसिद्धि नामक मणि का चमत्कार देखकर दुर्जय नामक राजा का मणि ग्रहण करने के लिए मुनि के साथ युद्ध करना, यह मणि सभी प्रकार के कार्यों को सिद्ध करने वाली, शत्रुनाशक और सब सिद्धियाँ प्रदान करने वाली है। यह मणिं मुनि को भगवान् विष्णु ने दी थी। यह चित्तसिद्धि नामक एक अत्यन्त प्रभायुक्त मणि थी। जिसके प्रभाव से मुनि ने राजा का सेना आदि सहित अपने आश्रम में सत्कार किया था।[2]

४.स्यमन्तक मणि -

चिन्तामणि और कौस्तुभमणि की भान्ति यह स्यमन्तक नामक मणि बहुमूल्य है और इस का वर्णन श्री श्री मदुतरगोपाल चम्पूः के १७ पुराण के १६ पाद्य में इस प्रकार आया है। स्यमन्तक प्रतिदिन अष्ट-भार (सोलह सहस्र पल या १६ मन २६ सेर १० छटाँक) सोना प्रसव करती है और समस्त अनिष्टों को नष्ट करती है।[3]

---

१. चित्तसिद्धिं इदौ तस्मे मणिं च सुमहाप्रभम् । ....।।

द्रष्टव्य- वराह पुराण - ११ अध्याय १ - ४१ श्लोक

२. ताहशमणिनिदानदिन मणिहृदयमणिं निखिलतमः शमनव्योममणिं त्रिलोकी-चूड़ामणिं निजकुलचिन्तामणिं कौस्तुभमणिपतिमवमन्य तन्मात्रलाभात् पूर्णम्मन्यतया स्पर्द्धाविषयीकृतं तमनिवेद्य गृहमेवासाद्य सद्यः सत्राजिन्महामहमारभ्य निजसभ्यद्विजद्वारा तं मणिं वेश्मनि निवेश्यामास। प्रतिदिनमष्टभारानष्टापदानामसौ सृष्टान् करोति, सर्वारिष्टानि च नष्टानि विदधानीति।।

श्री श्री मद्दुतरगोपालचम्पू पूरण १७/ पद्य १६।

अथर्ववेद में वर्णित विभिन्न प्रकार की मणियाँ एवं उन के गुण

१. प्रतिसर मणि-

प्रतिसर नामक मणि से इन्द्र ने द्यावापृथिवी को जीता था। यह मणि शक्तिवर्द्धक है तथा वीरों को ही बाँधी जाती है। इस मणि को देवता कवच के रूप में धारण करते हैं। इस मणि को धारण करने से मानव विचयी तथा ओजस्वी होता है। कश्यप ऋषि ने यह मणि बनाई थी तथा इसका प्रयोग किया था। प्रतिसर मणि के धारण करने वाले को गन्धर्व अप्सरा और मनुष्य हानि नहीं पहुँचा सकते हैं। वीर प्रतिसर मणि कृत्या प्रयोगों को नष्ट करती है। सहस्रशक्तियुक्त प्रतिसर मणि को देवों ने अपना कवच बनाया। यह प्रतिसर मणि शक्तिशाली, वीर, शत्रुनाशक, रक्षक और मंगलकारी है। प्रतिसर मणि को धारण करने वाला शेर, व्याघ्र या सांड सा हो जाता है। विद्वान इन्द्र ने प्रतिसर मणि से असुरों को हराया। प्रतिसर मणि से इन्द्र ने वृत्र को मारा था।[1]

२. अभीवर्त मणि- विजयप्रद और शत्रुनाशक है। अभीवर्त मणि राष्ट्ररक्षा और शत्रुनाशन के लिए है।[2]

३. अस्तृत मणि- अस्तृत मणि में सैकड़ों शक्तियाँ और सहस्रों बल हैं। अस्तृत मणि धारक को पापी और कृपण हानि नहीं पहुँचाते हैं। अस्तृत मणि में सहस्रों शक्तियाँ एवं आयुदाता है। इसके सौ उत्पत्ति स्थान हैं।[3]

४. पर्णमणि- पर्ण मणि सुरक्षा देने वाली तथा श्त्रुओं का नाश करने वाली है।[4]

---

१. अनेनायजद् द्यावापृथिवी उभे इमे। — अथर्व० - ८.५.३
अयं प्रतिसरो मणिर्वीरो वीराय वध्यते। — तदेव० - ८.५.१
ओजस्वान् संजयो मणि। — --- - ८.५.१६
कश्यपसत्वामसृजत कश्यपस्त्वा समेरयत्। — ---- - ८.५.११
नैनं ध्नन्ति अप्सरो न गन्धर्वा न मर्त्याः। — --- - ८.५.१३
प्रत्यक् कृत्या दूषयन्नेति वीरः। — --- - ८.५.२
मणि सहस्रवीर्यः वर्म देवा अ.ण्वत। — --- - ८.५.१४
वीर्यवान् सपत्नहा शूरवीरः परिपाणः सुमंगलः। — --- - ८.५.०१
सद् व्याघ्रो भवत्यथो सिंहो अथो वृषा। — --- - ८.५.१२
अनेनासुरान् पराभावयन्नमनीषी। — --- - ८.५.३
अनेनेन्द्रो मणिना वृत्रमहन्। — ---- - ८.५.३

२. अभीवर्तो अभिभवः सपत्नक्षयणो मणिः। — ---- - १.२१.४
राष्ट्राय मह्यं वध्यतां सपत्नेभ्यः पराभुवे। — ---- - १.२१.४

३. अस्मिन् मणवेकशतं वीर्याणि सहस्रं प्राणाः। — ---- - १९.४६.५
मात्वा दभन् पणयो यातुधाना। — ---- - १९.४६.२
सहस्रप्राणः शतोनिर्वयोधाः। — ---- - १९.४६.६

४. आ [illegible] — [illegible]
आयमगन् पर्णमणिः।........... — अथर्व० - ३.५.०१

५. दर्भमणि–

असंख्य काण्डों (गाँठों) से युक्त, कठिनाई से हटाने योग्य हज़ारों पत्तों से युक्त सभी औषधियों से श्रेष्ठ प्रचण्ड शक्ति सम्पन्न दर्भ औषधि के रूप में है। इसका शिखा भाग आकाश में स्थिर है और पृथ्वी पर औषधि का भाग है। यह दर्भ मणि पृथ्वी को सुदृढ़ करने, शत काण्डों की शक्ति से सम्पन्न, दुग्ध युक्त, जल, अग्नि औषधि एवं राजसूय यज्ञ की शक्ति एवं प्रभाव से सम्पन्न तेज से सिंचित मधुमय, दुग्ध से युक्त अपनी जड़ों से पृथ्वी को सृदृढ़ करने वाली, क्षय रहित, तीक्ष्ण और सुदृढ़ होती है।
गुण– दर्भ मणि को धारण करने से दीर्घायु, तेजस्विता प्राप्त होती है। दर्भ मणि असुर संहारक, शत्रु संहारक, शत्रु सेना एवं शत्रु के गृह परिवार पशु आदि सम्पत्ति को नष्ट करने वाली, शत्रु पर प्रहार करने वाली, पूर्णायु देने वाली और देवताओं के लिए कवच कही गई है तथा कवच की भाँति रक्षा करने वाली है। पापों को दूर करने वाली राष्ट्रों की रक्षा करने वाली अखण्डित पत्तों वाली दर्भ मणि सुख पहुँचाती है। मानसिक बल को बढ़ाने वाली अपनी सामर्थ्य से दूसरों को प्रभावित करने की शक्ति प्रदान करती है। [१]

६.जङ्गिड मणि–

यह मणि वनस्पति से उत्पन्न रोगों एवं कष्टों की निवारक मानी गई है। यह मणि हिंसक कृत्याओं को विनष्ट करने वाली है। शत्रुओं का विनाश करने वाली हैं। आयु बढ़ाने वाली, संस्कन्थ जैसे रोग नष्ट करने वाली सभी प्रकार के रोगों को नष्ट करने वाली, भय के मूल कारण असुरों का विनाश करने वाली खाँसी, पृष्ठ भाग के रोगों को यह मणि निसार करके नष्ट कर देती है। [२]

---

१. शतकाण्डो दुश्त्त्यवनः सहस्रपर्ण उत्तिरः। दर्भो या उग्र औषधिस्तं ते बध्नाम्यायुषे।।
अथर्व० सं०-१६.३२.१

नास्य केशान् प्रवपन्ति नीरसि ताडमाघ्नते।
यस्मा अच्धिन्नपर्णेन दर्भेण शर्म यच्छति।। तदेव- १६/३२/२
समत्नहा शतकाण्डः सहस्वानोषधीनां प्रथमः सं बभूव।
स नोऽयं दर्भः परि पातु विश्वतस्तेन साक्षीय पृतनाः पृतन्यतः। तदेव- १६/३२/१०
सहस्रार्धः शतकाण्डः पयस्वानपामग्निर्वीरूधां राजसूयम्।
स नीऽयं दर्भः परि पातु विश्वतो देवो मणिरायुषा सं सृजाति नः। तदेव- १६/३३/१
घृतादुल्लुप्तो मधुस्वान् भूमि.होऽच्युतश्व्यवीयष्णुः।
नुदन्त्सपत्नानधरांश्च कृष्वन् दर्भारोह महतामिन्द्रियेण।। तदेव-१६/३३/२,
दह दर्भ सपत्नान में दह मे पृतनायतः। दह में सर्वान् दुहोर्दो दह में द्विषती मणे।
तदेव-१६/२६/८

२. जङ्गिडोऽसि जङ्गिडी रक्षितासि जङ्गिडः। .त्याद्दषण एवायमथो अरातिद्वषणः।
तदेव -१६/३४/०१

अमीवाः सर्वाश्चपातयजहि रक्षां स्योषधे। आशरीकं विशरीकं बलासं पृष्टचामयम्।
तक्मानं विश्वशारदमरसां जङ्गिडस्करत्।। तदेव - १६/३४/०६-१०

यह मणि दिव्यलोक, अन्तरिक्ष पृथ्वी औषधियों भूतकाल में हो चुकी और भविष्यत् में होने वाली घटनाओं और उपदिशाओं से होने वाली सभी प्रकार के अनिष्टों से संरक्षण प्रदान करने वाली है। इससे यह सिद्ध होता है कि इस मणि को धारण करने से मनुष्य का जीवन मड्ग्गलमय रहता है।[1]

७. औदुम्बरमणि-

यह मणि सभी प्रकार की पुष्टि देने वाली तेजस्विता देने वाली, पशुओं और धन सम्पदा की वृद्धि करने वाली, देवसंज्ञक यह मणि शत्रुओं की संहारक तथा अभीष्ट धन-सम्पदा की प्रदात्री है। धन-धान्य और दुग्धादि वैभव प्रदान करने के लिए औदुम्बर मणि को धारण किया जाता है।[2]

८. फालमणि-

यह मणि खीदर फाल से उत्पन्न होने वाली होती है। इसको कुशल कारीगर द्वारा काटने एवं तक्षक (बढ़ई) हाथ में लेकर गढ़ने का वर्णन मिलता है इससे यह स्पष्ट होता है यह मणि किसी वृक्ष विशेष से प्राप्त होती है।

यह मणि घृत के समान पौष्टिक पदार्थों को देने वाली प्रचण्ड प्रचण्ड-प्रभावयुक्त नित्य प्रति बलबर्द्धक, उग्र, पराक्रम, प्रचण्ड पराक्रमवाली, ओजस वृद्धि, श्रवण शक्ति, दृष्टि शक्ति वर्द्धक, ऐश्वर्य प्रदान करने वाली, श्री सम्पदा-प्रदान करने वाली, वायु को गतिशील बनाने वाली, नित्यप्रति अधिक से अधिक सत्य ही प्रदान करने वाली, प्रतिदिन बार-बार विश्वसुख प्रदान करने वाली, शत्रुनाशक, शत्रुरहित, क्षात्रतेज को बढ़ाने वाली और असुर नाशक तथा विध्वंसक तत्वों का नाश करने वाली है। इस मणि को बृहस्पति देव ने बल-बुद्धि हेतु धारण किया। इसे अग्निदेव ने अपने शरीर पर बँधवाया था। इन्द्रदेव ने इसी मणि से ओज और वीर्य प्राप्त किया। सोमदेव ने महिमायुक्त श्रवणशक्ति और दृष्टि सामर्थ्य प्राप्ति हेतु धारण किया। सूर्य ने उसे बंधवा कर समस्त दिशाओं पर विजय प्राप्त की, चन्द्रदेव ने इस मणि को बाँध कर असुरों और दानवों के स्वर्णिम नगरों को अपने अधीन किया। वरुण देव नित्य प्रति इस मणि

---

१. परि मा दिवः परि मा पृथिव्याः पर्यन्तरिक्षात् परि मा वीरूद्भ्यः।
परि मा भूतात् परि मोत भव्याद् दिशोदिशो जड्गिडः पात्वस्मान्।। अथर्व० सं०-१६/३४/०४

२. औदुम्बरेण मणिना पुष्टिकामाय वेधसा।
पशुनां सर्वेषां स्फातिं गोष्ठे मे सविता करत्।। अथर्व० सं०- १६/३१/०१
अहं पशूनामधिपा असानि मयि पुष्टं पुष्टमतिर्दधातु।
मह्यमौदुम्बरो मणिर्द्रविणानि नि यच्छतु।। तदेव- १६/३१/०६
आ मे धनं सरस्वती पयस्फातिं च धान्यम्।
सिनीवाल्युपा वहादयं चौदुम्बरो मणिः।। तदेव- - १६/३१/१०
औदुम्बरः [illegible] सर्ववीरं नियच्छ
रायस्पोषाय प्रति मुञ्चे अहं त्वाम्। तदेव- - १६/३१/१२

को सत्य प्रदान करने के लिए धारण किया और देवताओं ने सम्पूर्ण लोकों पर विजय प्राप्ति के लिए इसे धारण किया।[1]

६. वरणमणि-

वरणमणि शत्रुजनित अनिष्टों का निवारण करने में सक्ष्म, अभीष्ट फलों की वर्षा करने वाली, उद्देश्य को आगे-आगे ले जाने वाली, शत्रु को मसल डालने एवं आने वशीभूत करने वाली देवतागण इसके प्रयोग में प्रतिदिन सहस्राक्ष के समान पराक्रमशली, दुखों को हरण करने वाली स्वर्णरूप है।[2] शत्रु का पतन करने में सक्षम चारों और से फैलाए गए अभिचार कृत्यों को दूर करने वाली, समस्त पाप कर्मों से पृथक् करने वाली, रोग रूपी शत्रु का निवारण करने वाली, अपशकुनों, दुःस्वप्नों, शकुनि पक्षी के कठोर शब्द और नाक फुरफुराने के दोषों से रक्षा करने वाली, शत्रुओं, पाप देवता अभिचार, प्रयोग मृत्यु के भयानक संहार और अन्य भय से सुरक्षित करती है।[2] यह दिव्यतायुक्त, वनस्पति विनिर्मित वरणमणि दीप्तिमान होती है।[3]

१. वर्म मह्यमयं मणिः फालाज्जातः करिष्ययति। अथर्व० सं० - १०/०६/०१
यमबध्नाद वृहस्पतिर्मणिं फालं तश्चुतमुग्रं खादिरमोजसे तमग्निः प्रत्यमुञ्चच सो अस्मै दुह आज्यं भूयोभुयः श्व श्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि। तदेव- - १०/०६/०६
यत त्वा शिववः परावधीत् तक्षा हस्तेन वास्या।
आपस्त्वा तस्माज्जीवलाः पुनन्तु शुचयः शुचिम्।। तदेव- - १०/०६/०३
यमबध्नाद् बृहस्पतिर्मणिं फालं घृतश्चुतमुग्रं खदिरमोजसे। तमिन्द्रः प्रत्यमुञ्चतोजसे वीयार्य कम।
सो अस्मै बलामिद् दुहे भूयोभूयः श्वश्वस्तेन त्वं द्विषतोजति। तदेव - - - - /७
यमवध्नाद वृहस्पतिर्मणिं फालं घृतश्चुतमुग्रं खदिरमोजसे। तं सोमः प्रत्यमुञ्चत महे श्रोत्राय चक्षसे।
यमबध्नाद ब्रहस्पतिर्मणिं फाल् धृतश्चुतमुग्रं खदिरमोजसे तं सूर्य प्रत्थमुञ्चत तेनेमा अजयद द्शिः।
तं विभ्रच्चन्द्रमा मणिमसुराणां पुरीऽजयद् दानवानां हिरव्ययीः यमबध्नाद् बृहस्पति वार्ताय मणिमाशवे -- - सो अस्मै वजिनं दुहे भूयो भूयः ।। अथर्व - १०/०६/०८-११

२. तमापी विभ्रतीर्मणि सदा द्यावन्त्यक्षिताः। तमिमं देवता मणिं प्रत्यमुञ्चत शंभुवम्।।
तं देवा बिभ्रतो मणिं सर्वाल्लोकान् युधाजयन्। तदेव - १०/०६/१४-१६
तमिमं देवता मणिं मह्यं ददतु पुष्टये। अभिभुं क्षत्रवर्धन सपत्नदम्भनं मणिम्। तदेव- १०/०६/२६

३. अयं मे वरणो मणिः सपत्नक्षयणो वृषा। तेना रभस्वत्वं शत्रून प्रमृ णीहि दुरस्यतः।।
प्रेणाञ्छृणीहि प्रमृणा रभस्व मणिस्ते अस्तु पुरष्ता पुरस्तात्।
अवारयन्त वरणेन देवा अभ्याचारमसुराणां श्वः श्वः।।
अयं मणिवरणो विश्वभेषजः सहस्राक्षो हरितो हिरण्ययः।
स ते शत्रूनधरान् पादयाति पूर्वस्तान् दभ्नुहि ये त्वा द्विषन्ति।।
अयं ते कृत्यां विततां पौरुषेयादयं भयात्। अयं त्वा सर्वस्मात् पापाद् वरणो वारयिष्यते।।
अयं ते कृत्यां विततां पौरुषेयादयं भयात्। अयं त्वा सर्वस्मात् पापाद् वरणो वारयिष्यते।।
स्वप्नं सुप्त्वा यदि पश्यासि पापं मृगः सृतिं यति धावादजुष्टाम्।
परिक्षवाछकुनेः पापवादादयं मणिर्वरणी वारयिष्यते।।
आरात्यास्त्वा निर्ऋत्या अभिचारादथो भयात्। मृत्योरोजीयसो वधाद् वरणो वारयिष्यते।।

अथर्व० - १०/०३/०१-०७

१०. शतवार मणि -

(सैकड़ों रोगों की निवारक) शतवार नामक औषधि (मणि) अपने प्रभाव से रोगों को विनष्ट करने वाली, कुत्सित नाम वाले त्वचा रोगों की निवारक, शरीर के विकारों को भस्मसात् करने वाली है।[१]

यह मणि अपने अग्रिम भाग से आसुरी वृत्तियों को दूर करती है। मूल भाग से यातना देने वाले रोगों को दूर करती है तथा मध्यभाग से समस्त रोगों का निवारण करती है। इसे कोई भी रोग (पाप) लाँघ नहीं सकता है। यक्ष्मादि असाध्य रोगों को समूल से नष्ट करने वाली, सैकड़ों रोगों का निवारण करने वाली, दुष्ट प्रवृत्तियों को नष्ट करने वाली है। यह मणि शक्तिशाली सभी रोगों को विनष्ट करके रोगाणुओं को दूर कर देती है। गन्धर्व अप्सरस नामक देवयोनि के सैकड़ों रोगों को तथा बार-बार पीड़ा पहुँचाने वाले असंख्य रोगों को दूर करने वाली यह मणि है। इस मणि का अगला भाग स्वर्ण की तरह चमकने वाला होता है और इसे धारण करने से सभी रोगों का निवारण होता है।[२]

---

१. शतावरो अनीनशद् यक्ष्मान् रक्षांसि तेजसा
आरोहन् वर्चसा सह मणिर्दुर्णामचातनः।। अथर्व० सं० - १९/३६/०१

२. शृङ्गाभ्यां रक्षो नुदते मूलेन यातुधान्यः।
मध्येन यक्ष्मं बाधते नैनं पाप्माति तत्रति।।
यक्ष्मासो अर्भका महान्तो ये च शब्दिनः।
सर्वान् दुर्णामहा मणिः शतावरो अनीनशत्।।
शतं वीरानजनयच्छतं यक्ष्मानपावपत्।
दुर्णाम्नः सर्वान् हत्वाव रक्षांसि धूनुते।।
हिरण्यशृङ्ग ऋषभः शतावरो अयं मणिः।
दुर्णाम्नः सर्वास्तृड्ढ्वाव रक्षांस्यक्रमीत्।
शतमहं दुर्णाम्नीनां गन्धर्वाप्सरसां शतम्।
शतं शश्वन्वतीनां शतवारेण वारये।। तदेव- - १९/३६/२१-२६

चतुर्थ अध्याय

रत्न परीक्षा विधि

४.१ गरुड पुराण के अनुसार-

रत्नों के विविध प्रकारों को वज्र (हीरा), मुक्तामणि, पद्मराग, मरकत, इन्द्रनील, वैदूर्य, पुष्पराग, कर्केतन इत्यादि नाम दिया गया है। विद्वज्जनों ने उनका यह नामकरण इनकी संग्रह योग्यता एवं गुणों की दृष्टि में रखकर किया है। अतः रत्न पारखी विद्वानों को सर्वप्रथम रत्नके आकार,वर्ण, गुण, दोष, फल, परीक्षा तथा मुल्य आदि का ज्ञान तत्सम्बन्धित सभी शास्त्रों के द्वारा विधिवत् प्राप्त करना चाहिए, क्योंकि कुत्सित लग्न या अनेक कुयोगों से बाधित अशुभ दिनों में जिन रत्नों की उत्पत्ति होती है वे सभी दोष पूर्ण होकर अपनी गुण क्षमता को नष्ट कर देते हैं। जैसा कि गरुड पुराण का कथन है ऐश्वर्य की इच्छा रखने वाले राजा को चाहिए कि वह परीक्षा से किए गए अत्यन्त शुद्ध रत्नों को धारण करे अथवा उनका संग्रह करे।[1]

जो रत्न शास्त्रों के ज्ञाता, कुशल रत्न संग्रही तथा परीक्षा कार्य में दक्ष होते हैं उन्हीं को रत्नों के मुल्य और मात्रा को जानने वाला कहा गया है। अतः रत्नों की परीक्षा इन्हीं रत्न शास्त्रकारों से करवानी चाहिए रत्नों में वज्र को ही महाप्रभावशाली कहा गया है इसीलिए सर्वप्रथम उसी की परीक्षा को बताया गया है।[2]

१- हीरक और उस की परीक्षाविधि-

१- गरुड पुराण में उत्तम हीरक का लक्षण एवं उस की परीक्षण विधि पर प्रकाश डालते हुए कहा गया है कि इस संसार में कहीं पर भी अत्यन्त क्षुद्रवर्ण, पार्श्वभागों में भली प्रकारसे परिलक्षित होने वाले रेखा बिन्दु कालिमा, काकपदक और त्रास दोष से रहित, परमाणु की भांति अत्यन्त लघु तथा तीक्ष्ण धार से युक्त जो भी वज्र अर्थात् हीरा दिखाई देता है, उसमें निश्चित ही देवता का वास होता है।[3]

१- वज्रमुक्ता तु मणयः सपद्मरागाः समरकताः प्रोक्ता।
अपि चेन्द्रनीलमणि वरवैदूर्य्याश्च पुष्परागाश्च।।
कर्केतनं सपुलकं रुधिराख्यसमन्वितं तथा स्फटिकम्। विद्रुममणिश्च यत्नादुद्दिष्टं संग्रहे तज्ज्ञैः।।
आकारवर्णा प्रथमं गुणदोषौ तत्फलं परीक्ष्यच। मूल्यंच रत्नकुशलैर्विज्ञेयं सर्वशास्त्राणाम्।।
कुललग्नेषूपजायन्ते यानि चोपहतेऽहनि। दोषैस्तानुपयुज्यन्ते हीयन्ते गुणसम्पदा।।
परीक्षापरिशुद्धानां रत्नानांपृथिवीभुजा। धारणंसंग्रहो वापि कार्य्यः श्रियमभीप्सता।। ग० पु० ६८/६-१३

२- शास्त्रज्ञाः कुशलाश्चापि रत्नभाजः परीक्षकाः। त एव मूल्यमात्राया वक्तारः परिकीत्तिता।।
महाप्रभावं विबुधैर्यस्माद्वज्रमुदाहृतम। वज्रपूर्वा परीक्षयं ततोऽस्माभिः प्रकीर्त्य ते।। तदेव- ६८/१४-१५

३- अत्यर्थं लघुवर्णतश्च गुणवत्पार्श्वेषु सम्यकसमं,। रेखाबिन्दु कलंककाकपदकत्रासादिभिर्विवर्जितम्।
लोकेऽस्मिन्परमाणुमात्रमपि यद्वज्रं क्वचिद्दृश्यते। तस्मिन्देवसमाश्रयोह्यवितथंतीक्ष्णाग्रधारं यदि।।
तदेव- ६८/१६

२- हीन हीरक की परीक्षण विधि-

अग्नि के समान स्फुटित, विशीर्ण शृंगभाग से युक्त, मलिन वर्ण वाले तथा मध्य में बिन्दुओं से चिह्न्ति हीरक को धारण करने पर इन्द्र भी श्रीहीन हो जाते हैं। ऐसे हीरे के संग्रह करने की लालसा नहीं करनी चाहिए। जिस हीरेका एक भाग अस्त्र शस्त्रादि से विदीर्ण क्षत विक्षत शरीर की आभा को प्राप्त हो तथा रक्त वर्ण से चित्रित हो तो वैसा हीरा इच्छा मृत्यु से सम्पन्न शक्तिशाली व्यक्ति को भी शीघ्र मृत्यु से रोक नहीं सकता है ऐसे हीरे को धारण नहीं करना चाहिए।[1]

३- दुर्लभ-हीरक की परीक्षण विधि-

जो हीरा षटकोण, विशुद्ध, निर्मल, तीक्ष्ण धार वाला लघु, सुन्दर पार्श्वभाग से युक्त औंर निर्दोष है तथा इन्द्रायुध वज्रके समान स्फुरित,अपनी प्रभा को विकीर्ण करने में समर्थ है तथा अंतरिक्ष भाग में स्थित इस प्रकार का हीरा पृथ्वी लोक में सुलभ नहीं है।[2]

४- परीक्षण प्रकार-

हीरे के कुशल विशेषज्ञ, लोह, पुष्पराग, गौमेद, वैदूर्य, स्फटिक एवं विविध प्रकार के काँचों से हीरक के प्रतिरूपों का निर्माण कर लेते हैं। अतः विद्वानों को कुशल परोक्षकों से उनकी परीक्षा करवा लेनी चाहिए। क्षार द्रव्य के द्वारा,उल्लेखन वि[illegible] से एवं शाण प्रयोग से हीरों का परीक्षण करना चाहिए। पृथ्वीमें जितने भी रत्न हैं अथवा लोहादिक जितनी अन्य धातुएं हैं, हीरा उन सब में चिह्नाङ्कन कर सकता है। किन्तु अन्य कोई भी रत्न या धातु हीरे में चिह्न करने में समर्थ नहीं है।[3]

१- स्फुटिताग्निविशीर्णश्रंग्रदेशं मलवर्णैः पृषतैर्व्यपेतमध्यम्।
न हि वज्रभृतोऽपि वज्रमाशु श्रियमन्याश्रयलासांनकुर्यात्।।
यस्यैकदेशः क्षतजावभासो यद्वा भवेल्लोहितवर्णचित्रम्।
न तत्र कुर्यार्याद् ह्रियमाणमाशु स्वच्छन्द मृत्योरपि जीवितान्तम्।। ग०पु०-६८/२८-२९

२- षटकोटिशुद्धममलं स्फुटतीक्ष्णधारं वर्णान्वितं लघु सुपार्श्वमपेतदोषम्।
इन्द्रायुधांशुविसृतिच्छुरितान्तरिक्षमेवंविधं भुवि भवेत्सुलभं न वज्रम्।।
तदेव- ६८- श्लो०-३१

३- अयसा पुष्परागेण तथा गोमेदकेन च।
वैदूर्यस्फटिकाभयांच काचैश्चापि पृथग्विधैः।।
प्रतिरूपाणि कुर्वन्ति वज्रस्य कुशला जनाः।
परीक्षा तेषु कर्त्तव्या विद्वादिभः सुपरीक्षकैः
क्षारेल्लेरवनशालाभिस्तेषां कार्य्यं परीक्षणम्।।
पृथिव्यां यानि रत्नानि ये चान्ये लोहधातवः।
सर्वाणि विलिखेद्वज्रं तच्च तैर्न विलिख्यते।। तदेव- ६८/३१,४४-४६

गुरुता समस्त रत्नों के महत्व का कारण है फिर भी रत्नशास्त्रज्ञ हीरे के विषय में इस निर्देश के विपरीत ही कहते हैं। पुष्परागादि जाति विशेष के रत्न दूसरी जाति के रत्न को काट सकते हैं। किन्तु हीरक एवं कुरूवृन्द अपनी ही जाति के रत्न को काट सकते हैं। हीरेसे ही हीरा कट सकता है, अन्य रत्नोंसे हीरे को काटा नहीं जा सकता है।[1]

स्वभाविक हीरे के अतिरिक्त हीरक तथा मुक्तादि जितने प्रकार के रत्न हैं। उनमें से किसी भी रत्न की प्रभा ऊर्ध्वगामिनी नहीं होती है। मात्र हीरा ही एक ऐसा रत्न है जिसकी प्रभा ऊपर की ओर जाती है।[2]

क. शुभ हीरे की परीक्षण विधि-

जो हीरा जल में तैर सके, अभेद्य हो, षटकोण हो, इन्द्रधनुष के समान निर्मल प्रभा से युक्त ही हल्का तथा सूर्य के समान तेजस्वी हो अथवा तोते के पंखों के समान वर्णवाला हो, स्निग्ध हों, कान्तिमान तथा विभक्त हो इस प्रकार के लक्षणों से युक्त हीरा श्रेष्ठ तथा शुभ माना जाता है।[3]

जो हीरा किसी वस्तु से न टूटे जो स्निग्ध एवं लघु हो और जल पर तैरता रहे तथा बिजली, अग्नि या इन्द्रधनुष के समान हो वह शुभ अथवा श्रेष्ठ माना गया है।[4]

ख. अशुभ हीरे की परीक्षण विधि-

जो हीरा काकपद के समान चिह्न वाला, मक्खी के समान चिह्न वाला, केश के समान रेखा रूप चिह्न वाला, धातुओं से युक्त, कंकड़ से विद्ध, लक्षण से दूना कोण वाला, आग से जला, मलिन, कान्तिहीन, जर्जर हीरा शुभदायी नहीं होता है।[5]

पानी के बुलबुले के समान आगे से फटा चिपटा और वासी फल के समान लम्बा हीरा शुभ देने वाला नहीं होता। इन दोष युक्त हीरों का मुल्य पूर्वोक्त मुल्य से अष्टमांश हो जाता है।[6]

१- गुरूता सर्वरत्नानां गौरवाधारकारणम् । वज्रे तां वैपरीत्येन सूरयः परिचक्षते ।।
जातिरजातिं विलिखन्ति वज्रकुरूविन्दाः। वज्रैर्वज्रं विलिखति नान्येन विलिख्यते वज्रम् ।।
ग० पु०- ६८- श्लो० ४७-४८

२- वज्राणि मुक्तामणयो येच केचन जातयः। न तेषां प्रत्लिद्धानां भा भवत्यूर्ध्वगामिनी ।।
तियूर्यक्षतत्वात्केषंचित्कथञ्चिद्यादि दृश्यते। तियूर्यगालिख्यमानानां स पार्श्वेषु विहन्यते ।।
तदेव - - - श्लो० ४९-५०

३- अम्भस्तरति यद्वज्रमभेद्यं विमलं च यत्। षटकोणं शक्रचापाभं लघु चार्कनिभं शुभम् ।।
अ० पु०, २४६/ ६

४- सर्वद्रव्याभेद्यं लघ्वभसि तरति रश्मिवत् स्निग्धम्। तडिदनलशक्रचापोपमं च वज्रं हितायोक्तम् ।।
बृ० स०- ८०/ १४

५- काकपदमक्षिकाकेशधातुयुक्तानि शर्करैर्विद्धम्। द्विगुणाश्रि दग्ध क्लुष त्रस्तविशीर्णानि न शुभानि ।।
तदेव- - ८०/१५

६- यानि च बदबुददलिताग्रचिपिटवासी फलप्रदीर्घाणि। सर्वेषां चैतेषां मूल्यादृभागोऽष्मो हानिः।। तदेव- श्लो० १६

६- उत्तम हीरे की परीक्षण विधि-

जो हीरा मोटा, वजनी, धन की चोट सहने वाला, समकोण पानी से भरे पीतल के वर्तन में उसके हिलाने से लकीरें डाल देने वाला, चर्खे में लगे तकवे की तरह घूमने वाला और चमकदार हीरा उत्तम कोटि का होता है।[१]

२- हीरे की परीक्षण विधि के अन्य उपाय-

१- सूर्य प्रकाश का हीरे पर विचित्र प्रभाव पड़ता है। यदि हीरेको कुछ समय तक सूर्यताप में रखकर फिर उसे अंधेरे कमरे में लाया जाए तो उस से सातों रंगों की किरणें प्रस्फुटित होने लगती हैं। स्वच्छ श्वेत रंग के अलावा रंगदार हीरों पर सूर्य का ऐसा प्रभाव पड़ता है कि कभी-कभी उनका रंग गायब हो जाता है।[२]

२- हीरे को पहचांनने का सुगम उपाय उसकी कठोरता है। इस का विशिष्ट गुरुत्व ३०५२ है। उष्णता से इसका प्रसार बहुत कम हो जाता है। अत्यन्त शीतल जल में से निकाल कर यदि अत्यन्त उष्ण जलमें रखा जाए तो इसका परिमाण १.० से १.०००० हो जाता है। इसका सब से अधिक धनत्व ४२.३ होता है और इसके नीचे यह फैलने लगता है।[३]

३- हीरे के द्वारा समस्त जवाहरात नीलम आदि रत्न काटे जा सकते हैं। हीरा स्वयं किसी रत्नसे खरोचा नहीं जा सकता है। हीरेसे काँच किसी भी आकृति में काटा जा सकता है।[४]

कृत्रिम तथा अकृत्रिम में भेद

अकृत्रिम हीरे से कृत्रिम हीरा अंकित होता है। असली हीरा कुरुविन्द अथवा हीरे से ही अंकित होता है। दूसरा किसी भी वस्तु से नहीं। जो हीरा क्षार लगने से चूर्ण और घिसने से क्षय को प्राप्त हो जाए वही कृत्रिम है। क्षारयुक्त अम्ल हीरक पर लेप कर सुखाने पर यदि उसका रंग बदल जाए तो उसे कृत्रिम हीरा ही जानना चाहिए। जो असली हीरा होता है वह अपना रंग कदापि नहीं छोड़ता है और वह अधिक साफ हो जाता है।

१- स्थूलं स्निग्धं गुरु प्रहारसहं समकोटिकं भाजनलेखि
तुर्कभ्रामि भ्राजिष्णु च प्रशस्तम्। अ० शा०, ११/ ४

२- द्रष्टव्य र० वि०, पृ०- २३

३- द्रष्टव्य तदेव - पृ०- २४

४- द्रष्टव्य तदेव - पृ०- २४

३- हीरे की वैज्ञानिक परीक्षण विधि-

वैज्ञानिकों ने असली और नकली हीरे एवं उत्तम तथा निकृष्ट श्रेणी के हीरों का परीक्षण तथा उसके रंग रूप की पहचान के लिए नवीनतम वैज्ञानिक यंत्रों द्वारा परीक्षण बताए हैं-

१-डायमण्डोस्कोप- इस वैज्ञानिक यंत्र के द्वारा हीरों के दाग रंग-रूप तथा उनकी कटाई- छँटाई के विषय का परिज्ञान होता है।

२- कलरमीटर- विशेषताः इस यंत्रके द्वारा हीरेके रंग का ज्ञान होता है। पुराने कलरमीटर से केवल हीरे के ७ ही रंगों का विवेचन किया जाता था, पंरतु नवीन कलरमीटर से हीरे के १३ प्रकार के रंगों का परिज्ञान हो जाता है।

३- डायमोलाइट- इस यंत्र द्वारा मास्टर स्टोन के साथ हीरेके रंग और चमक का मिलान किया जाता है। इस यंत्र के द्वारा हीरे पर प्रकाश डालकर भीतरी रंगों का अध्ययन किया जाता है।[1]

२- मुक्ता की परीक्षण विधि-

१- मुक्ताशास्त्रियों का मत है कि मुक्ताओं में मात्र एक ही ऐसी मुक्ता होती है, जिनको रत्न पद पर अधिष्ठित किया जा सकता है। वह शुक्ति से उत्पन्न होने वाली मुक्ता है। यह सुचिकादि यन्त्रों से वेध्य होती है। शेष मुक्ताएँ अवेध्य होती हैं।[2]

२- सिंहल देश के कुशलजनों का मानना है कि जो मुक्ता श्वेत काँच के समान हो, स्वर्ण जटित हो तथा रत्न शस्त्रज्ञ के अनुसार सुपरीक्षित होने के कारण कष्ट का निवारण करने वाली हो ऐसे रस विशेष में शोधित मुक्ता शरीर का अंलकार होती है।[3]

१- स्वभाविक मुक्ता की परीक्षण विधि-

यदि किसी मुक्ताके कृत्रिम होने का संन्देह हो तो उसको लवणमिश्रित, उष्ण, स्नेह द्रव्य में एक रात रख कर सूखे वस्त्र में वेष्टित करके यथा योग्य धान्य के साथ उसका मर्दन करें। ऐसा करने से यदि उसमें विवर्ण भाव नहीं आता है तो उसको स्वभाविक मुक्ता ही मानना चाहिए।[4]

१- द्रष्टव्य रत्न वि०, पृ०- २७

२- तत्रैव चैकस्य हि मूलमात्रा निविश्यते रत्नपरस्य जातु।
वेध्यन्तु शुक्त्थुद्भवमेव तेषां शेषाव्यवेध्यानि वदन्ति तज्ज्ञाः।। ग० पु०, ६९/२

३- श्वेतकाचसमं तारं हेमांशशतयोजितम्। रसमध्ये प्रधार्य्येत मौक्तिकं देहभूषणम्
एवं हि सिंहले देशे कुर्वन्ति कुशला जनाः।। तदेव- ६९/ ३८

४- यस्मिन्कृत्रिमसन्देहः क्वचिद्भवति मौक्तिके। उष्णे सलवणे स्नेहे निशां तद्वासयेज्जले।।

ब्रीहिभिर्मदनीयं वा शुष्कवस्त्रोपवेष्टितम्। यत्तु नायाति वैवर्ण्यं विज्ञेयं तदकृत्रिमम्।।
तदेव- ६९/ ३९-४०

२- उत्तम मुक्ता की परीक्षण विधि-

जो मुक्ता मोटा, गोल तलरहित, दीप्ति वाला, श्वेत वजनी, चिकना और स्थान पर विधा हुआ मोती ही उत्तम कोटि का होता है।[1]

१- मोतियों को चावलों के छिलकों में रगड़कर उन्हें गोमूत्र से प्रक्षालन करने पर यदि उनमें कोई भी विकृति उत्पन्न नहीं होती है तो वे उत्तम कोटि के मोती कहलाते हैं।[2]

२- असली मोती दाँतसे सरलता पूर्वक टूट जाता है। कृत्रिम मोती को आसानी से तोड़ा नहीं जा सकता है।[3]

कृत्रिम - अकृत्रिम परीक्षण-

१- मुक्ता के विषय में यदि सन्देह हो कि नकली है तो नमक और क्षरयुक्त गोमूत्र के बरतन में उसे रख छोड़ कर उसे आग से तपाना चाहिए। उसके उपरान्त सूखे कपड़े मे लपेट कर उसे धान से रगड़ना चाहिए। अगर मुक्ता नकली होगी तो टूट जाएगी नहीं तो उसकी कान्ति और भी उज्जवल हो जाएगी।[4]

२- नमक और छागमूत्र या गोमूत्र से भरे बरतन में मुक्ता को रख छोड़ने और उसके बाद धान की भूसी से मलने पर उसका रंग न बिगड़े तो उसे असली मुक्ता ही समझना चाहिए। नमक मिले हुए तेल या घी को गरम कर उसमें रख छोड़ने पर रात भर जल में रखने पर यदि उसका रंग वैसा ही रहे तो उसको असली मुक्ता समझना चाहिए।[5]

३- मुक्ता की वैज्ञानिक परीक्षण विधि-

यदि असली मोती को गन्धकाम्ल (sulphuric acid) में थोड़ी देर डूबो दिया जाए तो उस मोती की कान्ति नष्ट हो जाती हैं जबकि कृत्रिम मोतियों का गन्धकाम्ल पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।[6]

१- अ० शा०- ११/१, २- र० वि०, पृ०-८६

३- वर्णाधिक्यं गुरुत्वंच स्निग्धता समताच्छता। अर्चिष्मता महत्ता च मणीनां गुणसंग्रहः।।
ये कर्करच्छिद्रमलोपदिग्धाः प्रभाविमुक्ताः परूषा विवर्णाः। ग० पु० ७०/१७-१८

४. आवृत्त पिडकोपीतं सर्व्वसम्पत्ति-हारकम। यस्मिन् कृत्रिमसन्देहः क्वचिद्भवति मौक्तिके।
उष्णे सलवणे स्नेहे निशां तद्वासयेज्जले। व्रीहिभिर्मर्दनीयं वा शुष्कवस्त्रोपवेष्टितम्।।
यत्तु-नायाति वैवर्ण्यं विज्ञेयं तद.त्रिमम्। क्षिपेद्गोमूत्रभाण्डे तु लवण- क्षारसंयुते।।
स्वेदयेद्वह्निना वापि शुष्कवस्त्रेण वेष्टयेत। हस्ते मौक्तिकमादाय व्रीहिभिश्चोपघार्षयेत्।।
कृत्रिमं भङ्गमाप्नोति सहजन्चाति दीप्यते। कृत्वा पचेत सुपिहित्ते शुभदार भाण्डे, ।।
मुक्ताफलं निहित नूतनशुक्ति-काण्डम्। स्फोटन्तथा प्रणिदधीत ततश्च भाण्डात्; ।।
संस्थाप्य धान्यनिचये च तमेकमासम्। आदाय तत्सफलमेव ततोऽन्न भाण्डम्।।
जम्बीरजातरस-योजनया विपक्वम्। धृष्टं ततो मृदु तनू.तपिण्डमूलैः।।
कुय्याद् यथेत्त्छमिह मौक्तिकमाशुविद्धम्। मृल्लिप्तमत्स्य पुटमध्यगतन्तु.त्वा, ।।
पश्चात् पवेत्तनु ततश्च वितानपत्या, । दुग्धे ततः पयसि तद्विपचेत् सुधायाम्।।
पक्वं ततोऽपि पयसा शुचिचिकणेन्। शुद्धं ततो विमलवस्त्र-विघर्षणान्।।
स्यान्मौक्तिकं विमलसद्गुणकान्तियुक्तम्। मुक्ति० श्लो० ३२-३५, पृ०-११६-११७

५. तदेवहिभवेद्वेध्यमवेध्यानीतराणितु। कुर्वंतिकृत्रिमंतद्वत्सिंहलद्वीपवासिनः।। शु०- ४/७५-७७

३. पन्ना परीक्षण विधि-

कृत्रिम-अकृत्रिम- पन्ना कृत्रिम है या अकृत्रिम इसकी यदि परीक्षा करनी हो तो से पत्थर पर घिसना चाहिए। घिसने से कृत्रिम पन्ना टूट जाएगा, लेकिन जो अकृत्रिम न्ना है पह कितना ही क्यों न घिसा जाए वह कभी नहीं टूटता है। तीक्ष्णाग्र लौहश्लाका रा मारकर चूर्ण करके लेपन करने से अ.त्रिम पन्ने का निर्णय किया जा सकता है।[1]

नकली पन्ना हाथ में रखने पर भारी प्रतीत होता है और असली पन्ना हलका, मुलायम और चित्ताकर्षक होता है। नकली पन्ने को लकड़ी पर रगड़ा जाए तो इसकी चमक बढ़ जाती है। पानी की बूंद पन्ने पर रखने से यदि वह फैल जाती है तो वह नकली होगा, यदि नहीं फैलती तो वह असली पन्ना कहा जाएगा। नकली पन्ने की टूट कर चमकीली धारियाँ होती हैं तथा कठोरता भी कम होती है।[2]

४. पद्मराग परीक्षण-

१- **श्रेष्ठ तथा उत्तम पद्मराग की परीक्षण विधि-** श्रेष्ठ पद्मराग मणियों में वर्णाधिक्य गुरुता, स्निग्धता, समता निर्मलता, पारदर्शिता, तेजास्विता एवं महत्ता जैसे गुण पाए जाते हैं। जिन मणियों में कर्कराह, छिद्र, मल, प्रभाहीनता, परूषता तथा वर्ण विहीनता होती है, वे सभी जातीय गुणों के रहने पर प्रशस्त नहीं मानी जाती हैं।[3]

जो पद्मराग ताम्रिका (गुंजा) के वर्ण को धारण करता है। तुष (बहेड़ा) के समान मध्य में पूर्णता से युक्त (गोलाकार) होता है तथा स्नेह से प्रदिग्ध (स्वभावतः स्नेहिल) होता है और अत्यन्त घिसने के कारण कान्तिविहीन हो जाता है, मस्तक-संघर्षण अथवा हाथों की अँगुलियों के स्पर्श से जिसके पार्श्व भाग काले हो जाते हैं हाथ में लेकर बार-बार ऊपर की ओर उछालने पर जो मणि प्रत्येक बार एक ही वर्ण को धारण करती है वह सभी गुणों में श्रेष्ठ तथा उत्तम होती है । जो पद्मराग अरुणिमा से युक्त तथा अत्यन्त निर्मल होते हैं वे पद्मराग उत्तम कहे जाते हैं।[4]

१. कृत्रिमत्वं सहजत्वं दृश्यते सुरिभिः क्वचित्। धर्षयते प्रस्तरे व्यङ्ग काचस्तसनाद्विपद्यते।।
लेखयेल्लौभृङ्गेण चूर्णेनाथ विलेपयेत सहजः कान्मिाप्नोति कृत्रिमो मलिनायते।।
भल्लातः (कः) पुत्रिका काचस्तद्वर्णमनुयोगतः। मणेर्मरकतस्यैते लक्षणीया विजातयः।।
क्षैभेण वाससा धृष्टा दीप्तिं व्यजति पुत्रिका। लाघवेनैव काचस्य शक्या कर्त्तु विभावना।।
युक्ति० श्लो० - ६३-६४

२. र० परि० - पृ० - १०७

३- श्री पूर्णकं दीप्तिविनाकृतत्वाद्विजाति लिंगाश्रय एवं भेदः।
यस्ताम्रिकां पुष्यति पद्मरागो योगात्तुषाणामिव पूर्णमध्यः।।
स्नेहप्रदिग्धः प्रतिभाति यश्च यो वा प्रधृष्टः प्रजहाति दीप्तिम्।
आक्रान्तमूर्द्धा च प्रति तथांगुलिभ्यां यः कालिकां पार्श्वगतां बिभर्ति।।
संप्राप्य चोत्क्षित्य यथानुवृत्ति बिभर्त्तियः सर्वगुणानतीव। ग० पु०, ७०/२३,२४,२५

४- द्रष्टव्य अ० पु० अ० २४६, श्लो०-११-१२

पद्मराग परीक्षण की अन्य विधियाँ-

१- जिस पद्मराग को प्रातः काल सूर्य के सामने रखते ही उसमें से लाल रंग की किरणें चारों तरफ बिखरने लगती हो वह माणिक्य उत्तम गुणों वाला समझा जाता है।[1]

२- सौ गुने दूधमें माणिक डालते ही यदि दूध लाल दिखाई देने लगजाता हो अथवा लाल- लाल किरणें दिखाई देने लगती हों तो वह उत्तम माणिक कहलाता है।[2]

३- महाघोर अन्धकार में माणिक को रखते ही यदि सूर्यकी आभा के समान प्रकाशित होता हो तो उसे श्रेष्ठ माणिक समझना चाहिए।[3]

४- कमल की पंखड़ियों में रखने से यदि माणिक उसी समय प्रकाशित हो तो उसे श्रेष्ठ समझना चाहिए। ऐसा माणिक देवताओं को भी दुर्लभ है। ऐसा माणिक सम्पूर्ण कष्टों की दूर करता है और सम्पूर्ण सम्पत्ति को देने वाला होता है।[4]

५- प्रातः काल में सूर्य के सामने एक दर्पण पर माणिंक को रखने से यदि दर्पण नीचे की तरफ छाया भाग में भी किरणें दिखाई दे तो वह उत्तम माणिक कहलाता है।[5]

६- यदि माणिक को पत्थर पर घिसे पत्थर घिसजाए पंरतु माणिक न घिसे और उसका वजन भी न घटे एवं घिसने से उसकी शोभा बन जाए तो उस माणिक को शुद्ध जाति वाला समझना चाहिए।[6]

२- पद्मराग का वैज्ञानिक परीक्षण-

यदि किसी भी पद्मराग के कृत्रिम होने का सन्देह हो तो उसे बर्फ के टुकड़े के पास रखकर उसकी ध्वनि द्वारा उसका परीक्षण किया जा सकता है यदि ध्वनि हुई तो वह असली पद्मराग होगा अन्यथा नकली।[7]

१- बालार्ककरसंस्पर्शाद्यः शिखां लोहितां वमेत्।
रंचभेदाश्रयं वापि स महागुण उच्यते।। र० वि०, पृ०- १६६

२- दुग्धे शतगुणे क्षिप्तो रंजयेद्यः समन्ततः।
वमेच्छिखां लोहितां वा पद्मरागः स उत्तमः।। तदेव- " " "

३- अन्धकारे महाघोरे यो न्यस्तः सन्महामणिः।
प्रकाशयति सूर्याभः सश्रेष्ठः पद्मरागकः।। तदेव- " " "

४- पद्मकोशेषु यो न्यस्तः प्रकाशयति तत्क्षणात्।
पद्मरागकरो ह्येष देवानामपि दुर्लभः ।। तदेव- " " "

५- सर्वारिष्टप्रशमनं सर्वसम्पत्तिदायकः।
बालार्कभिमुखं कृत्वा दर्पणे धारयेन्मणिम्।। तदेव- " " "

६- तत्र कान्तिविभागेन छायाभागं विनिर्दिशेत्।
अप्रणश्यति सन्देहे शिलायां परिघर्षयेत्।। तदेव- पृ०- - - -

७- द्रष्टव्य- र० वि०, पृ०- १६७-१६८

५. मरकत मणि परीक्षण-

श्रेष्ठ मरकतमणि की परीक्षण विधि-

जो मणि अत्यन्त हरित वर्ण वाली, कोमल, कान्तिवाली, जटिल, मध्यभाग में सुवर्ण-चूर्ण से परिपूर्ण दिखाई देती है तथा जो अपने स्थान विशेष के गुणों से समन्वित, समान कान्ति वाली उत्तम तथा सूर्य की किरणों के स्पर्श से अपनी प्रभा के द्वारा सभी स्थानों को आलोकित करती है तथा हरितभाव को छोड़कर जिसके मध्य भाग में एक समुज्जवल कान्ति विद्यमान रहती है और जो अपनी नवनवौदित प्रभाराशि से नवीन निकले हुए हरित तृण की कान्ति को तिरस्कृत करती है और जो देखने मात्र से ही लोगोंके मन को अत्याधिक आहलादित करने में समर्थ होती है ऐसी मरकत मणि श्रेष्ठ तथा गुणवती मानी जाती है।[1] जो मरकत मणि सुवर्ण चूर्ण के समान सूक्ष्म बिन्दुओं से विभूषित होती हो वह श्रेष्ठ बताई गई है।[2]

जो पन्ना हरे रंग का भारी, चिकनापन लिए हुए, उज्जवल किरणावलि युक्त, सुचिक्कण एवं पारभासक-इस प्रकार के सात गुणों वाला हो तो उसे उत्तम प्रकार का पन्ना कहा जाता है। बिन्दुमय हरे रंग का अथवा अन्य रंगों का भी पन्ना होता है। बिन्दुमय हरे रंग का पन्ना सर्वोत्तम होता है।[3]

मरकत मणि का वैज्ञानिक परीक्षण-

१- श्री वोहलर, हीमिस्टर एवं ग्रेवाइल विलियम्स आदि वैज्ञानिकों ने यह सिद्धकर दिया है कि पन्ने को अत्यधिक उष्णता प्रदान करने से वह अपने प्राकृतिक हरितमा रंग का परित्याग नही करता है।

२- पन्ना परीक्षक यंत्र द्वारा (Emerald Tester) द्वारा पन्ने का परीक्षण करने से प्राकृतिक पन्ने का रंग हरीतिमा के स्थान पर अरूणिमा मय (लाल) दिखाई देता है।[4]

१- अत्यन्त हरितवर्णं कोमलमर्चिर्विभेदजटिलंच। कांचनचूर्णस्याऽन्तः पूर्णमिव लक्ष्यते यच्च।।
युक्तं संस्थानगुणैः समरागं गौरवेण। सवितुः करसंस्पर्शच्छुरयति सर्वाश्रमं दीप्तया।।
हित्वा च हरितभावं यस्यान्तर्विनिहिता भवेद्दीप्तिः। अचिरप्रभाप्रभाहतशद्वलसमन्विता भाति।।
यच्च मनसः प्रसादं विदधाति निरीक्षितमतिमात्रम्।
तन्मरकतं महागुणमिति रत्नविदां मनोवृत्तिः।। ग० पु०- ७२/१२-१५

२- शुकपक्ष निभः स्निग्धः कान्तिमान्विमलस्तथा।
स्वर्णचूर्णनिभैः सूक्ष्मैमरकतश्च बिन्दुभिः।। अ० पु०-२४६/ १०

३- हरिवर्णं गुरुस्निग्धं स्फुरद्रश्मिचयं शुभम्।
मसृणं भासुरं तार्क्ष्यं गात्रं सप्तगुणं मतम्।। र०-वि, पृ०-१८६

४- द्रष्टव्य र० वि, पृ०- १८६

६. इन्द्रनील परीक्षण-

१- श्रेष्ठ तथा उत्तम इन्द्रनील की परीक्षण विधि-

सौगुणा अधिक परिमाण वाले दूध में रखने पर भी जिसकी सान्द्रय वर्ण की कान्ति से वह दूध स्वयं नीलवर्ण का हो जाता है, उसी को महानील मणि कहते हैं।[1]

जो इन्द्रनील दुग्ध में रखने पर अत्यधिक प्रकाशित एवं सुशोभित होता है, वह उत्तम इन्द्रनील होता है।[2] जिस इन्द्रनील (नीलम) में अन्य वस्तु का प्रतिबिम्ब न बन सके भारी स्निग्ध स्वच्छ, पिण्डा कृति मृदु एवं दीप्तियुक्त हो तो ऐसे सात लक्षणों से युक्त नीलम श्रेष्ठ समझा जाता है।[3]

क. श्रेष्ठ वैदूर्य की परीक्षणविधि-

पृथ्वी पर पद्मरागमणियों के जो वर्ण है, उन सभी वर्णों की शोभा का अनुगमन वैदूर्यमणि करती है। उन मणियों में जो मणि मयूर कण्ठके सदृश अथवा वंश पत्र के समान वर्णवाली होती है, उस को श्रेष्ठ माना गाया है। जिन मणियों का वर्ण चषक नामक पक्षीके सदृश होता है, उन वैदूर्यमणियों को मणिशास्त्रवेत्ताओं ने प्रशस्त नहीं कहा है।[4] अग्निपुराण में नील एवं रक्त आभावाला वैदूर्य श्रेष्ठ माना गया है। नील एवं रक्त आभावाले वैदूर्य कों हाथ में पिरोने योग्य बताया गया है।[5]

२- उत्कृष्ट वैदूर्यकी परीक्षण विधि-

ग्रीष्म ऋतु और वर्षा ऋतु के पूर्व आकाश में काले, पीले और नीले चमकदार बादल जितने सुन्दर दिखाई देते हैं ठीक इसी प्रकार के वर्ण का वैदूर्य विविध रूप रंग का आभासित होता है। पद्मराग (माणिक्य- Ruby) जिस प्रकार अनेक वर्णों का होता है उसी प्रकार वैदूर्य भी अनेक वर्णोंसे युक्त पाए जाते हैं। सफेदी लिये हुए काले धुएं (Gray) रंगका किंचित् कृष्णाभा लिए हुए वर्ण का वैदूर्य रत्नशास्त्रज्ञों ने उत्कृष्ट माना है।[6]

१- यस्य वर्णस्य भूयस्त्वात्क्षीरे शतगुणे स्थितः।
नीलतां तन्नयेत्सर्वं महानीलः स उच्यते।। ग० पु०- ७१/१८

२- इन्द्रनीलं शुभं खीरे राजते भ्राजतेऽधिकम्।। अ० पु०- २४६/१४

३- एकच्छायं गुरूस्निग्धं स्वच्छोपण्डितविग्रहम्।
मृदुमध्ये लसज्जयोतिः सप्तधा नीलमुक्तमम्।। र० वि०, पृ० १८४,

४- पद्मरागमुपादाय मणिवर्णा हि ये क्षितौ, सर्वोस्तान्वर्णशोभाभिर्वैदूर्य्य मनुगच्छति।।
तेषां प्रधानं शिखिकण्ठनीलं यद्वा भवेद्वेणुदलप्रकाशम्।
चाषाग्रपक्षप्रतिमश्रियो ये न ते प्रशस्ता मणिशास्त्रविद्भिः।। ग० पु०- ७३/६-७

५- नीलरक्तं तु वैदूर्यं श्रेष्ठं हारादिकं भजेत्। अ० पु०- २४६/१५

६- प्रावृट्र पयोद-वरदर्शित-चारूरूपा, वैदूर्यरत्नमणयो विविधावभासाः ।
पद्मरागमुपादाय मणिवर्णा हि ये क्षितौ। सर्वांस्तान् वर्णशैभाभिवैदूर्यमनुगचछति।।
सितंच धूम्र संकाशमीषत्कृष्णनिभम्भवेत् वैदूर्यं नाम तद्रत्नं रत्नविद्भिरुदाहृतम्।।
र० वि०, पृ०- २०२-२०३

७. वैदूर्य परीक्षण विधिः-

कसौटी पर घिसने से जिस वैदूर्य की छाया और स्वच्छता परिस्फुट होती है वही वैदूर्य उत्तम है। वैदूर्य कई तरह के होने पर भी मयूर कंठ के रंग की तरह का और बाँस के पत्ते के रंग का वैदूर्य प्रधान या उत्कृष्ट है।[1]

जिसका वर्ण या वाणीकण्ठ पक्षी के पक्षाग्र भाग की तरह है, उस वैदूर्य मणि के धारण करने वाले को और उसको वह भाग्यशाली बनाती है। यदि कोई वैदूर्य दोषपूर्ण है तो वह दोषों को ही बुलाएगा। मिरिकांच, शिशुपालकांच और स्फटिक आदि कितनी ही मणि वैदूर्य मणि की तरह जमीन में विद्यमान हैं। इनका आकार वैदूर्य मणि की तरह होने पर परीक्षा में वैसा नहीं है। अतएव यह सब मणि वैदूर्य से इतर जाति की है।

लिख्याभाव अर्थात् प्रमाण की क्षुद्रता हेतु कांच, वजन में हलका होने की वजह शिशुपाल, दीप्तिहीनता प्रयुक्त गिरिकांच रंग की उज्जवलता रहने से स्फटिक विजातीय वैदूर्य कई तरह के होते हैं। अन्यान्य मणि की तरह वैदूर्य मणि भी विजातीय है। समस्त विजातीय मणि की सजातीय मणि के समान वर्णयुक्त होती है। स्नेह, प्रभेद अर्थात् लावण्य की त्रुटि, लघुता, मृदुत्व यह सब प्रधान चिन्ह हैं।[2]

८. श्रेष्ठ पुखराज की परीक्षण विधि-

जो पुखराज हाथ में लेने से भारी प्रतीत हो, स्पर्श करने पर सुचिक्कण, स्थूल, समता, पीले लिये हुए रंग कनेर के रंग के समान अथवा अमलतास के फूल के रंग जैसा पीताभा वर्ण हो-इन आठ गुणों से युक्त पुखराज श्रेष्ट होता है।[3]

उत्कृष्ट तथा निकृष्टश्रेणी के पुखराज की परीक्षण विधि-

जो पुखराज गोबर में भलीभंति रगड़ने से उसका रंग मटमैला न होकर और भी विशेष समुज्जवल हो उठे तो समझना चाहिए कि यह पुखराज उत्कृष्ट श्रेणी का है।

---

१. हि० वि० - पृ० - २८४

२. गिरिकाच- शिशुपालौ काच- स्फटिकाश्च भूमिनिर्भिन्नाः।
वैदूर्य- मणेरेते विजातयः सान्निभाः सन्ति।।
लिख्याभावात् काचं लघुभावच्छैशुपालकम्बिद्यात्।
गिरिकाचमदीप्तित्वात् स्फटिकं वर्णोज्जवलत्वेन।।
जात्यस्य वर्णस्य मणेर्नजातु विजातयः सन्ति समानवर्णाः।
तथापि नानाकरणार्थमेवं भेदप्रकारः परमः प्रदिष्टः।।
सुखोपलक्ष्यश्च सदा विचार्य्यो ह्ययं प्रभेदो विदुषा नरेण।
स्नेह-प्रभेदो लघुता मृदुत्वं विजाति- लिङ्ग खलु सर्वजन्यम्।।
युक्ति०-८७-९०, पृ०- १२२-१२३

३- पुष्परागं गुरुस्निग्धं स्वच्छं स्थूलं समं मृदुः।
कर्णिकार प्रसूनाभं [illegible] ।। तदेव- पृ०-२१०

यदि पुखराज तेजहीन, खुरदरा, रुक्ष, पीलेपन के साथ कुछ कालापन लिये हुए विषमाकार हो तो ऐसा पुखराज निकृष्ट माना जाता है।[1]

उत्तम श्रेणीके पुखराज श्वेताभा लिए हुए कुछ पीतवर्ण के होते हैं। पीतवर्ण पुखराज को यदि कुछ आँच दिखाई जाए तो वह अपना रंग बदल देते हैं।[2]

कृत्रिम-अकृत्रिम-

कुछ पुखराज देखने में असली पुखराज से लगते हैं असली पुखराज को पहचानने के लिए सफेद कण्डे पर रखकर धूप में रखने पर पीली झाई सी दिखाई पड़ती है। चौबीस घंटे तक दूध में रखने के बाद असली पुखराज की चमक क्षीण नहीं होती। ज़हरीले जानवर द्वारा काटे गए स्थान पर असली पुखराज को लगाने से वह उसके विष को खींच लेता है। लोहित होती हैं अथवा गुंजाफल या जपा पुष्प की आभा को धारण करती हैं, उन्हें श्रेष्ठ माना गया है।[3]

१०. उत्तम प्रवाल की परीक्षण विधि-

प्रवाल पके कुन्दरु के समान रक्तवर्णाभायुक्त गोल, लम्बे और वक्रता रहित, स्निग्ध, छिद्ररहित, मोटे सुदृढ़ उत्तम श्रेणी के होते हैं।

जो प्रवाल श्वेतपीत मिश्रवाला, धूसर-श्वेत, कृष्ण मिश्र वर्णवाला, रुखा ओर सछिद्र, कोटर या खात युक्त, श्वेत, हलका और पतला होता है वह निकृष्ट श्रेणी का होता है। ऐसे प्रवाल को औषध प्रयोग में एवं ग्रह निवृत्ति के कार्य में नहीं लाना चाहिए।[4]

१- निकषोपलसंघृष्टं वर्ण पुष्णाति यन्निजम्।
पुष्पराजन्तु तज्जात्यं मतं रत्नपरीक्षकैः।।
निष्प्रभं कर्कशं रूक्षं पीतं श्यामं नतोन्नतम्।
कपिशं कपिलं पाण्डु पुष्परागं परित्यजेत्।। र० वि०, पृ०- २६०

२- द्रष्टव्य- र० वि०- पृ०- २६०

३- तत्र प्रधानं शशलोंहिताभं गुंजाजवापुष्पनिभं प्रदिष्टम्। ग० पु०- ८०/२

४- पक्वविम्बफलच्छायं वृत्तायतमवक्रकम्।
स्निग्धमव्रणकं स्थूलं प्रवालं सप्तधा मतम्।
पाण्डुरं धूसरं रुक्षं सव्रणं कोटरान्वितम्।
निर्भारं शुभ्रवर्णं च प्रवालं नेष्यतेऽष्टधा।।
आरंगं च जलाक्रान्तिं वक्रं सूक्ष्मं सकोटरम्।
रुक्षं कृष्णं लधु श्वेतं प्रवालमशुभं त्यजेत्।। र० वि०, पृ०- १२६

११. गोमेद परीक्षणविधिः-

कृत्रिम-अकृत्रिम-

श्वेत गोमेद और हीरे में कई बार अंतर न दिखाई देने से दोनों एक जैसे प्रतीत होते हैं जो वर्तनांक तथा अपकिरणन ऊँचा होने के कारण दमक में यह हीरे की बराबरी करता है। इसका पिछले भाग के किनारे दुहरे दिखाई पड़ते हैं। गोमेद की बराबरी करने वाले दूसरे रत्न स्फीन की कठोरता ५.५ है जो गोमेद से बहुत कम है परंतु वेंजनी स्पिरिट अथवा गर्म पानी में धोते ही इसका रंग उड़ जाता है। इस प्रकार से कृत्रिम-अकृत्रिम की पहचान की जा सकती है।[१]

पात्र में दूध के साथ जिस गोमेद को रखने से वह दूध गोमूत्र के रंग का दिखाई दे और कसकर घिसने पर जिसकी कान्ति वैसी की वैसी ही दिखाई दे वह गोमेद असली तथा उत्तम जाति का माना जाता है।[२]

१२.राजावर्त परीक्षणविधिः-

वर्तमान समय में कृत्रिम राजावर्त भी प्रचुर परिमाण में बनाया जा रहा है। शुद्ध पीतवर्ण कौलाल मृत्तिका (फायरी क्ले) + सिकता (बालू = sand) + गंधक एवं राल का सम्मिश्रण तीव्रतर तापक्रम पर पिघलाकर राजावर्त कृत्रिम रूप में निर्माण किया जाता है।[३]

कृत्रिम तथा अकृत्रिम की परीक्षा-

(१) राजावर्त के मोटे चूर्ण को अतीव प्रतप्त ताम्रपट्ट पर डालकर यदि यह चूर्ण सद्यः जल जाए अथवा .ष्णाभा युक्त हो जाए तो यह समझना चाहिए कि यह कृत्रिम है। यदि चूर्ण में किसी प्रकार का रंग परिवर्तन नहीं हुआ है तो वह प्राकृतिक है। इस प्रकार की परीक्षा प्रज्चलित कोयलों पर भी की जा सकती है।

(२) राजावर्त के सूक्ष्म चूर्ण को एक कटौरे में रखकर उसमें पर्याप्त पानी डालकर हाथ में भली भाँति रखकर यदि समस्त चूर्ण नीचे पानी में बैठ जाए और पानी में किसी प्रकार का रंग परिवर्तन न हो तो यह प्रा.तिक है अन्यथा यह कृत्रिम ही है।[४]

१- दृष्टव्य र० वि० पृ०- १३८
२- शालि नि० भू० पृ०- ७५०, हि० वि०- २५७
३- र० वि०- पृ० २१०
४- तदेव- - २११

४.२ मणि एवं रत्न धारणविधि एवं लाभ

मनुष्य को चाहिए कि वे जयकार्य में सब प्रकार की मणि धारण करें। जाति और गुण की परीक्षा करके विशुद्ध गुणयुक्त मणि धारण करना अथवा धनागार में रखना उचित है। जो मणि कुदिन और कुलग्न में उत्पन्न होती है वे ही दोषान्वित समझी जाती है। वे दोषपूर्ण मणि धारण करने से शरीर में व्याधिरूप नाना अमङ्गल होता है। इस प्रकार इनकी परीक्षा करके ही इनको धारण करना चाहिए। प्राचीन वेदशास्त्र, रामायण और महाभारत तथा नाटकादि में मणि का उल्लेख मिलता है। स्वयं नारायण भी कौस्तुभ मणि धारण करते हैं।[1]

मणिना- "हिरण्येन मणिना शुम्भमानाः" यहाँ पर मणि को प्रकाशरूप और सूर्य जैसे तेजवाला बताया गया है।[2]

मनुष्य का यदि भाग्योदयकारी ग्रह निर्बल हो तो उसकी बलवृद्धि के लिए अथवा अनिष्टकारी ग्रह प्रबल हो तो उस ग्रह से सम्बन्धित रत्न, उपरत्न संग पत्थर तथा जड़ी को धारण करना लाभप्रद होता है। रत्नों को धारण करने से पूर्व यह विचार कर लेना आवश्यक होता है कि रत्नों में कोई दोष न हो, क्योंकि शुभ रत्नों को धारण करने से सामान्य जन तथा राजाको शुभफल प्राप्त होता है तथा अशुभ रत्नों को धारण करने से अशुभ फलकी प्राप्ति होती है।[3]

जिस प्रकार मूर्ति की प्रतिष्ठा मन्त्रों द्वारा की जाती है, उसी प्रकार रत्नों को धारण करते समय मंत्र, जप तथा दशांश हवन करना चाहिए। यदि रत्न लेने का सामर्थ्य न हो तो उसी ग्रह का उपरत्न अथवा यन्त्रादि धारण किये जा सकते है। शास्त्रग्रन्थों में रत्नो के धारण से जो लाभ बताए है, वे इस प्रकार से हैं-

रत्न धारण-

ज्योतिष शास्त्रीय ग्रन्थों में नवग्रहों के नौ प्रमुख रत्न माने जाते हैं। माणिक मणि सूर्य की, मोती चन्द्रमा का, मूंगा मंगल का, पन्ना बुध का, बृहस्पति का पुखराज, शुक्र का हीरा, शनि का नील राहु का गोमेद और केतु के लिए वैदूर्य मणि कही है। इस प्रकार रत्नधारण से उसी ग्रह की शुभ दृष्टि होती है।[4]

१. हि० वि०- पृ०- ४७०

२. चक्राणासः परीणहं पृथिव्यां हिव्येन मणिना शुम्भमानाः
न हिन्वानासस्तितिरुस्त इन्द्रं परि स्पशो अदधात सूर्येण।। ऋ०- ०१/३३/०८

३- रत्नेन शुभेन शुभं भवति नृपाणामनिष्टमशुभेन।
यस्मादतः परीक्ष्यं दैवं रत्नाश्रितं तज्ज्ञैः।। बृ०सं०- ८०/१

४- माणिक्यं तरणेः सुजात्यममलंमुक्ताफलंशीतगोर्महियस्यच ,
विद्रुमीनिगदितः सौम्यस्यगारूत्मतम् देवेज्यस्य च पुष्परागम्।
सुराचार्य्यस्यवज्रंशनेर्नीलंनिर्मलमन्ययोश्चगदितंगोमेदवैदूर्य के।।
वृह० चर्य्याचंद्रोदयः श्लो०-१, पृ०-५५

१- अशुभ स्थान में ग्रह स्थित हो तो यत्न से उन्हीं की शांति करनी चाहिए। हानि तथा वृद्धि ग्रहों के अधीन है इसीलिए ग्रह सदा पूजने चाहिए।[1] माणिक्य, मोती, मूंगा, गारुतमक (हरीजात्का रत्न) पुष्पराज, हीरा, नीलमणि, लहसुनिया, गोमेद, वैदूर्य ये रत्न यथा क्रम से धारण करने से सूर्यादि ग्रहों की प्रसन्नता होती है।[2]

सूर्यादि नवग्रहों के जो रत्न बतलाए गए हैं इनके सम्बन्ध में लिखा है कि जब कोई ग्रह जन्मकुण्डली में महादशा अथवा अन्तर्दशा में अनिष्ट स्थान पर बैठकर अनिष्ट फल देने वाला हो तो उस ग्रह की शान्ति करने अथवा अनिष्ट फल देने वाला हो तो उस ग्रह की शांति करने के लिए उस ग्रह से सम्बन्ध उत्तम जाति के रत्न को धारण करना चाहिए।[3]

२- मध्य में सूर्य का माणिक्य, पूर्व में शुक्र का हीरा, आग्नेय में चन्द्रमा का मोती, दक्षिण में मंगल का मूंगा, नैऋत्य में राहु का गोमेद, पश्चिम में शनि का नीलम, वायव्य में केतु का वैदूर्य उत्तर में बृहस्पति का पुखराज और ईशान में बुध का पन्ना धारण करना चाहिए। मनुष्य ग्रहों की प्रसन्नता के लिए अंगूठी में यह रत्न धारण करें।[4]

१- हीरक-

जो मनुष्य तीक्ष्णाग्र, निर्मल तथा दोष शून्य हीरे को धारण करते हैं, वे जीवन पर्यन्त प्रतिदिन, स्त्री सम्पत्ति, पुत्र, धन धान्य और गवादिक पशुओं की श्रीवृद्धि को प्राप्त करते हैं।[5]

जो राजा विद्युत-तुल्या समुज्जवल एवं चमकते हुए शोभा सम्पन्न हीरे को धारण करता है, वह अपने पराक्रम से दूसरे के प्रताप को आक्रान्त करने में समर्थ होता है तथा वह अपने समस्त सामन्तों को वश में रखकर पृथ्वी का उपभोग करता है।[6]

१- गृहेषु विषमस्थेषु शान्ति यत्नात्समाचरेत्। हानिर्वृद्धिर्ग्रहाधीना तस्मात्पूज्यतमा ग्रहाः।।
नारद सं० - अ०-१२, शलो० -११

२. मणिमुक्ताफलं विद्रुमाख्यं गारूत्मकाड्यम्। पुष्परागं त्वथो वज्रं नीलगोमेदसंज्ञकम्।।
वैदूर्यं भास्करादीनां तुष्टये धार्यं यथाक्तमम्।। तदेव - अ०- १२, शलो०-१३

३. र० परि० - पृ०- ४६

४. माणिक्यं तरणेर्मध्ये प्राच्यां वज्रं भृगीर्विधोः। आग्नेय्यां मौक्तिकं याम्यां प्रवालं मंगलस्य व।।
गोमेदं राक्षसे राहोः पश्चिमे नीलकं शनेः। वायौ वैदूर्यकं केतोरूदीत्त्यां पुष्पकं गुरोः।।
गारूत्मकं तथैशान्यां सोमपुत्रस्य तुष्टये। मुद्रिकायां नरैर्धार्यं ग्रहाणां प्रीतये सदा।।
मु० गण० -श्लो० - ५६-५८

५- तीक्षषाग्रं विमलमपेतसर्वदोषं धत्ते यः प्रयततनुः सदैव वज्रम्।
वृद्धिरस्तं प्रतिदिनभेति यावदायुः स्त्रीसम्पत्सुतधनधान्यगोपशूनाम्।। ग० पु० ६८/३२

६- सौदामिनीविस्फुरिताभिरामं राजा यथोक्तं कुलिशं दधानः।
पराक्रमाक्रान्तपरप्रतापः समस्तसामन्त भुवं भुनक्ति।। तदेव - ६८/५२

वर्णादि अनुसार हीरे को धारण करने से जो लाभ बताए हैं वह इस प्रकार से है।

१ ब्राह्मण हीरा-

ब्राह्मण हीरे को धारण करने से मनुष्य सात जन्मों तक ब्राह्मण जाति में ही जन्म लेता है। वेदों, पुराणों और समस्त शास्त्रों का ज्ञाता हो कर महान प्रतिष्ठा को प्राप्त करता है।

२ क्षत्रिय हीरा-

जो व्यक्ति ब्राह्मणवर्ण वाले हीरे को धारण करता है,वह शूर वीर होता है तथा युद्ध क्षेत्र में कभी नहीं हारता है। शत्रुओं को सदैव अपने वश में रखता है। उसकी प्रजा सुखी तथा अन्न धन से संतुष्ट रहते हुए आज्ञा का पालन करती है।

३ वैश्य हीरा-

जो वैश्य वर्ण का हीरा धारण करता है वह धन-जन, स्त्री-पुत्र इत्यादि सुखों से आनन्दित रहते हुए जनता में सम्मान पाता है।

४ शूद्र हीरा-

जो व्यक्ति शूद्र वर्ण का हीरा धारण करता है, वह साधु महात्माओं के साथ रहने वाला तथा बुद्धिमान होता है और परोपकार में उसकी सदैव आस्था बनी रहती है। वह व्यक्ति धन-वैभव से युक्त होकर अपनी प्रतिष्ठा को बढ़ा लेता है।[1]

२- मुक्ता-

जो मनुष्य अथवा राजा सर्प मणि (सर्प के फण से मिलने वाली) मुक्ता को धारण करते हैं उनको कभी भी विष या रोग सम्बन्धी दोष नहीं होते हैं। यह मुक्ता अलक्ष्मी का नाश करती है। सर्प मुक्ताको धारण करने वाले मनुष्यों से शत्रु हमेशा भयभीत रहते हैं तथा उनकी सदैव विजय होती है और उनके यश का विस्तार होता है।

मुक्ता से बनी हुई मालाओं के विभिन्न नाम गिनाए गए हैं- शीर्षक (जिसमें दो छोटे मोतियों के बीच में एक बड़ा मोती पिरोया गया हो), उपशीर्षक (जिसमें दो छोटे मोतियों के बाद एक बड़ा मोती हो), प्रकाण्डक (जिसमें चार छोटे मोतियों के बाद एक बड़ा मोती हो), अवधाटक (जिस माला के बीच एक बड़ा मोती और उसके दोनों और उत्तरोत्तर छोटे-छोटे मोती हों) और तरल प्रतिबन्ध (जिसमें सभी मोती एक समान लगे हों)

एक हज़ार आठ लड़ी की माला को इन्द्रच्छन्द उससे आधी पाँच सौ चार लड़ी की माला को विजयच्छन्द; सौ लड़ी की माला को देवच्छन्द, चौसठ लड़ी की माला को अर्धहार; चौवन लड़की माला को रश्मिकलाप, बतीस लड़ी की माला को गुच्छ, सत्ताइस लड़ी की माला को नक्षत्रमाला; चौबीस लड़ी की माला को अर्धगुच्छ, बीस लड़ी की माला को

१- द्रष्टव्य- र० वि०, पृ०- २०

२- अपहरति विषलक्ष्मीं क्षपयति शत्रून् यशो विकाशयति
भौजंगं नृपतीनां धृतमकृतार्घं विजयदंच ।। बृ० सं०- ८०/२७

माणवक और उससे आधा दस लड़ी की माला को अर्धमाणवक कहा जाता है। इन्हीं मालाओं के बीच में यदि मणि पिरो दी जाए तो उनके नाम के आगे माणवक शब्द जुड़ जाता है। यदि इन्द्रच्छन्द आदि मालाओं के सभी मोती शीर्षक के समान पिरोए जाते हैं तो उनका नाम इन्द्रछन्दशीर्षक शुद्धहार, विजयच्छन्दशीर्षक शुद्धहार कहा जाता है। इसी प्रकार यदि इन्द्रच्छन्द आदि में सभी मोती उपशीर्षक के समान पिरोए गए हों तो उसे इन्द्रच्छन्दोपशीर्षकशुद्धहार कहा जाता है। यदि इन शुद्धहारों के बीच में मणि पिरो दी जाए तो बजाय शुद्धहार के वे अर्धमाणवक कहलाते हैं इस कारण से इनका पूरा नाम होगा इन्द्रच्छन्दशीर्षकार्धमाणवक। इसी प्रकार उपशीर्षक का भी यही नाम आएगा। दस लड़ियों की माला में यदि सोने के तीन या पाँच दाने पिरो दिए जाएँ तो उसे फलकहार कहा जाता है। एक ही लड़ी की मोती की माला का नाम सूत्र है। यदि उसके बीच में मणि पिरो दी जाए तो उसे ही यष्टि कहा जाता है। सोने के दाने और मणियों से पिरोई गई मोती की माला रत्नावली कहलाती है। यदि किसी माला में मणि न लगी हो तो अपवर्तक कहते हैं। यदि अपवर्तक माला में मणि न लगी हो तो उसका नाम सोपानक है। यदि बीच में मणि लगा दी जाए तो उसे मणि सोपानक कहते हैं।[1] इसी प्रकार सिर, हाथ, पैर और कमर की भिन्न-भिन्न मालाओं के भिन्न-भिन्न नाम हैं। ऐसा ही वर्णन वृहद्चर्याचन्द्रोदय में आता है।[2] इन मालाओं का धारण करने से यश, विजय, लाभ एवं धन की प्राप्ति होति है।

१- शीर्षकमुपशीर्षकं प्रकाण्डमवघाटकं तरलप्रबन्धं चेति यष्टिप्रभेदाः।
यष्टीनामष्टसहस्रमिन्द्रच्छन्दः। ततोऽर्धं विजयच्छन्दः। शतं देवच्छन्दः।
चतुष्षाप्टेर्धहारः। चतुष्पञ्चाशद्रश्मिकलापः। द्वात्रिंशद्गुच्छः। सप्तविंशतिर्नक्षत्रमाला।
चतुर्विंशतिरर्धगुच्छः। विंशतिमणिवकः। ततोऽर्धमर्धमाणवकः।
उत एव मणिमध्यास्तन्माणवका भवन्ति। एकशीर्षकः शुद्धोहारः। तद्वच्छेषा।
मणिमध्योऽर्धमाणवकस्त्रिफलकः। फलकहारः पञ्चफलको वा। सूत्रमकावली शुद्धा।
सैव मणिमध्या यष्टिः। हेममणिचित्रा रत्नावली हेममणिमुक्तान्तरोऽपवर्तकः।
सुवर्णसूत्रान्तरं सोपानकम्। मणिमध्यं वा मणिसोपानकम्।। अ० शा०, अ० ११ पृ०- १५१

२- तेन शिरोह[illegible]कलापजालकविकल्पा व्याख्याता :। तदेव - - - -

प्रवाल-

जो मनुष्य सुन्दर कोमल स्निग्ध तथा लाल-लालवर्ण की आभासे युक्त विद्रुम मणि को धारण करते हैं वे निश्चित ही इस संसार में धन-धान्य से सम्पन्न होते हैं और यह मणि विषादिक दुःखों को भी दूर करने वाली है।[1]

प्रवाल का चलित नाम मूंगा है। इसके अधिष्ठात्री देवता मंगल हैं। मंगल ग्रह के विरुद्ध होने से यदि प्रवालदान और प्रवाल धारण किया जाए तो शुभ होता है। मंगल ग्रह के विरुद्ध होने से यदि फोड़े आदि हो जाएँ तो प्रवालधारण, दान तथा घिस कर प्रतिदिन भोजन करने से विशेष उपकार होता है। प्रवाल को धारण करने से सब प्रकार के पाप नष्ट होते हैं तथा अलक्ष्मी की कृष्टि नहीं रहती है।[2]

पन्ना-

स्वच्छ, भारी, स्निग्ध, मृदु, अव्यंग और बहुरंगवाला ऐसा पन्ना शृंगारी मनुष्यों को धारण करना चाहिए। खरखरा, रूखा, मलिन, हलका, कान्तिहीन, कल्मषयुक्त त्रासयुक्त और विकृतांग ऐसे पन्ने को धारण नहीं करना चाहिए।[3]

पन्ना धारण करने वाले की शुचिता की रक्षा करता है। यदि उसके विरुद्ध कोई षडयंत्र कर रहा हो तो यह उस व्यक्ति से रक्षा करता है। पन्ना पहनने वाले की बुद्धि तथा स्मृति शक्ति बढ़ती है। जो व्यक्ति पन्ना खरीद सकने में सामर्थ्य न रखता हो तो उन्हें हरित नील मणि धारण करनी चाहिए। इसका भी वही प्रभाव होता है जो पन्ने को धारण करने से होता है।[4]

धारण गुण (ज्योतिषशास्त्रीय अभिमत)

जो व्यक्ति उत्तम छायाविशिष्ट, पीतवर्ण, गुरु, विशुद्ध, वर्ण, स्निग्ध, निर्मल, सुवृत्त और सुशीतल पुष्पराग का विशेष गुण यह है कि इसको धारण करने से बन्ध्या स्त्री भी पुत्रवती हो जाती है।[5]

१- प्रसन्न कोमलं स्निग्धं सुरागं विद्रुमं हितत्।
धनधान्यकरं लोके विषार्तिभयनाशनम्।। ग० पु० ८०/३

२. ह० वि०- पृ०-६३८

३. नजरांयांतिरत्नानिविद्रुमंमौक्तिंकविना।
राजादौष्टयाच्चरत्नानांमूल्यंहीनाधिकंभवेत्।। शुक्र-श्लो०- ७२, अ०-४, पृ०-१०२

४. स्वच्छंगुरुस्निग्धगात्रंचमार्दवसमेतमव्यंगंबहुरंगम्।
शृंगारीमरकतं विभृयात्। शर्करिलंरुक्षंमलिनम्।।
लघुहीन कान्ति कल्मषं त्रासयुतं वि.तांगमरकत।
ममरोपिनोपयुंजीत।। शालि० नि० भू० - पृ० - ७४५

५. र० परि० - पृ० - १०६

पुखराज-

पुखराज को धारण करने से रात को डर नहीं लगता। कायरता समाप्त हो जाती है। बुद्धि की वृद्धि होती है,साथ ही क्रोध को और पागलपन को शांत करता है और आकस्मिक मृत्यु की आशंका को दूर कर देता है।[1]

पद्मराग-

जो राजा पद्मराग मणि को धारण करता है, उसके राज्य में इन्द्र सदैव वर्षा करते हैं और इस मणि के प्रभाव से राजा शत्रुओं का नाश करता है।

शत्रुओं के बीच निवास करने तथा प्रमाद वृत्ति में आसक्त रहने पर भी विशुद्ध महागुण सम्पन्न होता है। पद्मराग मणि को धारण करने से या उस का स्वामी होने से किसी भी व्यक्ति को आपदाएं स्पर्श तक नहीं कर सकती हैं। जो मनुष्य गुणों से परिपूर्ण तेजस्वी सुन्दर वर्णवाले पद्मरागमणि को धारण करता है उसके समीप में उपस्थित होकर दोष संसर्गजनित उपद्रव जैसे कष्ट देने में सक्ष्म नहीं कर पाते हैं।[2]

इन्द्रनील-

जो मनुष्य इन्द्रनील को धारण करते है। उनके पाप नष्ट हो जाते हैं। इन्द्रनील को धारण करने के बाद साधारण से साधारण व्यक्ति भी राजा, महाराजा,नेता, अभिनेता, विद्वान आदि किसी के भी सामने भयभीत नहीं होता है। गोल आकृतिसे युक्त इन्द्रनील को धारण करने से लक्ष्मी, आयु, तथा वैभव की प्राप्ति होती है।[3]

गुरु इन्द्रनील को धारण करने से वंशवृद्धि होती है, स्निग्ध इन्द्रनील धारण करने से धन की वृद्धि होती है। वर्णाढय इन्द्रनील धनधान्यादि की वृद्धि करता है। पार्श्ववर्ती इन्द्रनील यशस्कर और रञ्जक इन्द्रनील लक्ष्मी यश और वंशवर्द्धक माना जाता है।

दोष होने पर भी जो गुणयुक्त है ऐसी इन्द्रनीलमणि जिसके पास है उसकी आयु और यश की वृद्धि होती है। जो मनुष्य विशुद्ध इन्द्रनील धारण करते हैं, नारायण उसके प्रति प्रसन्न होते हैं और उससे आयु, कुल, यश, बुद्धि, लक्ष्मी और समृद्धि की उन्नति होती है। गुण सम्पन्न और दोषयुक्त पद्मराग धारण करने से जैसा शुभाशुभ होता है, इन्द्रनील धारण करने से भी वैसा ही फल प्राप्त होता है। जिस इन्द्रनील में कुछ लोहित सी आभा दिखाई पड़े उसे टिट्टिभ कहते हैं। टिट्टिभ जातीय मणि धारण करने के साथ ही गर्भिणी स्त्री सुख से सन्तान प्रसव करती है।[4]

१- द्रष्टव्य- बृ० सं०- ८०/६, हि० वि०- ५६५, र० परि०- ११४

२- सपत्नमध्येऽपि कृताधिवासं प्रमादवृत्तावपि वर्त्तमानम्।
न पद्मरागस्य महागुणस्य भर्त्तारमापत्स्पृशतीह काचित्।।
दोषोपसर्गप्रभवाश्च ये ते नोपद्रवास्तं समभिद्रवन्ति।
गुणैः समुत्तेजितचारुरागं यः पद्मरागं प्रयतो बिभर्त्ति।। ग०पु० ७०/३१-३२

३- द्रष्टव्य र० वि० पृ० १८६

४- द्रष्टव्य- बृ० सं०- ८०/ १०, हि० वि०- १७६

वैदूर्य-

१- वैदूर्य को धारण करने से शरीर में पाण्डुरोग के पीलेपन को दूर करता है।
२- प्रसव पीड़ा में सिर के बालों में बांधने से शीघ्र ही प्रसव हो जाता है।
३- बच्चोंके गले में बांधने से श्वास-प्रश्वास सम्बन्धी रोग,जैसे न्युमोनिया रोग नहीं हो पाते हैं।[1]

धारण विधि-

जो भारी सफेद रंग की, चिकनी तथा अत्यन्त पुरानी और स्वच्छ हो ऐसी गोमेद मणि को धारण करने से लक्ष्मी और धन-धान्य की वृद्धि होती है। जो हलकी, विरूप, खरदरी, स्नेह से लिपटी हुई सी मलिन है उस गोमेद मणि को धारण करने से सम्पत्ति भोग और वीर्य का नाश होता है। स्फटिक मणि की ही गोमेद मणि बना लेते हैं।[2]

१- द्रष्टव्य- बृ० सं०- ८०/ १५-१८, मु० चि०- पृ०- १६७
२- हि० वि०- ११६

४.३ अरिष्ट ग्रहों द्वारा उत्पन्न रोगों का रत्नों द्वारा उपचार

रत्न धारण

नीच राशि में स्थित ग्रह मानव शरीर में विभिन्न प्रकार के रोग उत्पन्न करता है उस ग्रह की शांति से एवं ग्रह रत्न धारण एवं उसी रत्न की भस्म सेवन से भी मानव व्याधियों से मुक्त हो जाता है।

१. सूर्य ग्रह से प्रभावित रोग तथा रत्न धारणः-

जब किसी व्यक्ति को सूर्य ग्रह पाप के रूप में आकर कष्टदायक सिद्ध होता है। अर्थात् सूर्य लग्न कुण्डली, राशि एवं पाप ग्रहों के साथ होने से अनिष्ट व्याधियाँ एवं शिर पीड़ा, प्रमेह, सतत और सन्तत (टाइफाइड) ज्वर, पित्त-रोग, अम्लशूल, हृदय रोग, हैजा, शिरोव्रण विषज व्याधियाँ, दाहकज्वर जैसे रोग उत्पन्न करता है।

ज्योतिष शास्त्र के अनुसार सूर्य ग्रह का रत्न माणिक्य है। सूर्य द्वारा उत्पन्न रोगों के शमन के लिए माणिक्य रत्न तांबे या सोने में आयु की अवस्था के अनुसार मात्रामें धारण करने से एवं माणिक्य की भस्मका सेवन करने से सूर्य द्वारा उत्पन्न विकारों एवं रोगों का शमन होता है।[1] सूर्य नमस्कार, सूर्यार्घ्य और रविवार के दिन उपवास करने से भी लाभ मिलता है।[2]

सवा पाँच रत्ती का माणिक्य रत्न, सुवर्ण धातु में, सूर्यकान्त के साथ जड़वाकर सूर्ययन्त्रों से अभिषिक्त करके गले में पहनने से रोग एवं सभी दोषों से मुक्ति मिल जाती है।[3]

२- चन्द्रग्रह से प्रभावित रोग रत्न धारणः-

जिस व्यक्ति के जन्म लग्न, राशि, दशा आदि में चन्द्रमा की कुदृष्टि पाप ग्रहों के साथ हो अथवा वह निर्बली हो तो गलगण्ड,गण्डमाला,ज्वर विशेषतः कफदूषित जन्य ज्वर, कास, वमन, क्षय, कफजशूल, श्लीपद, जलोदर, आमज पीड़ा, आमातिसार, हृदयरोग, श्वासकृच्छ्रता आदि रोग उत्पन्न होते हैं।[4]

१- शिरः पीडा प्रमेहश्च सततः सन्ततो ज्वरः। पित्तरोगोऽम्लशूलश्च हृदयरोगश्च विसूचिकाः।।
शिरोव्रणदिकं चैव विषजो दाहकजवरः। यमारयोगाद्धिक्का च रवौ व्याधिविनिर्णयः।।
र० वि०. पृ०- १६८

क. शिरः पीड़ा प्रमेहश्च सततः सन्ततो ज्वरः। पित्तरोगोम्लूशूलश्च हृद्रोगश्च विसूचिका।।
शिरोव्रणादिकं चैव विषजी दाहकज्वरः। यमार योगा द्विक्का च रवौ व्याधिविनिर्णयः।।
प्रश्न कल्प तरु, पृ० -१५६

२. ज्यो० रोग वि - पृ० - १३३ ३. तदेव- - - -

४- गलगण्डो गण्डमाला ज्वरश्च कफदूषितः। कासच्छर्दिः क्षयं शूलं श्लीपदश्च जलोदरी।।
आमपीडाऽतिसारश्च हृदयरोगः श्वासकृच्छ्रता। एते वै चन्द्रजा रोगा मुनिभिः परिकीर्तिता।।
र० वि०, पृ०- ६१

रत्न धारण-

ज्यातिष शास्त्र के अनुसार चन्द्र ग्रह का रत्न मोती है। अतः इन सभी व्याधियों के पीड़ित होने पर व्यक्ति को मोती धारण करना चाहिए। मोती का दान एवं मुक्ता भस्म या मुक्ता पिष्टी का सेवन भी लाभप्रद होता है।

सवा दो रत्ती का अणविंदा मोती, शुद्ध चाँदी में चंद्रयंत्र के साथ जड़वाकर प्राणप्रतिष्ठित कर दूब की घास से रुद्रदाभिषेक करके गले में धारण करने से चन्द्र सम्बन्धी सभी रोगों का नाश होता है।[1]

३- मंगल से प्रभावित रोग पर रत्न धारणः-

मंगल ग्रह की कुदृष्टि होने, अरिष्ट स्थान एवं पाप ग्रहों के साथ स्थित होने पर रक्त पित, दाद, भगन्दर, रक्तदोष, प्रमेह, फोड़े फुन्सियों का समस्त शरीर में होना, दुष्ट व्रण (कारबंकल), हड्डियों का टूट जाना, बवासीर, रक्तातिंसार यांनी खूनी दस्तो का आना, शरीर के किसी भी अंग से रक्त का आ जाना, अग्निदाह का भय, प्रदररोग,राजयक्ष्मा की खाँसी, बच्चों को कुकर खाँसी, निमोनियां रोग, शोथ रोग, मूत्रावरोध एवं मूत्रकुच्छ्रता, अधिक पसीना आना,रक्तार्श और मधुमेह जैसे रोग उत्पन्न होते हैं। इन रोगों से पीड़ित व्यक्ति को बल, काल तथा आयुके अनुसार उपयुक्त समय में प्रवाल को यथा मात्रा में धारण करना चाहिए एवं प्रवाल भस्म का सेवन यथामात्रा में करना चाहिए, इससे मंगल ग्रह द्वारा उत्पन्न रोगों का शमन होता है। [2]

रत्न धारण मात्रा-

ज्योतिष शास्त्र के अनुसार मंगल ग्रह का रत्न मूंगा है। अतः मंगल की शांति हेतु व्यक्ति को मूंगा धारण करना चाहिए। मूंगा का दान, धारण और प्रवास पिष्टी का सेवन भी लाभदायक है।

सवा पाँच रत्ती का मूंगा, सुवर्ण या त्रिलोह में मंगलयंत्र के साथ प्राणप्रतिष्ठित कर धारण करने पर मंगल सम्बन्धी समस्त व्याधि व प्रकोप शांत होते हैं।[3]

४- बुध से प्रभावित रोग पर रत्न धारण-

जिस व्यक्ति के जन्म लग्न, राशि, दशादि में बुध की कुदृष्टि हो, पाप ग्रहों द्वारा पीड़ित एवं निर्बली होने से त्वचा सम्बन्धी रोग, वायुजन्य पीडा, जिह्वा रोग, एक्जीमा आदि त्वचारोग, उन्माद वमनके साथ कफाधिक्य एवं तीनों दोषोंका

---

१. गलगण्डो गण्डमाला ज्वरश्च कफदूषितः। कासच्छर्दि क्षयं शूलं श्लीपद्श जलोदरी।।
आमपीड़ातिसारश्च हृदयरोगः खास.च्छ्रत। एतो वै चन्द्रजा रोगा मुनिभिः परिकीर्तिताः।।
प्रश्नकल्प तरु, पृ० - १४५

क. ज्यो० रोग वि० - पृ० - १३४

२- रक्तपित्तोद्भ्वा पीडा दद्रुरोगो भगन्दरः। रक्तदुष्टिप्रमेहश्च विस्फटिकभयं महत्।।
दुष्टव्रणोऽस्थिभगश्च रक्तस्रावोऽग्निजं भयम्। अर्शो रक्तातिसारश्च व्याधयः कुजसम्भवाः।।

३- र० वि०, पृ० - १२१, ज्यो० रोग० वि०, पृ०-१३५

प्रकोपण हो कर सन्निपातादिक व्याधियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। [१]

रत्न धारण मात्रा-

इन सभी रोगों से पीड़ित होने में बुध ग्रह ही कारण होता है और ज्योतिष शास्त्रानुसार बुध ग्रह का रत्न पन्ना है। बुध शांति हेतु पन्ना का धारण दान, एवं पन्ना की भस्मादि का उपयोग लाभप्रद होता है। सवा छः रत्ती का पन्ना सुवर्ण या त्रिलोह में बुध यंत्र के साथ जड़वाकर गले में धारण करने पर बुध सम्बन्धी रोगों में निवृत्ति होती है।[२]

५- बृहस्पति से प्रभावित रोग पर रत्न धारण-

जिस व्यक्ति के जन्म लगन एवं राशि से अरिष्ट स्थान में बृहस्पति स्थित हो या गोचर में बृहस्पति के अरिष्ट होने से मास्तिक एवं कर्ण, जिह्वा, नासा, नेत्र आदि प्रत्यंगों में पीड़ा होती है। शरीर अत्यधिक मोटा होने लगता है। मुखरोग, यदा कदा सहसा श्वास- प्रश्वास लेने में अवरोध आदि व्याधियाँ गुरु ग्रह की प्रकोपास्था में होती हैं। इन रोगों से ग्रसित व्यक्ति को उपयुक्त समय में यथा मात्रा में पुखराज को धारण करना चाहिए एवं उसकी भस्म इत्यादि का उपयोग करना चाहिए। जिन व्यक्तियों को वक्षस्थल सम्बन्धी व्याधियाँ यथा राजक्ष्मा, श्वास कास, हृदयरोग आदि एवं वातव्याधियाँ यथा- आमवात, सन्धिवात आदि तथा मेदारोग यथा- मोटापन आदि व्याधियाँ हों तो उन्हें भी पुखराज को उपयुक्त समय में धारण करना चाहिए।[३]

रत्न धारण मात्रा-

ज्योतिष शास्त्रकारों ने गुरु ग्रह का रत्न पुखराज माना है। अतः जिस व्यक्ति के लिए गुरू अशुभ हो तो पुखराज का धारण, दान एवं पुखराज भस्मादि का उपयोग लाभप्रद होता है।

सवा पाँच रत्ती, सवा नौ रत्ती या बारह रत्ती का पुखराज शुद्ध सुवर्ण धातु में गुरु यंत्र के साथ जड़वाकर, अभियंत्रिक करके गले में धारण करने पर गुरु सम्बन्धी रोगों की निवृत्ति होती है।[४]

६- शुक्र से प्रभावित रोग रत्न पर धारण-

किसी मनुष्य के जन्म समय में दशा, अन्तर्दशा या गोचर में अशुभ या पाप ग्रहों के साथ शुक्र के स्थित होने से निम्न रोग उत्पन्न होते है नेत्र गुदा, शिश्नेन्द्रिय, प्रमेह, शोथ मूत्र रोग, गुल्म, उपदंश (गनोरिया) स्त्रियों में प्रदर तथा गर्भाशय सम्बन्धी शूलादि

१- द्रष्टव्य र० वि०, पृ०- १६५

२. त्वग्दोशो वायुजापीड़ा जिह्वारोगो विचर्चिका। मत्तता वमने श्लेष्मा बुधे त्रिदोषदुफटता।।
प्रश्नकल्पतरु, पृ० - १५७

३. ज्यो० रोग० वि० - पृ० - १३६

४. उत्तमांगोभदवा पीड़ा मेदोरोगाग्नि वेदना। अकस्माच्छ्वासरीधश्च गुरोर्व्याधिविनिश्चयः।।
तदेव - - - -

क. द्रष्टव्य र० वि०- पृ०- १६४, प्रश्नकल्पतरु, पृ० - १५७

रोग पंच ज्ञानेन्द्रियों के विकार, अण्डकोषवृद्धि (हाइड्रोसील) तथा ज्वरादि रोग उत्पन्न होते हैं।

रत्न धारण मात्रा-

इन रोगों से ग्रस्त व्यक्ति को कम से कम सवा रत्ती का हीरा चाँदी में धारण करना चाहिए तथा हीरा भस्म के योग्य सेवन से भी रोगों की शान्ति होती है । इस प्रकार हीरा धारण करने से अथवा हीरा भस्म के सेवन से शुक्र द्वारा उत्पन्न रोगों का शमन होता है।[1]

७- शनि से प्रभावित रोग पर रत्न धारण-

शनि ग्रह की कुदृष्टि एवं अरिष्ट होने से अनेक प्रकार की व्याधियाँ दुर्घटनाएँ एवं रोग जैसे राजयक्ष्मा वातोदर, मूर्धारोग, प्लीहोदर, स्नायु पीड़ा, कृमिरोग, पक्षघात, श्वासरोग, जीर्णज्वर, सर्वांग में वायुजन्य पीड़ा और हाथ पैरों का काँपना इत्यादि रोग उत्पन्न होते हैं।

रत्न धारण मात्रा-

शनि के रत्न नीलम के धारण, दान एवं भस्मादि सेवन का उपयोग लाभप्रद होता है। सवा पाँच या सवा दस या ग्यारह रत्ती का नीलम त्रिलोह धातु के साथ शनि यंत्र में जड़वाकर अभियंत्रित करके गले में धारण करने से शनि सम्बन्धी रोग एवं दोषों की निवृत्ति होती है।[2]

८- राहु से प्रभावित रोग पर रत्न धारण-

राहु ग्रह की कुदृष्टि एवं कुण्डली में अरिष्ट स्थान में होने से मानव शरीर में अनेक प्रकार के शारीरिक एवं मानासिक व्याधियाँ तथा रोग उत्पन्न हो जाते हैं। यथा- पाण्डुरोग, दीपन, पाचन, रुचिवर्धक, त्वचारोग, अव्यणस्थित बुद्धि जैसे रोग उत्पन्न होते हैं।

रत्न धारण मात्रा-

राहु की शांति हेतु ग्रह रत्न गोमेद है। अतः राहु के अशुभ रहने पर गोमेद धारण करना चाहिए। सवा पाँच रत्ती का गोमेद, त्रिलोह के साथ जड़वाकर अभियंत्रित करके धारण करने से राहु सम्बन्धी रोग से निवृत्ति होती है।[3]

१- नेत्रे गुह्य गुदे लिंगे रोगः स्याद् भृगुदोषजः। प्रमेहः शोथमूत्रंच गुल्मरोगोपदंशकः।।
स्त्रीणां प्रदरपीडा च गर्भशूलादिदूषणम् । इन्द्रियणां विकारः स्यान्मुष्कवृद्धिर्ज्वरोमहान्।।
र० वि०, पृ० -१८,

क. ज्यो० रोग० वि० - पृ० - १३६

२. यक्षमावातोदरो मूर्च्छास्नायुरूक् .मिसम्भवाः। पक्षाघातस्तथा श्वास-प्लीहा ज्वरेण शीर्णता।।
सर्वत्र वायुजा पीड़ा हस्तपादप्रकम्पनम्। एते हि शनि रोगाः स्युर्विज्ञेया मुनिसम्मता ।।
ज्यो० रोग० वि० - पृ० - १३७,

३. र० वि०, पृ० -१८,

९- केतु से प्रभावित रोग पर रत्न धारण-

केतु ग्रह की प्रकुपितावस्था एवं अरिष्ट होने से इसके द्वारा उत्पन्न व्याधियाँ एवं रोगों में पित्त प्रधान रोग, रक्त विकार, बुद्धि विकार, वायु विकार, पाण्डुरोग, प्रसव पीड़ा, निर्बलता, दीपन और मलमोचन, बच्चों के श्वास प्रश्वास सम्बन्धी रोगों जैसे- नमूनियादि रोगों के शमन एवं केतु द्वारा उत्पन्न विकार के शमन के लिए वेदूर्य रत्न आयु अवस्था के अनुसार उपयुक्त समय में धारण करना चाहिये। वैदूर्य की भस्मका सेवन करने से भी केतु द्वारा उत्पन्न रोगों का शमन होता है।[1]

रत्न धारण मात्रा-

केतु ग्रह की शान्ति हेतु केतु रत्न वैदूर्य (लहसुनिया) को धारण करना चाहिए। सवा पाँच रत्ती का लहसुनिया, त्रिलोह में केतुयंत्र के साथ जड़वाकर अभियंत्रित करके गले में धारण करने पर केतु सम्बन्धी सभी रोगों एवं दोषों की निवृत्ति होती है।[2]

१- द्रष्टव्य र० वि०, पृ०-२०४,२०६
२. ज्यो० रोग० वि० - पृ० - १३८

४.४ 'रत्नों का अनुकूल-प्रतिकूल प्रभाव'

१. अशुभ लक्षण से युक्त हीरे को धारण करने से शुभ फल की प्राप्ति नहीं होती है। जैसे पुत्र की इच्छा रखने वाली स्त्रियों को अशुभ लक्षण युक्त एवं सामान्य हीरे को धारण नहीं करना चाहिए। अशुभ लक्षणों से युक्त हीरे को धारण करने से राजाओं के बन्धु, धन और प्राण आदि का नाश होता है।

शुभ फल-

शुभ लक्षणों से युक्त हीरे को धारण करने से वज्रमय अर्थात् वज्र के समान देह बनाता है। विष, शत्रु, एवं संकट आदि का नाश करता है तथा वीर्य एवं भोग की वृद्धि करता है। पुत्र की कामना रखने वाली स्त्री को संघाडे की आकृतिवाला तीन पुटों से युक्त धान्य फलके समान हीरे को धारण करना चाहिए।[१]

पुत्र की कामना करने वाली स्त्री को सदा सफेद,निर्मल शुक्ल आभायुक्त हीरे को ही धारण करना चाहिए। हीरा भय को दूर करने वाला, धैर्य को बढ़ाने वाला, भद्रता एवं अर्न्तदृष्टि, ज्ञान एवं पवित्रता को देने वाला, नपुसंकता आदि को दूर करने वाला और वीर्य को बढ़ाने वाला होता है।[२] हीरे के शुभाशुभ फल का ऐसा ही वर्णन गरुड पुराण में भी मिलता है।[३]

२- मुक्ता के अशुभ फल-

अशुभ लक्षणों से युक्त मोती को धारण करने से पुत्र, धन, यश आदि का नाश, रोग एवं शोक की वृद्धि होती है तथा मानसिक अशान्ति उत्पन्न होती है। दोष युक्त मोतीको धारण करने से सैाभाग्य यश, बुद्धि, पुत्र, धन,उद्योग तथा सम्पत्ति का नाश होता है एवं रोग उत्पन्न होते हैं।

शुभ फल-

शुभ लक्षणों से युक्त मोती को धारण करने से पुत्र,धन और यश की प्राप्ति होती है। रोग एवं शोक का नाश होता है और सभी अभिलाषित कार्यो की सिद्धि होती है।[४]

१- द्रष्टव्य बृ० सं०, ८०/१७-१८

२- द्रष्टव्य र० वि०, पृ०- १८

३- द्रष्टव्य ग० पु०- ६८/४३-५२

४- एतानि सर्वाणि महागुणानि सुतार्थ सोभाग्ययशस्कराणि।
स्वशोकहन्तृणि च पार्थिवानां मुक्ताफलानीप्सितकामदानि।। बृ० सं०- ८०/३०

रत्न शास्त्रीय परीक्षा विधि के अनुसार सभी गुणों का उदय जिस मोती में हो ऐसा मोती यदि किसी पुरुष को प्राप्त हो जाए तो वह अपने स्वामी को किसी भी प्रकार के एक भी अनर्थोत्पादक दोष के सम्पर्क में नहीं आने देता है अर्थात् सर्वसम्पदादायक होता है।[1]

शुभ लक्षणों से युक्त मोती को धारण करने से अनिष्ट का नाश और सौभाग्य की वृद्धि होती है तथा जो स्त्रियों की चंचलता है वह गम्भीरता में परिणत हो जाती है। बुद्धि वर्धक, पुत्र, धन, यश एवं सम्पत्ति की प्राप्ति होती है।[2]

३- प्रवाल के अशुभफल-

अशुभ लक्षणों से युक्त प्रवालको धारण करने से मंगल सम्बन्धित रोग, व्याधियाँ तथा विषादिका भय होता है।

क. प्रवाल के शुभ फल-

शुभ लक्षण युक्त प्रवाल को धारण करने से मंगल ग्रह सम्बन्धि सभी रोगों का निवारण होता है। वीर्य और कान्ति को बढ़ाने वाला, विषादि दोषों का नाशक, अग्नि आदि भय को दूर करने वाला, बल और कीर्ति देने वाला होता है। धन धान्य से सम्पन्न बनाने वाला तथा विषदि दुखों की दूर करने वाला होता है। इसको आयु एवं अवस्था के अनुसार धारण करना चाहिए।[3]

४- माणिक्य के अशुभ फल-

अशुभ लक्षणों युक्त माणिक्य को धारण करने से सिर पीड़ा, ज्वर, पित्त हृदय रोग, विषज व्याधियाँ, तेजहीनता, मन्दाग्नि आदि रोग चिन्ता, मृत्यु, धननाशादि आपदाएँ उसको घेर लेती हैं।

क. माणिक्य के शुभ फल-

श्रेष्ठ लक्षणों से युक्त माणिक्य को धारण करने से यह मनुष्य को अत्यधिक सौन्दर्य सम्पन्न बनाता है। रोग नाशक, तेज, बल, बुद्धि, विद्या एवं शत्रु पर विजय तथा बलि बनाता है।[4]

१- एवं समस्तेन गुणोदयेन यन्मोक्तिकं योगमुपागतं स्यात्।
न तस्य भर्त्तारमनर्थजात एकोऽपि कश्चित्समुपैति दोषः ।। ग० पु०- ६६/४३

२- द्रष्टव्य र० वि०, पृ० -६४

३- द्रष्टव्य र० वि०, पृ० १३०-१३१, हि० वि० - पृ०-६३८

क- नजरांयांतिरत्नानिविद्रुमंमौक्तिंकविना।
राजादौष्टया[illegible]त्नानांमूल्यंहीनाधिकंभवेत् ।। शुक्र -श्लो०-७२, अ०-४, पृ०-१०२

४- द्रष्टव्य र० वि०, पृ० १६८-१६६

५- पन्ना के अशुभ फल-

अशुभ लक्षणों से युक्त एवं खण्डित पन्ने को धारण करने से त्वचा सम्बन्धि रोग, वायुजन्य पीड़ा, जिह्वा रोग, वाणी दोष, धनहानि, आकस्मिक कष्ट, निर्बलता एवं अनेक प्रकार के कष्ट उत्पन्न होते हैं।

क. पन्ना के शुभ फल-

शुभ लक्षणों से युक्त कान्तिमान पन्ने को धारण करने से बुध सम्बन्धि रोग, वाणी दोष सन्निपातादिक रोग, निर्बलतादि रोगों का क्षय, बलवृद्धि, धनसम्पत्ति लाभ, यश, कीर्ति विद्यादि लाभ, भूतप्रेतादि बाधा का निवार्ण, परस्पर प्रेम-लाभ, मुक़दम्मे में विजय और सर्व सुख प्रदान करने वाला होता है।[1]

धारण विधि-

स्वच्छ, भारी, स्निग्ध, मृदु, अव्यंग और बहुरंगवाला ऐसा पन्ना शृंगारी मनुष्यों को धारण करना चाहिए। खरखरा, रूखा, मलिन, हलका, कान्तिहीन, कल्मषयुक्त त्रासयुक्त और विकृतांग ऐसे पन्ने को धारण नहीं करना चाहिए।[2]

पन्ना धारण करने वाले की शुचिता की रक्षा करता है। यदि उसके विरुद्ध कोई षडयंत्र कर रहा हो तो यह उस व्यक्ति से रक्षा करता है। पन्ना पहनने वाले की बुद्धि तथा स्मृति शक्ति बढ़ती है। जो व्यक्ति पन्ना खरीद सकने में सामर्थ्य न रखता हो तो उन्हें हरित नील मणि धारण करनी चाहिए। इसका भी वही प्रभाव होता है जो पन्ने को धारण करने से होता है।[3]

---

१. स्वच्छंगुरुस्निग्धगात्रंचमार्दवसमेतमव्यंगंबहुरंगम्।
शृंगारीमरकतं बिभृयात्। शर्करिलंरुक्षंमलिनम्।।
लघुहीन कान्ति कल्मषं त्रासयुतं वि.तांगंमरकत।
ममरोपिनोपयुंजीत।। शालि० नि० भू०- पृ०- ७४५

२. र० परि०- पृ०- १०६

३- र० वि०, पृ० १६४-१६५

६- नीलम के अशुभ फल-

अशुभ लक्षणों युक्त नीलम को धारण करने से विभिन्न प्रकार के रोग व्याधियाँ अनेक प्रकार की आकस्मिक घटनाएँ, भय और शोक उत्पन्न होते हैं।

क. नीलम के शुभ फल-

शुभ लक्षणों से युक्त नीलम को धारण करने से लक्ष्मी, आयु, अरोग्य, समर्थ, वैभव, व्याधियों का नाश, इष्ट सिद्धि, यश-कीर्ति, बल, वीर्य वृद्धि एवं मानसोल्लास की प्राप्ति होती है। साधारण व्यक्ति भी नीलम धारण करने से राजा, महाराजा, सेठ, साहुकार, नेता, अभिनेता, विद्ववान, विदूषी किसी के भी सामने हत प्रभ नहीं होता है अर्थात् निर्भयता एवं मानसिक बल बना रहता है।[२]

७- वैदूर्य के अशुभ फल-

खण्डित एवं अशुभ लक्षणों से युक्त वैदूर्य को धारण करने से पित्त, रक्तादि रोग, बुद्धि, आयु, बल एवं धनादि की हानि करता है।

क. वैदूर्य के शुभ फल-

शुभ लक्षणों से युक्त वैदूर्य को धारण करने से केतु ग्रहके अरिष्ट होने से उत्पन्न व्याधियों, पित्तादि रोगों को नष्ट करता है। बुद्धि, आयु तथा बल को बढ़ाता है। मन्दग्नि की दीप्ति करता है। मलमोचन कार्य करता है।[३]

८- पुखराज के अशुभ फल-

अशुभ लक्षणों वाले पुखराज को धारण करने से मस्तिष्क, कर्ण, जिह्वा, नासा, नेत्रादि प्रत्यंगों में पीड़ा होने लगती है। शरीर मोटा होने लगता हैं। मुखरोगदि होते है। बुद्धि, विद्या एवं कार्यों में विघ्न उत्पन्न होते हैं और अकस्मात् धन हानि होती है।

क. पुखराज के शुभ फल-

शुभ लक्षणों से युक्त पुखराज को धारण करने से मस्तिष्क, कर्ण, जिह्वा, नासा, नेत्रादि प्रत्यंगों में पीड़ाका निवारण होता है। शरीरका मोटापन कम होता है। मुखरोग, राजयक्ष्मा, श्वास- कास, हृदय रोग, आम वात, सन्धिवात, मेदारोग आदि व्याधियों का शमन होता है।

१-द्रष्टव्य र० वि०, पृ० १६४-१६५

२-द्रष्टव्य तदेव- पृ०- १८६

३-द्रष्टव्य तदेव- पृ०- २०५

धन, यश, कीर्ति, बल बृद्धि, विद्या एवं पुत्रलाभ होता है। वैवाहिक सुख प्रधान करता है।[1] सर्प आदि विष को शान्त करता है। बृहस्पति की कुपित अवस्था को शान्त करता है एवं बृहस्पति को बली करता है। शुभ लक्षणों से युक्त पुखराज को धारण करने से स्त्रियों को पुत्र की प्राप्ति होती है।[2]

धारण गुण (ज्योतिषशास्त्रीय अभिमत)

जो व्यक्ति उत्तम छायाविशिष्ट, पीतवर्ण, गुरु, विशुद्ध, वर्ण, स्निग्ध, निर्मल, सुवृत्त और सुशीतल पुष्पराग का विशेष गुण यह है कि इसको धारण करने से बन्ध्या स्त्री भी पुत्रवती हो जाती है।[3]

पुखराज को धारण करने से रात को डर नहीं लगता। कायरता समाप्त हो जाती है। बुद्धि की वृद्धि होती है, साथ ही क्रोध को और पागलपन को शांत करता है और आकस्मिक मृत्यु की आशंका को दूर कर देता है।[4]

६- गोमेद के अशुभ फल-

खण्डित एवं कान्तिहीन आदि लक्षणों से युक्त गोमेदको धारण करने से अनेक प्रकार की शारीरिक एवं मानसिक व्याधियाँ उत्पन्न होती हैं। भूत प्रेतादि का भय, शत्रु का भय, अकस्मात् हानि एवं युद्ध क्षेत्र में पराजय होती है।

क. गोमेद के शुभ फल-

शुभ लक्षणों से युक्त गोमेद को धारण करने से राहु की कुदृष्टि से उत्पन्न सभी मानसिक एवं शारीरिक व्याधियों का शमन होता है। भूतप्रेतादि बाधा की शान्ति होती है। अन्न, धन, पुत्र, सम्पत्ति अथवा वैभव की प्राति होती है। मनुष्य को भद्रतामय जीवन यापन करते हुए समाज में प्रतिष्ठा उपलब्ध होती है। वन्य हिंसक पशुओं से किसी प्रकारका शारीरिक भय उत्पन्न नहीं होता है। दाम्पत्य जीवन सुखमय एवं स्नेह बन्धन बना रहता है। युद्धक्षेत्र में किसी प्रकार का भय नहीं होता और यश कीर्ति तथा बल को बढ़ाता है। सर्पादि विष को शान्त करता है। राहु के अनिष्ट प्रभाव को शमन करके शुभ फल प्रदान करता है।[5]

धारण विधि-

जो भारी सफेद रंग की, चिकनी तथा अत्यन्त पुरानी और स्वच्छ हो ऐसी गोमेद मणि को धारण करने से लक्ष्मी और धन-धान्य की वृद्धि होती है। जो हलकी, विरूप, खरदरी, स्नेह से लिपटी हुई सी मलिन है उस गोमेद मणि को धारण करने से सम्पत्ति भोग और वीर्य का नाश होता है। स्फटिक मणि की ही गोमेद मणि बना लेते हैं।[6]

---

१. गुरुप्रवाढयः सितवर्णरूपः स्निग्धोमृदुर्वातिपुराणः।
स्वच्छस्तुगोमेदमणिर्धृतीयं करोति लक्ष्मीं धन धान्य वृद्धिम्।।
लघुर्विरूपोऽतिखरोन्यमानः स्नेहोपालिप्तोमलिनः खरोऽपि।
करोतिगोमेदमणिर्विनाशंसम्पत्तिभोगाबलवीर्य्याराशेः। शालि० नि० भू०- पृ०- ७५०

३. [illegible], र० वि०- पृ०- ११४, ५- द्रष्टव्य र० वि०, पृ० २६४-२६५

६- द्रष्टव्य- ग० पु०, अ० ७४, श्लो०-५

४.५ रत्न धारण का उपयुक्त समय

आचार्यों ने रत्नों को धारण करने के लिए निश्चित समय मुहूर्त तथा नक्षत्र बताए हैं। आचार्यो द्वारा बताए गए उपयुक्त समय में रत्न को धारण करने से अनिष्ट फल का शमन होता है। यदि रत्नों को बताए गए समय के अनुसार धारण नहीं किया जाता है तो वह पूर्ण रूप से फल प्रदान करने में असमर्थ हो जाते हैं।

आभूषण तथा हथियार बनाने के लिए जो मुहूर्त बताए गए है वे इस प्रकार हैं- त्रिपुष्कर योग के दिन चरक्षिप्त और ध्रुवसंज्ञक नक्षत्रों में आभूषण बनाना शुभ बताया गया है। यदि मोती, हीरा, माणिक्य आदि रत्न आभूषणों में जड़ित करने हों तो तीक्ष्ण और उग्र संज्ञक नक्षत्रों मूल, ज्येष्ठा, आर्द्रा, अश्लेषा, तीनों पूर्वा, भरणी और मघा इन नक्षत्रों को छोड़कर शेष नक्षत्रों में सूर्य और मंगलवारों तथा मेष, वृश्चिक और सिंह लग्नों में रत्न जड़ित आभूषण बनाने चाहिए। चर, क्षिप्र, ध्रुव और मृदुसंज्ञक नक्षत्रों में चन्द्र शुक्रवारों कर्क वृष तुलादिक शुभ दिनों व लग्नों में मोती से जड़ित आभूषणों का निर्माण शुभ कहा गया है।[१]

रत्न घटन कार्य के लिए जो मुहूर्त बताया गया है वह इस प्रकार है- भरणी, कृत्तिका धनिष्ठा, ज्येष्ठा, स्वाती, रोहिणी, चित्रा, आर्द्रा, मूला, विशाखा नक्षत्रों में अशुभग्रहों के वासरों में तथा स्थिर लग्नों में वैकटिक कर्म (रत्न घटन कार्य) शुभ एवं हितकर माना गया है।[२] विभिन्न प्रकार के रत्नों का समय इस प्रकार से दिया गया है-

१. **हीरा**- अष्टकोणाकृति से युक्त पौषमास में शुक्रवार को रोहिणीनक्षत्र में हीरे को धारण करना चाहिए।[३]

२- **मुक्ता**- मुक्ता को शुक्ल पक्ष में सोमवार को रोहिणी नक्षत्र के योगकाल में धारण करना चाहिए।[४]

३- **प्रवाल**- प्रवाल को मंगलवार के दिन अनुराधा नक्षत्र में धारण करना चाहिए।[५]

४- **मरकत**- मरकत को बुधवारके दिन उत्तराफाल्गुणी नक्षत्र में धारण करना चाहिए।[६]

५- **पुष्पराग**- पुष्पराग को मार्गशीर्ष मास में बृहस्पति के दिन पुष्य नक्षत्र में धारण करना चाहिए।

६- **नीलम**- नीलमको आषाढ मास में शनिवार को श्रावण नक्षत्र में धारण करनाचाहिए।[७]

७- **माणिक्य**- माणिंक्य को चेत्रमास में रविवार के दिन रवि-पुष्य योग में धारण करना चाहिए।[८]

८- **गोमेद**- गोमेद को उत्तराफाल्गुणी नक्षत्र में बुधवार को धारण करना चाहिए।[९]

९- **वैदूर्य**- वैदूर्य को गुरु-पुष्य योग में धारण करना चाहिए।[१०]

१- द्रष्टव्य मू०चि० पृ०- ८७-८८   २- ज्योतिर्विदामरणम, पृ०- ६१६
३- द्रष्टव्य र० वि०, पृ०- १८   ४- र० वि० पृ०- ६२
५- ,, ज्यो० र० पृ०-५२   ६- ,, ,, ,,
७- ,, र० वि० पृ०- २६४   ८- र० वि० पृ०- १८६
९- ,, ज्यो० र०, पृ०- ५२   १०- ज्यो० र० पृ०- १६८

पंचम अध्याय

चिकित्सा शास्त्र में रत्नों का प्रयोग

रत्नों का प्रयोग सर्वप्रथम सजावट तथा आभरण के लिए किया जाता था। बाद में ज्योतिषियों ने इससे होने वाले शुभ-अशुभ फलों का विवेचन किया और चिकित्सादि प्रयोगों में इन रत्नोंकी भस्मों से अनेक प्रकार के रोगों का उपचार होता है जिन में से कुछ प्रमुख रत्नों की भस्मो एवं उन से दूर होने वाले रोगों का वर्णन आगे किया जारहा है। शोधन एवं मारण विधि से भस्म तैयार कर के रत्नों को चिकित्सा प्रयोग में लाया जाता है।

५.१ रत्नों का शोधन एवं भस्मीकरण

१- सर्वरत्न शुद्धि- शुद्ध अमल के साथ माणिक्य, जयन्ती से मुक्ता की, विद्रुम को खर तथा कांजी वा गोदूध के साथ, पुष्प राग को सन्धव नमक, कुलत्थ के क्वाथ संयोग से, जावल के जल से वज्र, नीलमणि को नीली के रस से गोमेद और वैदुर्य को त्रिफला के जल से शुद्धि होती है।[1]

२- सर्वरत्नानां शोधनम्- सभी प्रकार के रत्नों को शोधन करने के लिए विधि- सौ पल कुलथी को एक द्रोण जल में पकावे और चौथाई रहने पर उतार कर छान लेवें। मुक्तादि आठों मणि तथा मैनसिलादि को इस से बार-बार सींचते हुए तीन दिन तक धूप में सुखा कर शोधें। इस प्रकार सब रत्न और मणि आदि निस्सन्देह शुद्ध हो जाते हैं।[2]

३- अवशिष्टरत्नानां शोधनविधि- सूर्यकान्त, चन्द्रकान्त, नील मणि, वैदूर्य, पुखराज, गारुड़, पन्ना आदि तथा सर्पादिक की मणि, मोती तथा प्रवाल आदि रत्नों को जयन्ती शाक के स्वरस में दोलयन्त्र की विधि से एक पहर तक पकावे तो इन का शोधन हो जाता है।[3]

मारण विधि- घीग्वार का रस, चौलाई का रस या स्त्री का दूध, किसी एक में अग्नि में तपा तपा कर सात बार बुझाने से ही मोती(८ प्रकार का), मूँगा तथा नाना वर्ण वाले रत्नसमूह जल्द ही भस्म में परिणत हो जाते हैं जो रंग में भिन्न-भिन्न होती हैं। वज्र की शोधन एवं मारण विधि से सब रत्नों का 'शोधन एवं मारण कर सकते हैं।[4]

---

१. शुद्धयत्यम्लेन माणिक्यं जयन्त्या मौक्तिकं तथा। विद्रुमं क्षारवर्णेण तार्क्ष्यं गोदुग्धकैस्तथा।।
रोचनाभिश्च गोमेदं वैदूर्यं त्रिफलाजलैः।। शाङ्र्गधर सं० मध्यखण्डे- ११/६२

२. कुलत्थस्य पलशतं करिद्रोणेन पाचयेत्। तस्मिन् पादावशेषे च क्वाथेऽष्टौ मणयः शिलाः।।
आतपे त्रिदिनं शोध्याः क्वाथसिक्ताः पुनः पुनः। शुध्यन्ते सर्वरत्नानि मणयश्च न संशयः।।
भैष० र० ०१/१६१-१६३

३. स्वेदयेद्दोलिक्नयन्त्रे जयन्त्याः स्वरसेन च। मणिमुक्ताप्रवालानां यामकं शोधनं भवेत्।।
शाङ्र्गधर सं० मध्यखण्डे-११/८६

४. कुमार्यास्तण्डुलीयेन स्तन्येन च निषेचयेत्। प्रत्येकं सप्तवेलं च तप्ततप्तानि कृत्स्नशः।।
मौक्तिकानि प्रवालानि तथा रत्नान्यशोषतः। क्षणाद्विविधवर्णानि म्रियन्ते नात्र संशयः।।
उक्तमाक्षिकवन्मुक्ताः प्रवालानि च मारयेत्। वज्रवत्सर्वरत्नानि शोधयेन्मारयेत्तथा।।
शाङ्र्गधर सं० मध्यखण्डे-११/९०-९२

१- हीरे का शोधन-

हीरे का शोधन विभिन्न प्रकार से बताया गया है-

१- सर्वप्रथम उत्तम हीरे को कपड़े में रखकर पोटली बनाकर **'दोलायन्त्र'** की विधि से कुलथी के क्वाथ अथवा कोदों के क्वाथ अथवा चौलाई के रस में या जयन्ती के रस में लटका कर एक प्रहरतक स्वेदन करना चाहिए। इसके पश्चात् हीरे को निकाल कर उष्णोदक से प्रक्षालन करके धूप में सुखाकर हीरे की शुद्धि हो जाती है।[1]

२- हीरे के चूर्ण को पोटली में रखकर कोदो के क्वाथ को दोलायंत्र में रखकर सात दिनों तक लगातार आँच देने से हीरे की उत्तम शुद्धि हो जाती है।

३- सेहुडके दूध में १०० बार डुबाने मात्र से ही हीरे की शुद्धि हो जाती है। कण्टकारी के क्वाथ में दोलायंत्र द्वारा सात दिनों तक लगातार स्वेदन करके से भी हीरे की शुद्धि हो जाती है।

४- बहुत ही तेज अग्नि पर एक दृढ मंजूषा में पारद भर कर हीरे को इस मंजूषा में १०० बार डूबोने पर हीरे की शुद्धि हो जाती है।[2]

५- कटेली के कन्दके भीतर हीरे को रखकर उपर से वस्त्र लपेटकर कुलत्थ तथा कोदों के क्वाथ में दोलायन्त्र विधि से ३दिन तक स्वेदन करने से हीरे का शोधन हो जाता है।[3]

६- किसी शुभ दिन में कटेली के कन्द के भीतर हीरे को रख कर और कटेली के कन्द के टुकड़े से छेद को बन्द करके कन्द को भैंस के गोबर से लेप करें। रात्रि में लेप किए हुए कन्द को ४ घण्टे तक उपलों में पकाकर प्रातः काल घोड़े के मूत्र में बुझाना चाहिए। सात बार इसी प्रकार की प्रक्रिया को करने से शुद्ध हीरा प्राप्त हो जाता है अर्थात् हीरे की शुद्धि हो जाती है।[4]

७- हीरे को कटेली के कन्द में भरकर कोदा के क्वाथ में दोलायंत्र विधि से भी शोधन किया जा सकता है।[5]

८- हीरे को कटेली के कन्द में भरकर इस कन्द पर मृत्तिका का एक मोटा लेप करने के बाद हीरे को घोड़े के मूत्र अथवा सेहुडके दूध में बुझाने पर हीरे की शुद्धि हो जाती है।[6]

९- हीरे को २१ बार तपा-२ कर गधेके मूत्र में बुझानें पर हीरे की शुद्धि हो जाती है।[7]

१- द्रष्टव्य सि० भे० सं०, पृ० ५२६-५२८, २- द्रष्टव्य र० वि०, पृ० -२९

३- कुलत्थकोद्रवक्वाथे दोलायन्त्रे विपाचयेत्। व्याघ्रीकन्दगतं वज्रं त्रिदिनातद्विशुद्ध्यति।र०वि०- पृ-२९

४- गृहीत्वाह्नि शुभे वज्रं व्याघ्रीकन्दोदरेक्षिपेत्। महिषीविष्ठयालिप्त्वा करीषाग्नौ विपाचयेत्।।
त्रियामायां चतुर्यामं यामिन्यन्तेऽश्वमूत्रके। सेचयेत्पाचयेदेव सप्तरात्रेण शुद्ध्यति।। तदेव-पृ०-२९

५- व्याघ्रीकन्दगतं वज्रं दोलायन्त्रेण पाच्येत्। सप्ताहं कोद्रवक्वाथे कुलिशं विमलं भवेत्।। र०वि, पृ०-३०

६- व्याघ्रीकन्दगतं वज्रं मृदा लिप्तं पुटे पचेत्। आहोरात्रात्समुद्धृत्य ह्यमूत्रेण सेचयेत्।।
वज्रीक्षीरेण वा सिंच्यात्कुलिशं विमलं भवेत्।। र०वि, पृ०-३०

७- तप्तं तप्तं तु तद्वज्रं खरमूत्रं निषेचयेत्। पुनस्ताप्य पुनः सेच्यमेवं कुर्यात्त्रिसप्तधा।।
र०वि, पृ०-३०

वज्र शोधन द्वितीय विधि-

(१) कुलथी के काढ़े और सेंधा नमक मिलावें फिर शुद्ध हीरे को अग्नि पर धमा कर इक्कीस बार उसमें बुझावें। इससे हीरा भस्म में परिणत होता है।

(२) हींग तथा सेंधा नमक के कल्क से लिप्त कर वज्र को अग्नि पर धमाकर कुलथी के काढ़े में २१ बार बुझावें। इस प्रकार करने से हीरा भस्म हो जाता है।

तृतीय विधि-

मेंढक को पकड़ कर काँसे में ऐसा रखें कि भागने न पावे फिर उसे भयभीत करें। इससे वह उस में मूतेगा। इस मूत्र को काफी प्रमाण में जमा कर लेवे। हीरे को अग्नि पर धमा धमा कर २१ बार या जब तक भस्म न हो जाय बुझाते रहें। इस से भी भस्म बनती है।[1]

हीरे का भस्मीकरण-

शुद्ध तवकिया हरताल को खटमल डाल डाल कर पीसें, जब तक वह लेप योग्य न हो जाय। इस हरताल को हीरे पर लेप कर गोला बनावे और गोले को आग पर धमा कर घोड़े के पेशाब में बुझा देवें। इस प्रकार २१ बार करने से हीरे की भस्म बन जाती है। इस चूर्ण रूप भस्म का सर्वत्र उपयोग करें।

१- शुद्ध हीरा प्राप्त हो जाने पर हीरे की भस्म बनाई जाती है। शुद्ध किए हुए हीरे को कूट कर बारीक चूर्ण बनाना चाहिए। बारीक चूर्ण को घिसने वाले खरल में डालकर हीरे की मात्रा के बराबर-२ पारद भस्म या रससिन्दूर, शुद्धमैनसिल और शुद्ध गन्धक मिलाकर इसे सम्पुट में बन्दकर गजपुट में रखकर फूंकना चाहिए। स्वांगशीत होने पर हीरे को निकाल कर सूक्ष्म चूर्ण कर और इसमें शुद्ध मैनसिल और शुद्ध गन्धक मिलाकर पुनः घोंट कर पुट करना चाहिए। इसी प्रकार से बारह पुट ओर देने चाहिए। इस प्रकार से १४ पुट में वज्र की उत्तम भस्म तैयार हो जाती है।[2]

२- हरताल, गंधक, पार और स्वर्णमाक्षिक और शुद्धिकृत हीरे को रखकर बेर के क्वाथ की सात भावनायें ओर देनी चाहिए। भावना देने के पश्चात् एक गोला बना लें। वारणपुट में इस गोले को सम्पुटित करके उपलों की अग्नि में पाचन करने से हीरे की भस्म हो जाएगी।[3]

३- पारद गंधक और मनः शिला समान भाग लेकर विशोधित हीरे को उसमें रखकर वारणाख्य पुट द्वारा सम्पुटित करके प्रबल अग्नि में तब तक पाचन करें जब तक अच्छी भस्म न हो जाए। पुनः पुनः आँच देने के बाद अधिक से अधिक १४ बार पुट देने पर उत्तम भस्म हो जाएगी।[4]

१- द्रष्टव्य शङ्र्गधर सं० मध्यखण्ड- ११/८४-८६

२- द्रष्टव्य सि० भै० सं०, पृ०- ५४१

३- द्रष्टव्य र० वि०, पृ० -३१

४- द्रष्टव्य तदेव

४- हरताल और मनः शिला समान भाग लेकर मजबूत खरलमें विशोधित हीरे को डाल कर तीन साल से लगे हुये कपास की जड़ के स्वरस के द्वारा भावना देने के बाद धाम में सुखाना चाहिए। इसके पश्चात् सम्पुट में रखकर महापुट द्वारा १४ बार फुँकने पर शुद्धभस्म तैयार हो जाएगी।[1]

५- हींग, सेंधा, नमक और कुलथी के क्वाथ में हीरे को २१ बार बुझाने पर हीरे की भस्म प्राप्त होती है। मेढे का सींग, सर्प की हड्डी,कछुवे की खोपड़ी, खरगोश के दांत और अम्लवेतस इन सभी को थूहर के दूध में पीसकर लुगदी बनाने के बाद लुगदीके ही मध्य में विशोधित हीरे को रखकर धोंकनी से धोंकने पर हीरे की भस्म हो जाएगी।[2]

मुक्ता का शोधन-

१- मुक्ता भस्म बनाने के लिए सर्वप्रथम मुक्ता का शोधन किया जाता है। चमकदार उत्तम अनविधे मोतियों को लाकर कपड़े की पोटली में बाँधकर **'दोलायन्त्र'** की विधि से जयन्ती के स्वरस में एक प्रकार स्वेदन करके पोटली को खोलकर मोतियों को उष्णोदक से प्रक्षालन करके धूप में सूखाने पर शुद्ध मुक्ता प्राप्त होती है।[3]

२- एक शराव (चाइना क्ले-चीनी मिट्टी के प्याले) में मोतियों को रखकर सुधोदक (चुने का पानी (lime water) उस प्याले में भर दें। इस प्याले को लोह त्रिपादिका (Spirit lamp) के द्वारा लगातार दो-तीन घण्टे तक आँच देने से मोती का भली-भाँति शोधन हो जाता है।[4]

३- मोतियों को एक कपड़े की पोटिली में बाँधकर दोलायंत्र में जयन्ती (Sesbania aegy- ptica,n.) शिम्बी वर्ग-(leguminosae.) के अन्तर्गत अपराजितादि अपवर्ग-(papiliona ceae) के पत्तों का स्वरस डालकर पोटली को लटकाकर लगातार तीन घण्टे तक स्वेदन करने से मोती का शोधन हो जाता है।

४- मोतियों को एक कपड़े की पोटली में बाँधकर दोलायंत्र में अगस्त्य (Sesbania Grand- iflorior,n.) शिम्बी वर्ग- leguminosae के अन्तर्गत अपराजितादि उपवर्ग. (popilionaceae) पत्र स्वरस डालकर लोह त्रिपादिका (लोहे की तिपाई- Tripod) पर रखकर लगातार तीन घण्टे की आँच देकर स्वेदन करने से शुद्ध मुक्ता प्राप्त होती है।[5]

१-द्रष्टव्य र० वि० पृ० ३१
२-द्रष्टव्य ,, ,, ,,
३-द्रष्टव्य सि० भे० सं०, पृ०- ५२१
४-द्रष्टव्य र० वि०, पृ०- १००
५-द्रष्टव्य तदेव - - -

मुक्ता का भस्मीकरण-

१- शुद्ध रूप से प्राप्त हो जाने के बाद मुक्ता की भस्म तैयार की जाती है। सर्वप्रथम शुद्ध मुक्ता को खरल में डालकर सूक्ष्म चूर्ण बनाना चाहिए। इस में अर्क गुलाब, गो दुग्ध अथवा घीकुवार का रस इतना ही मिलाना चाहिए। जितना कि चूर्ण द्रव्य में पूर्णतया डूब जाये। फिर इस को मिलाकर थोड़ी-२ देर बाद खरल को धूप में रखकर सुखाना चाहिए। इस प्रकार से घोट कर छोटी-छोटी टिकियां बनाकर धूप में अच्छी तरह से सुखा लें। इस द्रव्य को शराव (चाइना क्ले- चीनी मिट्टी के प्याले) सम्पुट में बन्धकर धूप में सुखाकर **'लघुपुट'** में रखकर फूँक देना चाहिए। स्वांगशीत होने पर सकोरेमें से मोती को निकालकर खरल में बारीक पीसना चाहिए। इस भांति से उपर्युक्त प्रकियानुसार कुल तीन पुट देने से मोती की उत्तम भस्म तैयार हो जाती है।[1]

२- शोधित मोतियों को खरल में डालकर इसमें गुलाब का अर्क डालकर मर्दन करने के बाद शराव सम्पुट में रखकर लघुपुट में फूंकनेके बाद स्वांगशीत होने पर सम्पुट से बाहर निकाल कर पुनः अर्क गुलाब में मर्दन करके शराव सम्पुट में बन्दकर लघुपुट में फूंके। यह विधि तीन बार करने से मुक्ताभस्म तैयार हो जाती है।[2]

३- विशोधित मोतियों को एक खरल में डालकर गोदुग्ध के साथ भली भांति मर्दन करके शराव सम्पुट में बन्द करके लघु पुट में तीन बार फूंकने पर मुक्त भस्म चन्द्रमाके समान श्वेत वर्ण की प्रस्तुत हो जाती है।[3]

३- प्रवाल का शोधन-

१- उत्तम प्रवाल की शाखाओं को लेकर छोटे-छोटे टुकड़ें करके कपड़े को पोटली में बांधकर **'दोलायन्त्र'** की विधि से जयन्ती (अरणी) के स्वरस(अथवा क्वाथ) से भरे हुए पात्र में लटका कर एक प्रहर स्वेदन करना चाहिए। जयन्ती के स्थान पर चौलाई का स्वरस भी लिया जा सकता है। पोटली में रखे हुए प्रवाल को निकाल कर उष्णदिक से प्रक्षालन करना चाहिए। इस से प्रवाल की शुद्धि हो जाती है।[4]

२- प्रवाल को एक पके हुए सिकोर में रखकर आग पर तपाना चाहिए। जब खूब तप जाए तो घीकुवार के रस में बुझाना चाहिए। इस प्रकार ७ बार तपा-तपा कर बुझाने से मूंगा शुद्ध हो जाता है। अगर विशेष शुद्धि करनी हो तो इस प्रकार सात बार

१-द्रष्टव्य सि० भे० सं०, पृ०-५३७
२-द्रष्टव्य र० वि०, पृ०-१००
३-द्रष्टव्य तदेव -- --
४-द्रष्टव्य सि० भे० सं०, पृ०-५२१

तपा-तपा कर चौलाई रस में बुझा लेना चाहिए। तपानेके पश्चात् प्रवाल का रंग बदल कर मैला या मटमैला हो जाता है।[1]

४- चावलके पानी में दोलायंत्र द्वारा एक याम तक पोरस्विन्न करने से प्रवाल की उत्तम शुद्धि हो जाती है।[2]

५- सज्जीक्षार के पानी के साथ एक याम तक पकाने से भी उत्तम शुद्धि हो जाती है। ज्यन्ती के स्वरस में एक याम तक परिस्विन्न दोलायंत्र द्वारा करने से भी प्रवाल की शुद्धि हो जाती है।[3]

२- प्रवाल का भस्मीकरण-

१- शुद्ध प्रवाल को बारीक चूर्ण करके इसमें घीगुवार का रस इतना डालें कि प्रवाल चूर्ण रस में पूर्णरूप से डूब जाए। इसे पूर्णता मिलाना चाहिए। बीच-२ में कुछ समय के लिए खरल को धूप में रखकर सुखा लेना चाहिए। जब टिकिया बनाने योग्य गाढ़ा हो जाए तब उसे धूप में सुखाकर शराव-सम्पुट में बन्द कर ऊपर से सन्धिबंधन करके धूप में सुखाना चाहिए। इसे काण्डों की आंचसे पुट देना चाहिए। स्वांगशीत हो जाने पर प्रवाल को निकाल कर खरल में डालकर पीसना चाहिए। तदन्तर इसी प्रक्रिया से कुल तीन पुट देने से प्रवाल की श्वेतवर्ण की उत्तम भस्म तैयार हो जाती है।[4]

२- शुद्ध मूंगा ८ तोले, शुद्ध पारा १ तोला, शुद्ध आंवला, सार गन्धक १ तोला लेकर पहले गन्धक और पारे को खरल में डालकर कजली कर लेना चाहिए। जब कजली हो जाए तब उस कजली में शुद्ध मूंगा मिलाकर घीकुवार का रस डालते हुए मिलाना चाहिए। ज्यों-ज्यों रस सूखता जाए, त्यों-त्यों नया रस डालते रहना चाहिए। इस प्रकार १२ घण्टे की घुटाई होने के पश्चात् उसे सराव-सम्पुट में रखकर कपड़ मिट्टी कर के सुखा लेना चाहिए और उस सराव सम्पुट को एक गजपुटकी आग में फूंक लेना चाहिए। स्वांगशींतल होने पर उसको खोलकर सुन्दर सफेद गुलाबी रंग माइल मूंगा भस्म तैयार हो जाती है।[5]

३- शुद्ध प्रवाल को लेकर विछिया बूटीके रसमें खरलकर के शराव सम्पुट में रखकर गजपुट में फूंक देना चाहिए। इस प्रकार तीन बार गजपुट में फूंकने से मूंगाभस्म बन जाती है।[6]

१- द्रष्टव्य वनो० चन्द्रो०, पृ०-४८

२- तण्डुलयिद्रवेणेह दोलायंत्रे तु यामकम्।
प्रवालक परिस्विन्नं शुद्धिमायांत्यनुत्तमम्।। र० वि०, पृ०-१३१

३- द्रष्टय र० वि०, पृ०-१३१

४- द्रष्टव्य सि० भै० सं०, पृ०-५३६

५- द्रष्टव्य वनो० चन्द्रो०, पृ०-४७

६- द्रष्टव्य तदेव - - - - - -

४- शुद्ध प्रवाल पांच तोले लेकर एक सरावले में नीचे घीगुवार का गूढा रखकर ऊ
पर उस प्रवाल को रख देना चाहिए। फिर उस प्रवाल पर आधा पाव घीगुवार का गूढ़
रखकर ऊपर से दूसरा सरावला ढककर दोनों ही दरजों पर कपड़ मिट्टी करके सुखा
लेना चाहिए। उसके पश्चात् एक गजपुट की आंच में उस शराव सम्पुट को रखकर
फूंक देना चाहिए जिससे शुद्ध प्रवाल भस्म तैयार हो जाएगी।[1]

५- विशोधित प्रवाल को गोदुग्ध में पीसकर छोटी-छोटी टिकड़ी बनाकर गजपुट में एक
ही बार फूंक देने से भस्म बन जाती है।[2]

६- विशोधित प्रवाल को केलेके रसके साथ पीसकर टिकड़ी बनाकर गजपुट में फूंकने
से उत्तम भस्म बन जाती है।[3]

७- घृत कुमारी के स्वरस में विशोधित प्रवाल को पीसकर टिकड़ी बना कर तीन बार
गजपुट में फूंकने पर उत्तम भस्म तैयार हो जाती है।[4]

४- माणिक्य का शोधन-

१- सर्वप्रथम उत्तम माणिक्य के छोटे-छोटे टुकड़े करके स्वच्छ वस्त्र की पोटली में बाँध कर **'दोलायन्त्र'** की विधि से नींबू के रस से भरे हुए पात्र में लटका कर एक प्रहर तक स्वेदन करना चाहिए। नींबू के रसके स्थान पर बेर का काढ़ा या रस, खट्टे अनार का रस, इमली का रस इत्यादि अम्ल वर्ग की किसी एक वस्तु के रस का प्रयोग किया जा सकता है। स्वेदनके पश्चात् पोटली को निकाल कर माणिक्य को पृथक् करके उष्णोदक से प्रक्षालन करके धूप में सुखा लेने पर शुद्ध माणिक्य प्राप्त होता है।[5]

२- माणिक्य रत्न के सोधन के लिए दोलायंत्र की सहायता द्वारा शोधन करना पुरानी और सुगम विधि है। नींबू के रस में दोलायन्त्र की सहायता से एक याम तक स्वेदित करने से माणिक्य की शुद्धि हो जाती है अथवा बीजपूर (बिजोरानीबू) citrusacid (साइट्रसएसिडा) जम्बीरी, नींबू, कागजी नीबू ,मीठा नीबू(Sweetlemon) कमरख (carambola) इमली (Tama rind tree) इन अम्लवर्ग के स्वरस के साथ दोलायंत्र की सहायता से माणिक्य का विपाचन करके उत्तम शुद्धि हो जाती है।[6]

१- द्रष्टव्य वनो० चन्द्रो०, पृ०- ४७
२- द्रष्टव्य र० वि०, पृ०-१३०
३- द्रष्टव्य तदेव - - -
४- द्रष्टव्य तदेव - - -
५- द्रष्टव्य सि० भे० सं०, पृ०-५२०
६- द्रष्टव्य र० वि०, पृ०- १३०

३- नींबू का सत(citricacid) कुछ पानी के साथ पोर्सले के कटोरे में रखकर सुराप्रदीप (spirit lamp) पर गरम करे, उसी कटोरे में माणिक्य भी डालकर तब तक गर्म करे जब तक द्रवांश उड़ न जाए। बाद में जल में धो लेने पर उत्तम शुद्धि हो जाता है।[1]

२- माणिक्य का भस्मीकरण-

१- शुद्ध माणिक्य प्राप्त हो जाने के बाद उसे खरल में डालकर बारीक पीसना चाहिए। उसमें इसी के बराबर शुद्धगन्धक, शुद्ध हरताल और शुद्ध मैनसिल मिलाकर खरल करना चाहिए। फिर उसमें नींबू का रस अथवा बड़हल का रस डालकर अच्छी तरह से घोट कर छोटी-२ टिकियां बनाकर धूप में सुखाने पर उसे शराव सम्पुट में बन्दकर धूप में सुखाकर 'गजपुट' में रखकर फूंक देना चाहिए। स्वांगशीत होने पर माणिक्य को निकाल कर बारीक पीसकर उपयुक्त प्रक्रियानुसार कुल आठ पुट देनें से माणिक्य की उत्तम भस्म तैयार हो जाती है।[2]

२- बहुत ही अच्छी प्रकार से शोधन किए हुए माणिक्य को खूब बारीक चूर्ण करके माणिक्य की समान मात्रा में ही मनः शिला, हरिताल और गंधक प्रत्येक को अलग-अलग लेकर मिला लें और इन चारों वस्तुओं को नींबूके रस से सात दिन तक घोटना चाहिए। इस के पश्चात् टिकियां बनाकर वारणपुट नामक विधि से आठबार पुट देने पर पीली प्रभा रहित भस्म तैयार होजाएगी।[3]

१- नीलम का शोधन-

१- उत्तम नीलम को स्वच्छ कपड़े की पोटली में बाँधकर **'दोलायन्त्र'** की विधि से नील के स्वरस से भरे हुए पात्र में लटका कर एक प्रहर तक स्वेदन करना चाहिए। उस कपड़े की पोटली में से नीलम को निकालकर प्रक्षालन करके धूप में सुखाना चाहिए। इस प्रक्रिया से शुद्ध नीलम प्राप्त होता है।[4]

२- नीली के स्वरस के साथ दोलायंत्र में एक याम तक परिपाक करने से शुद्ध नीलम प्राप्त हो जाता है।[5]

२- नीलम का भस्मीकरण-

१- नीलम का शोधन होने के बाद उस नीलम को पत्थर के उत्तम खरल में डालकर उसका चूर्ण बनाना उसका चूर्ण बनाना चाहिए। जितना नीलम का चूर्ण बना है उतनी

१- द्रष्टव्य र० वि०, पृ०- १७६
२- द्रष्टव्य सि० भे० सं०, पृ०- ५३७
३- द्रष्टव्य र० वि०, पृ०- १८६
४- द्रष्टव्य सि० भे० सं०, पृ०- ५१७
५- द्रष्टव्य र० वि०, पृ०- [illegible]

ही मात्र में शुद्ध गंधक, शुद्ध मैनीसल और शुद्ध हरिताल लेकर सभी को मिलाकर घोटना चाहिए। इस मिले हुए द्रव्य में बड़हल का रस मिलाकर अच्छी प्रकार से मिला लेना चाहिए। यदि बड़हल का रस उपलब्ध न हो तो नींबू का रस भी मिलाया जा सकता है। दोनों ही रसों में से चाहे वे बड़हल का रस हो या फिर नींबू का रस हो उतना ही मात्रामें लेना चाहिए जितना कि द्रव्य उसमें पूरी तरह से डूबजाए। द्रव्य को पूरी तरह से मिलाने की आवश्यकता होती है। मिले हुए द्रव्य को धूप में रख देना चाहिए ताकि द्रव्य पदार्थ शुष्क भी होता जाए।

इस प्रकार मिलाने के बाद जब यह गाढ़ा हो जाए तब उसकी छोटी-छोटी टिकियाँ बनाकर धूप में सुखानी चाहिए। उसके बाद मिट्टी के दो शरावों के बीच सम्पुट में बन्द कर ऊपर से सन्धि प्रदेशादि पर कपड़ मिट्टी करके धूप में सुखाकर' गजपुट' में रखकर फूंक देना चाहिए। स्वांगशीत होने पर नीलम को निकालकर खरल में डालकर उसका सूक्ष्म चूर्ण बना कर फिर ऊपरी प्रक्रिया को दोहराना चाहिए। इस प्रकार से कुल आठ पुट देने से नीलम की भस्म तैयार हो जाती है।[1]

२- मनः शिला का एक भाग, हरताल का एक भाग, गन्धक का एक भाग और विशुद्ध नीलम का चूर्ण लेकर नींबू के रस में सात दिन तक घोटने पर चक्रिका बनाकर धूप में सुखाकर वारण पुट में आठ बार फूंकने पर उत्तम नीलम की भस्म तैयार हो जाएगी।[2]

६- पन्ने का शोधन-

१- उत्तम पन्ने को लेकर स्वच्छ वस्त्र की पोटली में बाँधकर **'दोलायन्त्र'** की विधि से गोदुग्ध से भरे हुए पात्र में डालकर उस को एक प्रहर तक स्वेदन करना चाहिए। इसके बाद पन्ने को पोटली में से खोलकर उष्णोदक से प्रक्षालन करके धूप में सुखाने के बाद शुद्ध पन्ने की प्राप्ति हो जाती है।[3]

२- गौ के दूध में दोलायंत्र द्वारा एक प्रहर तक पन्ना को स्वेदित करने से पन्ने को पोटली में बाँधकर तेल, मट्ठा, गोमूत्र, कांजी, कुल्थी का काढ़ा और कोदों के अन्न का काढ़ा इन छ चीजों को लेकर दोलायंत्र को विधि से दो प्रहर तक स्वेदन करने से शुद्ध पन्ने की प्राप्ति हो जाती है।[4]

१- द्रष्टव्य सि० भे० सं०, पृ०-५३४
२- द्रष्टव्य र० वि०, पृ०- १८७
३- द्रष्टव्य सि० भे० सं०, पृ०-५१८
४- द्रष्टव्य र० वि०, पृ०- १६६

पन्ने का भस्मीकरण-

१- पन्ने का शोधन होने के बाद शुद्ध पन्ने को पत्थर के अच्छे खरल में डालकर उसका बारीक चूर्ण बना लेना चाहिए। फिर इस चूर्ण में पन्नेके बराबर ही शुद्ध हरताल, मैनसिल और शुद्ध गंधक मिलाकर और बड़हल या नींबू का रस उतना ही डालना चाहिए, जितना कि खरल के ठोस पदार्थ उसमें पूर्णतया डूब न जाएं। बाद में इसे अच्छी तरह मिलाकर थोड़े-थोड़े समय के लिए धूप में रखना चाहिए जब तक कि गाढ़ा न हो जाए।

इस के बाद छोटी-२ टिकियां बनाकर धूप में सुखाकर इसको शराव सम्पुटमें बन्दकर सन्धिबन्धन कर धूप में सुखाकर **'गजपुट'** में रखकर फूंक देना चाहिए। स्वांगशीत होने पर सकोरे में पन्ने को निकालकर खरल में डालकर इसका सूक्ष्म चूर्ण बना लेना चााहिए। इसी प्रक्रिया को करते हुए कुल आठ पुट देने चाहिए। बड़हल का रस अथवा नींबू का रस जो भी प्रथम पुट में लिया जाये उसी का आठों पुटों में प्रयोग करना चाहिए। इस से शुद्ध भस्म तैयार हो जाएगी।[१]

२- पन्ने को विशोधित कर समान भाग में मनः शिला, गंधक और हरताल को लेकर अच्छी तरह मिलाकर बड़हल के रस में घोटकर मूषा में बन्द कर आठ बार फूंकने से शुद्ध भस्म तैयार हो जाती है।[२]

३- पन्ने को गरम करके १०० बार घीगुवार के रस में बुझाना चाहिए। मनः शिला, हरताल, हिंगुलोत्थ, पारद, शुद्ध गन्धक, चौकिया, सुहागा, इन चीजों को समभाग लेकर कजली करके उसमें चौथाई शुद्ध पन्ने का चूर्ण रख कर आतशी शीशी में भरकर सिन्दूर रस की तरह मन्द, मध्यम और तीव्र अग्नि में पकाने पर पन्ने की शुद्ध भस्म तैयार हो जाती है।[३]

७. वैदूर्य का शोधन-

१- उत्तम वैदूर्य को लेकर कपड़े की स्वच्छ पोटली में बाँधकर **'दोलायन्त्र'** की विधि से त्रिफला के क्वाथ में एक प्रहर तक स्वेदन करना चाहिए। इसके पश्चात् पोटली को खोल कर वैदूर्य को निकालकर उष्णादिक से धोकर धूप में सुखाने पर शुद्ध वैदूर्य प्राप्त होता है।[४]

२- वैदूर्य को त्रिफलाके क्वाथ में एक याम तक दोलायंत्र में परिस्वेदन करने से वैदूर्यका शोधन हो जाता है।[५]

१- द्रष्टव्य सि० भे० सं०, पृ०- ५३४
२- द्रष्टव्य र० वि०, पृ०- १६६
३- द्रष्टव्य वनो० चद्रो०, पृ०- ४८
४- द्रष्टव्य सि० भे० सं०, पृ०- ५३४
५- द्रष्टव्य र० वि०, पृ०- २०६

वैदूर्य का भस्मीकरण

१- वैदूर्य का शोधन होने के बाद सूक्ष्म रूप से चूर्ण करके उसमें वैदूर्य की मात्रा के बराबर शुद्ध मैनसिल, शुद्ध हरताल और शुद्ध गन्धक मिलाकर अच्छी तरह से घोट लेना चाहिए। नींबू का रस या बड़हल का रस उतनी ही मात्रा में मिलाना चाहिए, जितना कि द्रव्य उसमें डूबजाए। इस द्रव्य को अच्छी तरह से मिला लेना चाहिए। थोड़े-थोड़े समय में खरल को धूप में रखकर सुखाना चाहिए। इसके बाद छोटी-छोटी टिकियां बनाकर धूप में रखकर सुखाना चाहिए। फिर इसे शराव सम्पुट में रखकर फूंक देना चाहिए। स्वांगशीत होने पर वैदूर्य को सकोरे में से निकालकर बारीक पीसकर फिर इसी प्रक्रिया को दोहराना चाहिए। इस प्रकार से कुल आठ पुट देकर अन्त में वैदूर्य की भस्म तैयार हो जाती है।[1]

२- शोधन किए हुए वैदूर्य को बारीक चूर्ण करके वैंदूर्य के ही समान मात्रा में अर्थात् जितना वैदूर्य है उसी मात्रा में मनः शिला,हरिताल और गंधक प्रत्येक को अलग-२ लेकर अच्छी प्रकार से उसे मिला लेना चाहिए। इन चारों वस्तुओं को नींबू के रस से सात दिन तक घोटनेके बाद चक्रिकायें बनाकर घाम में सुखानी चाहिए। इन चोक्रकाओं को वारण पुट नामक विधि से आठ बार पुट देने के बाद वैदूर्य की भस्म तैयार हो जाएगी।[2]

८- फिरोजे का शोधन-

१- फिरोजे को कपड़े को पोटली में बाँधकर नींबू के रस, गोमूत्र और यवक्षार के मिश्रण से भरे हुए पात्र में दोलयंत्र की विधि अपनाकर उसे लटका देना चाहिए और एक प्रहर तक उसका स्वेदन करना चाहिए। इसी प्रकार से कुल दो या तीन बार स्वेदन करना चाहिए। बाद में पोटली को खोलकर फिरोजे को निकालकर उष्णोदक से प्रक्षालन करके शुद्ध फिरोजा प्राप्त हो जाता है।[3]

२- दूसरे प्रकार की विधि से सिरस के फूलों के रस अथवा इसी में अदरकका रस भी मिलाकर **'दोलायन्त्र'** की विधि से एक प्रहर स्वेदन करने से फिरोजा शुद्ध हो जाता है।[4]

३- नींबू के रस में यवक्षार और गौमूत्र मिलाकर दोला यंत्रद्वारा फिरोजे को तथा अन्य धातुओं को दो या तीन बार एक-एक प्रहर तक स्वेदन करने से शुद्ध हो जाता है।

४- अन्य प्रकार की विधि से फिरोजे, शिरीष पुष्प और अद्रक के स्वरस में स्वेदन करने से फिरोजा शुद्ध हो जाता है। फिरोजे को खूब बारीक पीसकर पानी में घोलकर इस में जैतून का तेल डालकर आग पर गरम करना चाहिए। द्रव्य में मिले हुए पानीके सूख जाने के बाद इस द्रव्य को फिर से थोड़ा पीसकर पानी और जैतुनका तेल मिलाकर इसे अग्नि

१- द्रष्टव्य सि० भे० सं०, पृ०- ५४२
२- द्रष्टव्य र० वि०, पृ०- २०६
३- द्रष्टव्य सि० भे० सं०, पृ०- ५१६
४- द्रष्टव्य तदेव

में गरम करना चाहिए। गरमहो जानेके बाद पानी और तेल को निकाल लेना चाहिए। फिरोजे के चूरे को निकालकर सुखा लेना चाहिए। इस प्रक्रिया से फिरोजा शुद्ध हो जाता है।[1]

फिरोजे का भस्मीकरण-

१- फिरोजे का शोधन हो जाने के बाद उसका सूक्ष्म रूप में चूर्ण कर लेना चाहिए। फिर इस में फिरोजे की मात्रा के बराबर ही शुद्ध गंधक मिलाकर नींबू के रस के साथ अच्छी तरह से मिलाकर छोटी-छोटी टिकियां बनाकर धूपमें सुखानी चाहिए। सूखने के बाद शराव-सम्पुट में रख कपड़ मिट्टीकर धूप में सुखाकर 'गजपुट' में रखकर फूंकना चाहिए। स्वांगशीत हों जाने पर पेरोजको निकालकर के उसका सूक्ष्म चूर्ण करना चाहिए। स्वांगशीत हों जाने पर पेरोज को निकालकर के उसका सूक्ष्म चूर्ण करना चाहिए। सारी प्रक्रिया को सात पुट देने से फिरोजे की उत्तम भस्म तैयार हो जाती है।[2]

६. गोमेद का शोधन-

१- उत्तम गोमेद मणि को लेकर कपड़े की पीटली में बाँधकर **'दोलायन्त्र'** की विधि से नींबू के स्वरस में लटका कर एक प्रहर तक स्वेदन करना चाहिए। इसके पश्चात् गोमेद मणि को पोटली में से स्वेदन करना चाहिए। इसके पश्चात् गोमेद मणि को पोटली में से निकाल कर उष्णोदक से प्रक्षालन करके सुखाकर संग्रह करना चाहिए। यदि नींबूका रस उपलब्ध न हो तो इसके स्थानपर गोरोचन का क्वाथ भी ग्रहण किया जा सकता है।[3]

२- दूसरी विधिके अनुसार लोहेकी करछुल में गोमेद को रखकर अग्नि पर तपाना चाहिए और फिर उसे नींबू के स्वरस में से भरे हुए पात्रमें उलटकर गोमेद को बुझा देना चाहिए। उसके पश्चात् गोमेद को निकाल कर दोबारा इसी प्रक्रिया को अपनाना चाहिए। इस प्रकार की प्रक्रिया को तब तक करते रहना चाहिए जबतक कि गोमेद स्वयं खण्डित होकर छोटे-छोटे टुकड़ों में विभक्त न हो जाए। इस प्रकार की प्रक्रिया को करने के लिए गोमेद को अनेक बार तपा कर बुझाना होता है। बुझाने की प्रक्रिया नींबूके स्वरस के स्थान पर गोरोचन के क्वाथ में भी की जा सकती है।[4]

३- नींबूरस में दोलायन्त्र विधि से १२घ० तक परिस्विन्न करने से उत्तम प्रकारसे गोमेदकी शुद्धि हो जाती है।[5]

१- द्रष्टव्य र० वि०, पृ०- २१३
२- द्रष्टव्य सि० भे० सं०, पृ०- ५३५
३- द्रष्टव्य तदेव - - पृ०- ५१५
४- द्रष्टव्य तदेव - - -- --
५- द्रष्टव्य र० वि०, पृ०- २८५

गोमेद का भस्मीकरण-

१- सर्वप्रथम शुद्ध गोमेद मणि को खरल में डालकर उसका सूक्ष्म चूर्ण कर लेना चाहिए। अब इस में जितना गोमेदका चूर्ण है उतनी ही मात्रा में शुद्ध मैनसिल, शुद्ध हरताल और शुद्धगंधक मिलाकर अच्छी तरह से घोट लेना चाहिए । फिर इसमें नींबू का रस इतना ही मिलाना चाहिए जितना कि द्रव्य रस में डूब जाए। इस रस को अच्छी तरह से मिला लेना चाहिए। जब यह द्रव्य गाढ़ा हो जाए, तब इसकी छोटी-२ टिकियां बनाकर धूप में रखकर सुखा लेनी चाहिए। इस के बाद इन टिकियों को शराव-सम्पुट में बन्द कर ऊपर से कपड़ मिट्टी करके गजपुटमें फूंक देना चाहिए। स्वांगशीत हो जाने पर शराव को खोलकर गोमेद को निकालकर खरल में रखकर पीसना चाहिए इसी प्रकार को दोहराकर आठ पुट देने से गोमेद की उत्तम भस्म तैयार हो जाती है। यदि नींबू का रस न हो तो बड़हल के रस का भी प्रयोग किया जा सकता है।[1]

२- शुद्ध किए हुए गोमेदको अच्छी प्रकारसे चूर्णित करके मनः शिला, हरताल ओर गन्धक गोमेद चूर्ण के बराबर परिमाण में लेकर सात दिन तक नींबू के स्वरस में घोटना चाहिए और चक्रिका बनाकर गजपुट में फूंक देना चाहिए। इस प्रक्रिया को आठ बार करने अर्थात् गजपुट में आठ बार फूंकने से उत्तम प्रकार की गोमेद भस्म तैयार हो जाती है।[2]

पुष्पराग का शोधन-

१- पुष्पराग को स्वच्छ कपड़े की पोटली में बाँधकर **'दोलायन्त्र'** की विधि से कुलथी के क्वाथ और कांजी के मिश्रण में एक प्रहर स्वेदन करने के पश्चात् उसे कपड़े की पोटली से निकालकर स्वच्छ उष्णोदक से प्रक्षालन करके सुखा देना चाहिए। इससे पुष्पराग का शोधन हो जाता है।[3]

२- पुष्पराज को काँजी और कुलथी के क्वाथ में दोलायंत्र के द्वारा एक प्रहर तक स्वेदन करने से भली भाँन्ति इसका शोधन हो जाता है।[4]

१- द्रष्टव्य सि० भे० सं०, पृ०- ५३०-५३१
२- द्रष्टव्य र० वि०, पृ०- २८५
३- द्रष्टव्य सि० भे० सं०, पृ०- ५१६
४- द्रष्टव्य र० वि०, पृ०- २८६

पुष्पराग का भस्मीकरण-

१- शुद्ध पुष्पराग को खरल में डालकर पीसकर पुष्पराग के बराबर ही शुद्ध गंधक, शुद्ध हरताल और मैनसिल मिलाकर खरल कर लेना चाहिए। इसमें नींबू का रस उतना ही मिलाना चाहिए जितना कि द्रव्य उसमें डूब जाए। नींबू का रस न होने पर बड़हल का रस भी मिलाया जा सकता है। इसे धीरे-२ मिलाकर शुष्क करने के लिए धूप में रखना चाहिए। जब टिकिया बनाने योग्य हो जाए तो टिकिया बनाकर धूप में सुखाकर शराव सम्पुट में बन्द कर सन्धि करके धूप में सुखाकर **'गजपुट'** में रखकर फूंक देना चाहिए। स्वांगशीत होने पर पुष्पराग को सकोरे में निकालकर खरल में बारीक पीस लेना चाहिए। इसी प्रक्रिया को अपनाते हुए कुल आठ पुट देकर पुष्पराग की शुद्ध भस्म तैयार हो जाती है।[1]

लाजावर्त शोधन एवं भस्मीकरण, शोधन-

१- नींबू के रस में यवक्षार और गोमूत्र मिलाकर दोलायंत्रद्वारा राजावर्त तथा अन्य धातुओं को दो तीन बार एक-एक प्रहर तक स्वेदन करने से शुद्ध हो जाते हैं। राजावर्त शिरीषपुष्प और अदरक के स्वरस में स्वेदन करने से शुद्ध हो जाता है।

२- राजवर्त (लाजवर्त) को खूब बारीक पीसकर पानी में डालकर इसमें जैतून का तेल डालकर अग्नि पर कुछ देर पकाना चाहिए। पानी के उड़ जाने पर यही विधि पुनः एक बार कर पानी और तेल को बाहर निकालना चाहिए। लाजवर्त चूरे को निकालकर सोख्ते से सुखाकर सूखने पर यह लाजवर्त शुद्ध हो जाएगी।[1]

भस्मीकरण-

राजावर्त को समान भाग गंधक के साथ नींबू के रस में घोटकर शराब में सम्पुट कर सात बार पुट देने से उत्तम भस्म हो जाती है।[2]

शोधित राजावर्त के चूर्ण में समान भाग मनःशिला मिलाकर ही तथा भैंस के दूध के साथ पकाने पर दूध गाढ़ा जो जाने पर उसमें सुहागा और पंचगव्य मिलाकर द्रव्यांश को जला देना चाहिए इसके उपरान्त खैर के कोयले में फूंक देने से उत्तम भस्म बन जायेगी।[3]

१- द्रष्टव्य, सि० भै० सं०, पृ०- ५३५

२. लुंगाम्बुगंधकोपेतों राजावर्तो विचूर्णितः।
पुटनात् सप्तवारेण राजावर्तो मृतो भवेत्।। र० वि. - पृ० - २१३

३. राजावर्तस्य चूर्णन्तु कुनटीधृतीमिश्रितम्।
विपचेदायसे पात्रे महिषीक्षीरसंयुतम्।।
सौभाग्यपंचगव्येन पिण्डीबद्धन्तु जारयेत।

ध्मापितं खदिराङ्गरैः सत्त्वं मुञ्चति शोभनम्।। र० वि. - पृ० - २१४

वैक्रान्त संशोधनमारणविधि

शोधन विधि-

जिस प्रकार **'वज्र'** कुलत्थादि क्वाथ में शोधन किया जाता है उसी प्रकार 'वैक्रान्त' को भी शुद्ध कर तब मारण क्रिया करनी चाहिये, क्योंकि यह भी वज्र का ही भेद है।[1]

मारण विधि-

वैक्रान्त (तुरमली) को नील वा लाल रंग का ग्रहण कर अग्नि में तपा तपा कर १४ बार घोड़े के मूत्र में बुझावें। इसके पश्चात् मेषदुग्धी(मेढ़ा सींगी) का पँचांग ले पीसकर गोला बनावे और उस गोले के अन्दर वैक्रान्त को रख मूषे में बन्द कर गजपुर की आग देवें। इस प्रकार सात बार गजपुट में फूँकने से तुरमली की भस्म बनती है। इसे हीरे के अभाव में उसके स्थान में प्रयोग करें।[2]

१- वैक्रान्त वज्रच्छोद्धचं नीलं वा लोहितं तथा। हयमूत्रेण तत्सेच्यं तप्तं तप्तं द्विसप्तधा।।
ततस्तु मेषशृङ्गयुक्तपञ्चाङ्गे गोलके क्षिपेत। पुटेन्मूषापुटे रुद्ध्वा कुर्यदिवं च सप्रधा।।
वैक्रान्तं भस्मतां याति वज्रस्थाने नियोजयेत।। शाङ्र्गधर सं० मध्यखण्डे- ११/८६-८८

वैक्रान्तंनाम- विक्रन्तयति लोहानि तेन वैक्रान्तकः स्मृतः।

वैक्रान्त परीक्षा- अष्टस्रश्पाष्टफलकः षट्कोणो मसृणो गुरुः।।
शुद्धमिश्रितवर्णैश्च युक्तो वैक्रान्त उच्यते।।

वैक्रान्त अष्टविधत्व- श्वेतो रक्तश्च पीतश्च नील- पारावतच्छविः।
श्यामलः कृष्णवर्णश्च कर्चुश्पाष्टधाहि सः।।

गुण - आयुः प्रदश्च बलवर्णकरोइतिवृष्यः प्रज्ञापदः सकलदोषगदापहारी।
दीप्ताग्निकृत्पविसमानगुणस्तस्वी वैक्रान्तकः खलु वपुवैललोहकारी।।
रसायनेषु सर्वेषु पूर्वगण्यः प्रतापवान्। वज्रस्थाने नियोक्तव्यो वैक्रान्तः सर्वदोष हा।।
शाङ्र्गधर सं० मध्यखण्डे - ११/८८-९०

२- द्रष्टव्य सि० यो० सं०, पृ०- १२७

५.२ रत्नों का चिकित्सीय महत्त्व

१- **हीरा**- रत्नों में सर्वश्रेष्ठ स्थान हीरे को प्राप्त है। रोगों के उपचार में भी हीरक का सर्वाधिक प्रयोग मिलता है। औषधियों में प्रयोग करते समय हीरक का शोधन करना आवश्यक होता है। शोधित या मारित हीरक का सेवन करने से परमायु वृद्धि, शरीर पुष्टि, बल, वीर्य, वर्ण और सुख वृद्धि तथा समस्त रोग विनिष्ट होते हैं। सर्वप्रथम हीरे की भस्म को इस प्रकार बना लेना चाहिए- कष्टकारी या भटकटैया में हीरा रख कर कोदों धान के काढ़े और कुलथी कलाय के काढ़े में ७ दिन दौलायन्त्र में पाक कर देने पर घोड़े के मूत और थूहर के दूध से सींचने पर हीरा शोधित हो जाता है। दूसरी विधि के अनुसार, तीन वर्ष की पुरानी क्पास की जड़ को पुराने पान के रस में पीसकर उसमें हीरा रख कर सात बार गजपुट देने से हीरा भस्म होता है।

अशुद्ध हीरे का औषध में व्यवहार करने से उसमें कुष्ठ पार्श्व वेदना, पाण्डु रोग और पङ्गुता होती है। इस कारण से पहले हीरे को शोधन कर पीछे उसका व्यवहार करना ही कर्त्तव्य है। हीरक भस्म से जो सब औषध बनाई जाती है वह अमृतसदृश है। उस औषध का सेवर करने से शरीर रोगरहित हो कर वज्र के सदृश हो जाता है। हीरक भस्मचूर्ण श्लेष्मानाशक है।[१]

अशोधित हीरे के गुण-

कोढ़, पार्श्वशूल, पाण्डु, शरीर में ताप और भारीपन करे है तथा अनेक प्रकार की पीड़ा, कुष्ठ, क्षय, पाण्डु रोग, हृदय और पसली में शूल तथा आत्मा का नाश करे है।[२]

शोधित हीरे के गुण-

हीरा रसायन, षड्रसयुक्त देह को दृढ़ करनेवाला, पुष्टि, वीर्य और बलवर्द्धक है। वर्ण को सुन्दर करने वाला, सुखकारक तथा वात, कुष्ठ, पित्त, क्षय, भ्रम, कफ, वात, शोफ, मद, प्रमेह, भगन्दर, पाण्डु रोग, उदर और मेदनाशक है।[३]

हीरा वात पित्त, कफ, रोगनाशक, शरीर को वज्र के समान दृढ़ करने वाला, लक्ष्मीवर्द्धक, षड्रसयुक्त तथा शोष, क्षय, भ्रम, भगन्दर, प्रमेह, मेद, पाण्डु, उदररोग और सूजन को दूर करने वाला है।[४]

---

१. द्रष्टव्य- हि० वि०- पृ०- १०४

२. अशुद्धंकुरुतेवज्रंकुष्ठंपार्श्वव्यथांतथा। पाण्डुतापंगुरुत्वञ्चतस्मात्संशोध्यमारयेत्।।
पीडां विधत्तेविविधांनराणाकुंष्ठंक्षयंपाण्डुगदंचदुष्टम्।
हृत्पार्श्वपीडांकुरुतेतिदुःखदामशुद्धवज्रंगुरुमात्महंत्यजेत्।। (रत्ना०)श० नि० भू०- पृ०- ७३२

३. वज्रंरसायनंचैवषड्रसैश्चयुतंसद। देह दाढर्यकरं पुष्टिबलवीर्य्याविवर्द्धनम्।।
सुवर्णसुखकृद्वातकुष्ठपित्तक्षयभ्रमान्। कफंवातंच्शोफंचमदमेहभगन्दरान्।। तदेव- - - -

४. पाण्डुरागोदरंमेदंनाशयेदितिकीर्तितेन।
वज्रंसमीरकफकण्ठपित्तगदांश्चहन्याद्वज्रपेमञ्चकुरुतेवपुरुत्तमश्रीः। तदेव- - -

क- आयुः पदं झटिति सद्गुणं च वृष्यंदोषंत्रयप्रशमनं सकलामयहनम्।
सूतेन्द्रबन्धवधसद्गुण तत्प्रदीप्तं मृत्युञ्जयं तदमृतोपममेव वज्रम्।।
शाङ्गंधर सं० मध्य खण्ड- ११/८१-८३

हीरा भस्म-

हीरे की भस्म को १/२ रत्ती से १ रत्ती की मात्रा में अन्य औषधियों के साथ सतत सेवन करने से निम्नीलखित रोग दूर होते हैं-

१- हीरे की भस्म को खदिर चूर्ण के साथ सेवन करने से कुष्ठ रोग दूर होता है।
२- हीरे की भस्म को अडूसा रस के साथ सेवन करने से श्वासकास दूर होता है।
३- हीरे की भस्म को चित्रक क्वाथ के साथ सेवन करने से जीर्ण ज्वर दूर होता है।
४- हीरे की भस्म को पिप्पली मधु के साथ सेवन करने से मदाग्नि दूर होती है।
५- हीरे की भस्म को विदारी कन्द चूर्ण के साथ सेवन करने से बहुमूत्र दूर होता है।[1]

हीरा भस्म आयु वृद्धि पुष्टि, बल, वीर्य वर्धक शरीर का सुन्दरवर्ण तथा सुख की वृद्धि करने वाला है हीरक भस्म का उचित सेवन सम्पूर्ण रोगों को दूर करने वाला होता है।[2]

मुक्ता के गुण-

सारक, शीतल, कषाय, स्वादु, लेखन (वमन करने वाला और धातु को पतला करने वाला) नेत्रों के लिए हितकारक है। मोती कषैला, स्वादिष्ट, बलवर्द्धक, पुष्टिकारक, वीर्यवर्धक नेत्रों की हितकारी तथा राज्यक्ष्मा और विषनाशक है। इसके धारण करने से स्त्रियों की कान्ति और रति बढ़ती है तथा ग्रह और पाप का नाश होता है।[3]

मोती मधुर, शीतल, दृष्टिरोग को दूर करनेवाला, विषनाशक, राजयक्ष्मा को हरने वाला, क्षीणवीर्यवाले को बल और पुष्टि देने वाला है। मोती- कफ, पित्त क्षय, खांसी, श्वास, मन्दाग्नि और दाह को दूर करे है, पुष्टिकारक, वीर्यवर्द्धक और आयुवर्द्धक है। मोतियों का हार धारण करने से दाह और पित्त दूर होता है, कान्तिजनक, हर्ष बढ़ाता है और नेत्रों में सुख होता है।[4]

१- द्रष्टव्य र० वि०, पृ०-३३
२- आयुः पुष्टिं बलं वीर्यं वर्णं सौख्यं करोति च ।
सेवितं सर्वरोगहनं मृतं वज्रं न संशयः।। भ०प्र० नि०, श्लो०-१७६
३- द्रष्टव्य र० वि०, पृ०- १०२, हि० वि०- पृ०-७०२
क- मुक्ताकषायास्वाद्वीचबलपुष्टिप्रदायिनी। वृष्यानेत्रहिताराजयक्ष्मध्नोविषनाशिनी।।
स्त्रीणांकान्तिरतिकरीधारणाद्ग्राहपापनुत। वनो० चंद्रो० पृ०-४८
४. मौक्तिकंसुमधुरंसुशीतलंदृष्टिरोगशमनंविषापहम्।
राजयक्ष्मपरिकोपनाशनमक्षीणवीर्यबलपुष्टिवर्द्धनम्।।
कफपित्तक्षयध्वंसिकासश्वासाग्निमांद्यजित्। पुष्टिदंवृष्यमायुष्यंदाहघ्नं मौक्तिकंमतम्।।
मुक्तानांहारविधृतिर्दाहपित्तविनाशिनी। कान्तिहर्षनेत्रसुखंददातीतिप्रकीर्तितम्।।
वनो० चंद्रो० पृ०-४८

मुक्ता भस्म-

मुक्ता भस्म से जिन रोगों का उपचार बताया है वे इस प्रकार है-

१- दन्तोद्भेदजन्य ज्वर-

१ रत्ती मुक्ता भस्म में २ रत्ती रससिन्दूर को मिश्रित करके आठ मात्रा बना कर प्रातः और सायं दो मात्रा मधु के साथ खाने से बच्चों के दन्तोगमन के समय आने वाला ज्वर शीघ्र नष्ट हो जाता है।

२- फुक्फुस दौर्बल्य(chronic atrophy of lungs tissue)- १ रत्ती मुक्ताभस्म को ३ रत्ती प्रवाल भस्ममें मिश्रित करके प्रातः सांय मधुके साथ सेवन करनेसे चिरकालिक फुक्फुस दौर्बल्य(फुक्फुसके तन्तुओं का चिरकालिक क्षय) नष्ट होता है।[1]

३- क्षय रोग-

शुद्ध पारद, शुद्ध गंधक का समभाग लेकर और इस में शुद्ध पारद के बराबर प्रवाल भस्म और इतनी ही मात्रा में मुक्ता भस्म मिलाकर नीबू के रस की भावना में लघु पुट में एक बार फूँक देने तथा २ रत्ती की मात्रा में प्रतिदिन सेवन करने से भयंकर क्षय अंग अथवा प्रत्यंगों का दौर्बल्य (Atrophy ofonly organ) नष्ट होता है।[2]

४- मुक्तादि वटी-

६ मासे मोती भस्म, कुचला हुआ चूर्ण '२' दाने, सोने के वर्क १ माशे, चाँदी के वर्क '३' माशे, केसर '१' तोला, जावित्री '६'मासा, जायफल'१' तोला, अकरकरा '२' तोला, इन सभी द्रव्यों को गुलाब जल में तीन दिन घोटनेके उपरान्त गोलियां बनाकर दो-दो गोलियां दूधके साथ सेवन करने से स्मरण शक्ति प्रबल हो जाती है।[3]

५- रक्त अतिसार रोग-

१/२ रत्ती से १ रत्ती पर्यन्त मात्रा में मुक्ता भस्म में कपूर और जायफल का चूर्ण मिलाकर मधुके साथ सेवन करने से सन्निपातक अतिसार एवं रक्तातिसार जैसे रोग नष्ट होते हैं।[4]

१- द्रष्टव्य र० वि०, पृ०- १०२

२- द्रष्टव्य तदेव पृ० -१०२

३- द्रष्टव्य तदेव पृ० -१०२

४- द्रष्टव्य तदेव पृ० -१०२

प्रवाल के चिकित्सीय गुण-

जिन मनुष्यों की वीर्य्य को बढ़ाने की और शरीर की पुष्टि करने की इच्छा वर्त्तती है उनको शुद्धप्रवाल का सेवन करना चाहिए और यह प्रवाल अनेक गुणदायक है। आयुर्वेद के मत में प्रवाल(मूंगा) सर्वदोषनाशक, दीपन, रूचिकारक, पुष्टिदायक तथा क्षय, पाण्डु, ज्वर, श्वास, खाँसी और मेदा रोग को दूर करने वाला, मधुर, अम्ल, कफनाशक, पित्त को दूर करने वाला, वीर्यवर्धक, कांतिजनक, क्षयनाशक, रक्त पित्त को दूर करने वाला, खाँसी को नष्ट करने वाला, दीपन सारक, पाचक, हलका तथा ज्वर, विष, भूतबाधा, उन्माद, पांडुरोग, प्रमेह और नेत्र जेसे विभिन्न रोगों को दूर करता है। प्रवाल सर्व दोष नाशक पांडु, ज्वर, श्वास, खाँसी इत्यादि रोगों को दूर करने वाला होता है। इसके निरन्तर सेवन से वीर्य स्तम्भन होता है।[1] विद्रुम का साधारण गुण सारक, कषाय, स्वादु और शीतल है।

प्रवाल भस्म-

कुक्कर खांसी नाशक- पाँच तोला प्रवाल लेकर उसे कसौदी के पत्तों के रस में खरल कर लेना चाहिए। ज्यों-ज्यों रस सूखता जाए त्यों-त्यों नया रस डालते रहना चाहिए। जब चालीस तोला रस सूख जाए तब उसे सम्पुट में रखकर गजपुट की अग्नि में फूंक देना चाहिए। जिससे सफेद भस्म तैयार हो जाएगी और इस भस्म को '१' रत्ती तक की मात्रा में शहद के साथ खाने से कुक्कर खांसी का नाश होता है।[2]

---

१. विद्रुमंसर्वदोषघ्नंदीपनंरूचिपुष्टिदम्। क्षयपाण्डुज्वरश्वासकासमेदोगदाञ्र्येत्।।
वीर्य्यवृद्धौतथापुष्टौयस्येच्छावर्ततेपरा। विद्रुमंशोधि तंतेन सेवनीयगुणप्रदम्।।
प्रवालमधुरंसाम्लंकफपित्तार्त्तिदोषनुत्। वीर्य्यक्रान्तिकरंस्त्रीणांधृतेर्मगलदायकम्।।
क्षयपित्तास्रकासघ्नंदीपनंपाचनंलघु। विषभूतादिशनमं विद्रुमंनेत्ररोगहृत्।।
प्रवालमंजरीसार्द्राकामपुष्टिकरीनृणाम् सेवितासततंदेहेवीर्य्यस्तम्भंकरोति च।।
शालि० नि० भू०- पृ०-७४३- ७४४

क) द्रष्टव्य वनौ० चंद्रो० पृ०-४६

ख) यूनानी मत- यूनानी मत में मूंगा दूसरे दर्जे में सर्द और खुशक होता है। यह शक्ति वर्धक और काब्जि है। शहद के साथ इसको देने से अर्धांग, लकवी, कम्पवात और यकृत तथा तिल्ली के रोगी को लाभ होता है। जिस व्यक्ति को मिरगी आती है वह यदि मुंगे की माला पहने तो उसे लाभ होता है। अगर गर्भवती स्त्री इसे अपने पास रखे तो गर्भ सुरक्षित रहता है। बच्चों के गले में लटकाने से बच्चों का नीद में चौंकना बन्द हो जाता है। अगर किसी को मुँह के अन्दर छाले हो लाए तो मूंगे को गुलाब जल में घोटकर मुँह के अन्दर मलने से शीघ्र आराम आता है। इब्न जहर के कथन अनुसार' दिल में जमे खून को मूंगा बिखेर देता है। यह गर्भवती के गर्भ की रक्षा करता है। बच्चे को पेट में गिरने से रोकता है। बच्चे के गले में मूंगा बाँध दियाजाए तो वह उपरी बाँधाओं से सुरक्षित रहता है। वनौ०चन्द्रो० पृ०-४७

ग) द्रष्टव्य वनौ०चन्द्रो० पृ० ४७-४८

प्रवाल पिष्टि-

उत्तम शुद्ध प्रवाल को २४ घन्टे तक गुलाब जल में घोटने से प्रवाल पिष्टि तैयार होती है। प्रवाल भस्म के अन्दर कैलशीयम का तत्व बहुत अधिक मात्रा में पाया जाता है। अतः जिन-जिन रोगों में कैलीशयम या कैलीशयम के इंजेक्शन देने की जरूरत होती है, उन रोगों के लिए प्रवाल भस्म लाभदायक होती है।[1] विभिन्न रोगों में प्रवाल भस्म का उपयोग-

१- खूनी बवासीर-

३ मासे घिसे हुए लालचन्दन में एक या दो रत्ती प्रवाल भस्म मिलाकर खाने से खूनी बवासीर में लाभ होता है ।

२- मूत्रातिसार-

६ मासे काले तिलों के साथ प्रवाल भस्म का सेवन करने से मूत्रातिसार मिटता है।

३- जीर्ण ज्वर-

शहद और पीपलके साथ प्रवाल भस्म को चटाने से जीर्ण ज्वर मिटता है।

४- मूत्रकी रुकावट-

१ रत्ती मूंगाको पानीमें घिसकर पिलाने से मूत्रकी रुकावट मिटती है।

५- क्षय-

पके हुए केले के साथ प्रवाल भस्मका सेवन करने से क्षय रोग में लाभ होता है।

६- खाँसी- प्रवाल भस्म को पानी में रखकर खाने से खाँसी मिटती है।

७- दन्त रोग- प्रवाल के चूर्ण को मज्जन करने से दाँत निर्मल और दृढ़ होते हैं।

८- मूत्रकृच्छ- त्रिफला और मधु के साथ प्रवाल भस्म कोचाटने से मूत्र कृच्छ में लाभ होता है।

९- सूखी खाँसी- अदरक के रस में मिश्री और प्रवाल भस्म मिलाकर खाने से सूखी खाँसी मिटती है।

१०- घाव को रोकन- प्रवाल कों महीन पीसकर घाव पर भुरभुराने से घाव में रुधिर बहना बन्द हो जाता है।[2]

नीलम के गुण -

आयुर्वेद के मत में नीलम की भस्म गर्म कड़वी और दमा खाँसी, पित्त, कफ, रक्त के उपद्रव, विषम ज्वर और बवासीर में लाभदायक है। यह वीर्य शक्ति और पाचन शक्ति को बढ़ाती है।[3] खाँसी, राजयक्ष्मा, वातोदर, मुर्छारोग, 'प्लीहोदर, स्नायु पीडा, कृमिरोम, पक्षाघात, श्वासरोग, जीर्णज्वर, सर्वांग में वायुज्न्य पीड़ा और हाथ पैरों का

१- द्रष्टव्य वनौषधचन्द्रोदय पृ० -४७

२- ...... ,, ,, पृ० - ४८ - ४९
३- ...... चि०, पृ०- १८९

कांपना इन समस्त रोगों में नीलम भस्म का सेवन करने से लाभ होता है। नीलम तिक्त रस का और कफ, पित्त तथा वायु के उपद्रवों को नष्ट करता है। इसके अतिरिक्त यह दीपन, वृष्य, बल्य और रसायन है। मस्तिष्क की दुर्बलता, हृदयरोग, क्षय, खाँसी, दमा तथा कुष्ट रोगों में इसका प्रयोग करते हैं। नीलमणि की भस्म से बनाई गई गोलियों का प्रयोग करने से गंज, मूत्राशय, रूसी, जलोदर, मृगी, वृक्क रोग, मस्तिष्क, कर्णमूलप्रदाह, स्नायुशूल, संधिवात और रसौली जैसे रोग दूर होते हैं।[1]

पन्ना के चिकित्सीय गुण–

आयुर्वेद के मत में पन्ना शीतल मधुररसयुक्त, रुचिकारक, पुष्टिकर, वीर्यवर्धक और प्रेतबाधा, अम्लपित्त, ज्वर, वमन, श्वास, मन्दाग्नि, बवासीर, पाण्डुरोग और विशेष रूप से विष का नाश करने वाला है।[2]

पन्ना शीतल, रुचिकारक, मधुररसान्वित, पुष्टिकारक, विष को दूर करने वाला और अम्ल पित्त को भी दूर करता है।[3] पन्ना ज्वर, वमन, विष, श्वास, सन्ताप, मन्दाग्नि, बवासीर, पाण्डुरोग और सूजन को दूर करता है तथा ओज को बढ़ाने वाला है।[4]

पन्ना बुखार, वमन, विष, दमा, सन्निपात, अपच, बवासीर, पाण्डु शोथ- आदि रोगों को नष्ट कर शरीर के बल एवं सौन्दर्य को बढ़ाता है। चिकित्सा के सम्बन्ध में पन्ने को विषघ्न एवं बल वीर्य वर्धक सभी ने स्वीकार किया है।[5]

पन्ने की भस्म ठण्डी, मीठी, और मेदवर्धक है। यह क्षुधावर्धक है और अम्लपित्त जलन को दूर करती है इसी कारण से तीव्र और मृदुज्वर, मिचली और वमन, विषक्रिया, दमा, अजीर्ण, बवासीर, पाण्डु और हर प्रकार के घाव और सूजन को दूर करती है। हरे रंग के कारण पन्ना दृष्टि शक्ति के लिए उत्तम है। मिरगी से बचाता है, पेचिस को दूर करता है। सन्तान जन्म के समय स्त्री का परम सहायक है। हल्के हरे से गाढ़े रंग तक का पन्ना, अच्छी प्रकार घिसा हुआ मुलायम तथा स्वच्छ हो, उसमें दाग, चीर, या धुआँ न हो और वह भारीपन लिए हो तो वह बहुमूल्य समझा जाता है। एक रत्ती वज़न का यह रत्न सदा व्यक्ति को अपने संग्रह में रखना चाहिए।[6]

---

१. श्वासकासहरंवृष्यंत्रिदोषघ्नंसुदीपनम्। विषमज्वरदुर्नामपापघ्नंनीलभरितम्।
नीलः सतिक्तकोष्णश्चकाफपित्तानिलापहः। योदधातिशरीरेचसौरिमर्दनदीभवेत्।। वनौ० चन्द्रो०-५७

२. हि० वि० - पृ० - ७३३

३. पाचिकाशीतलारुच्यारसकालेमधुः स्मृता। पुष्टिदृद्विषहावृष्याभूतवाधाम्ल पित्तहा।।
शालि० नि० भू०- पृ० - ७४५

४. ज्वरच्छर्द्दिविषश्वासंसन्तापाग्रेश्चमांद्यनुत्। दुर्नामपाण्डुशोकघ्नताक्ष्र्यमोजोविवर्द्धनम्।।
शालि० नि० भू०- पृ० - ७४५

५. ज्वर- छर्दिं- विष श्वास- सन्निपाताग्निमान्द्यनुत्।
दुर्नाम- पाण्डु- शोथघ्नं ताक्ष्र्यमोजो विवर्धनम्।। रसरत्न० - पृ० - २६७

६. र० परि०- पृ०- १०५

माणिक्य के चिकित्सीय गुण-

माणिक्य लेखन, शीतल, कषैला, मधुर, सारक, मंगलकारक, नेत्रों को हितकारी तथा दाह, दुष्टग्रह और विषविनाशक है। यह मधुर, स्निग्ध, वातपित्तनाशक तथा रत्न प्रयोग में बड़ा ही उपयोगी और श्रेष्ठ रसायन है।[1]

आयुर्वेद शास्त्रों में माणिक्य के लिए कहा है- **'माणिक्यं दीपनं वृष्यं कफवातक्षयार्तिनुत्'** अर्थात् चिकित्सार्थ रत्नों का प्रयोग करने में निपुण वैद्यजल माणिक्य को मधुर, चिकना, वात-पित्त का नाशक तथा उदर रोगों में लाभकारी है। इसकी भस्म दीर्घ आयुष्य प्रदान करती है। वात, पित्त, तथा कफ इन तीनों तत्वों को शान्त करती है। क्षयरोग उदरशूल, फोड़े, घाव, विष-क्रिया चक्षुरोग तथा कोष्ठबद्धता को दूर करती है।[2]

पुखराज के चिकित्सीय गुण-

पुखराज विष, वमन, कफ, वात, मन्दाग्नि, दाह, कुष्ठ और बवासीर को दूर करे है। पुखराज दीपन हल्का और पाचन होता है।[3] अम्ल, शीतल, वादी, अग्निप्रदीपक, वीर्य्यवर्द्धक, अवस्थास्थापक, प्रजाजनक, बुद्धिवर्द्धक और वातविनाशक है।[4]

हीरकादि की तरह ही पुखराज भी अन्धकार में प्रकाश देता है। पुखराज अम्ल, शीतल, वातघ्न और दीपन होता है। शोधित रत्नभक्षण में मधुर सारक, चक्षु का हितकर, शीतवर्ण और विषनाशक आदि गुण देखा जाता है। उत्तमरूप से चूर्ण कर मदिराके साथ सेवन करने से हिक्का, अनिद्रा आदि रोग देर हो जाते हैं।[5]

पुखराज दीपन, पाचन, और हल्का होता है और शीतवीर्य, अनुलोमन, रसायन तथा विषघ्न होता है। यह निम्नलिखित व्याधियों को नष्ट करता है- विषक्रिया, उल्टी, कफ-वायु-विकार, मन्दाग्नि, कुष्ठरोग, बवासीर और जलन पीलिया नकसीर आदि।

पुखराज की गुलाब जल और केवड़ा जल में २५ दिन तक घोटकर कज्जल की भांति पीस कर इसको छाया में सुखाकर, इसका सेवन करना चाहिए। इसके सेवन से पित्त प्रकोप, पित्तज्वर, खून बहाना, रक्तचाप, गाँठयुक्त प्लेग, जले-कटे के घाव, हैज़ा, खांसी, घाव, पेचिश या रक्तातिसार दानेदार ज्वर गल-गंड मसूड़े आदि की सूजन, सिरदर्द, सूजी हुई आंतें, मस्तिष्क प्रदाह, दिल की धड़कन, स्कार्लेट ज्वर (Scarlet fever) आदि।[6]

---

१. माणिक्यं लेखनंशीतंकषायंमधुरंसरम्। मङ्गल्यंचक्षुष्यंदाहदुष्टग्रहविषापहम्।।
शालि० नि० भू०- पृ०- ७४७

२. हि० वि०- पृ०-३५२, ३. र० परि०- पृ०-७०

४. पुष्परागंविषच्छर्दिकफवाताग्निमांद्यजित्। दाहकुष्ठार्शशमनं दीपनंलघुपाचनम्।।
शालि० नि० भू० - पृ० - ७४७

५. पुष्परागोम्लःशीतः स्याद्वातलोग्नेश्चदीपनः। वृष्योवयः स्थापकश्चप्रज्ञाबुद्धिवि वर्द्धनः।।
वात नाशकरः प्रोक्तो मुनिभिः पारदर्शिभिः। शालि० नि० भू० - पृ० - ७४७

६. हि० वि० - पृ० - ५६७, क. र० परी० - पृ० ११३

वैदूर्य के चिकित्सीय गुण–

चिकित्सीय औषध से पूर्व शोधन करना आवश्यक है। वैदूर्य की शोधन प्रणाली हीरे की तरह ही है। अर्थात् जिस तरह हीरा शुद्ध किया जाता है उसी प्रकार वैदूर्य को भी शुद्ध किया जाता है।[१]

वैदूर्य गरम, अम्ल, भूषित, कल्याणकारक तथा कफ, वात और गुल्मादि दोषों को दूर करे है। रक्त पित्तनाशक, प्रज्ञा, आयु और बलवर्द्धक, पित्त प्रधान, रोगनाशक, दीपन और गुल्म को दूर करे है। यह मणि गरम, अम्ल, अग्निप्रदीपक, रसायन तथा शूल गुल्म उदररोग कफ और वात का नाश करे है। हीरे के गुणों की तरह ही इसके गुण हैं।[२]

फिरोजा के चिकित्सीय गुण–

फिरोजा मधुर और कषाय रस प्रधान होता है। दीपन कार्य करता है। स्थावर और जंगम विषों को नष्ट करता है। शरीर का शूल रोग और भूत पिशाच बाधा को नष्ट करता है।[३] गूर्दे व। पथरी को तोड़ता है। आँखो की बीमारी को दूर करता है। फिरोजा को धारण करने से डर दूर हो जाता है। आयुर्वेद मत में फिरोजा कसेला, मधुर होता है। फिरोजा भूतादि दोषों को दूर करता है। उदर शूलादि को नष्ट करता है।[४]

गोमेद के चिकित्सीय गुण–

आयुर्वेद मत से गोमेद मणि कफ, पित्त नाशक, क्षयरोग को दूर करने वाली, नेत्रों के लिए हितकारी, पाण्डुरोग को नष्ट करने वाली, दीपन, पाचक, रुचिकारक, त्वचा के लिए हितकारी, बुद्धि वर्धक, अम्ल, उष्ण, वात के कोप की शान्ति करने वाली, दीपन पाचक और कफ पित्तनाशक, क्षयनाशक, पाण्डुरोगहारक, दीपन, पाचक, रुचिकारी, त्वचा के लिए हितकारी गरम, अग्नि प्रदीपक हलकी तथा वात और खांसी को दूर करे है।[५]

१- द्रष्टव्य वनौ० चन्द्रो० पृ०- २७

क) यूनानी मत- यूनानी मत से यह पहले दर्जे में गर्म और तीसरे दर्जे में खुश्क है। इसके सेवन से नत्रों की ज्योति बनती है, विष के उपद्रव दूर होते हैं। मस्तिष्क को शक्ति मिलती है। यह भय और पागलपन दूर करने में लाभदायक है तथा शरीर को प्रसन्न रखती है।

२- द्रष्टव्य वनौ० चन्द्रो०-पृ० ४८

३- पेरोजं सुकषायं स्यान्मधुरं दीपनं परम्। स्थावरं जंगमंचैव संयोगाच्च तथा विषम्।।
तत्सर्वं नाशयेच्छ्रीघ्रं शूलं भूतादिदोषजम्। र० वि०, पृ०- २०८

४- द्रष्टव्य वनौ०- चन्द्रो०, पृ०-१४२

५. गोमेदकोम्लश्चोष्णश्चवातकोपविकारनुत्। दीपनः पाचनश्चैवधृतोयंपापनाशनः।।
गोमेदंकफपित्तघ्नंक्षयंपाण्डुक्षयंकरम्। दीपनंपाचनंरुच्यंत्वच्यंबुद्धिप्रबोधनम्।।
गोमेदोम्लः पाचकश्चचक्षुष्योष्णोग्निदीपनः। लघुर्वातस्यकासस्यनाशकारीप्रकीत्तितः।।
शालि० नि० भू० - ७४८

गोमेद कफ तथा पित्त को नष्ट करता है, क्षय तथा पाण्डु रोग को दूर भगाता है। दीपक, पाचक, रुचिवर्द्धक, त्वचा की कान्ति तथा बुद्धि के वैभव को बढ़ाता है। अनपच, मस्तिष्क की दुर्बलता तथा चमड़ी के रोगों के लिए लाभदायक है।[1] इसको शरीर में धरण करने से पाप का नाश होता है।

राजावर्त के चिकित्सीय गुण–

राजावर्त २० प्रकार के प्रमेह, क्षय, अर्श, पाण्डु और कफ तथा वायु के विकारों को नष्ट करता है। यह दीपन पाचन, वीर्यवर्द्धक और रसायन होता है और राजावर्त कटुतिक्त रसप्रधान, दीपन, पाचन, शीतल, पित्तशामक, वीर्यवर्द्धक और रसायन है। पाण्डू-प्रमेह का नाशक और क्षय, शोथ रोग को नष्ट करता है। विषनाशक, वमन और हिचकी को दूर करता है।[2]

पारदभस्म, स्वर्णभस्म, राजावर्तभस्म और मधुयष्टी(मुलैठी) चूर्ण समान मात्रा में मिलाकर घृत डालकर मृदु अग्नि में आँच देकर राजावर्त रस को मधु और घृत के साथ सेवन करने से संग्रहणी रोग नष्ट होता है।[3]

राजावर्तभस्म, वैक्रान्तभस्म, ताम्रभस्म और अभ्रकभस्म प्रत्येक दो-दो तोला, तीक्ष्ण लौह भस्म और शुद्ध शिलाजतु दस-दस तोला लेकर शुद्ध एवं काले सुरमे के समान मण्डूरभस्म बीस तोला शुष्ठी, कृष्णमरिच, पिप्पली, हरितकी, बहेड़ा, आमलकी, विडङ्ग, नागरमोथा, चित्रक, तालमूली, नागकेसर, सफेद चौटली (White abrus preceotorius, N.O. Legumioseal) और नागबला प्रत्येक का चूर्ण एक-एक तोला तथा सेमल की जड़ का स्वरस एवं बकरी का दूध प्रत्येक दो-दो सेर, राब एक सेर लेकर अवलेह के समान बना लें। इस राजावर्त लेह का सेवन भली-भाँति मात्रानुसार करते रहने से प्रमेह, गुल्म, हृदयरोग, वर्ध्म, अर्श, अण्डशोथ, शुक्राश्मरी, मूत्राघात और वीर्यविकार नष्ट होते हैं।

राजावर्त भस्म में ताम्रभस्म और चाँदी भस्म समान भाग में मिलाकर घी में मिला देने पर उसमें शर्करा, मधु और घी मिलाकर सेवन करने से समस्त विषरोग एवं मद्यपान करने से जायमान समस्त उपद्रव नष्ट होते हैं। राजावर्त भस्म, पारदभस्म, ताम्रभस्म और स्वर्ण माक्षिक भस्म समान मात्रा में लेकर घृत में पकाकर इसमें मधु, घृत एवं शर्करा मिलाकर सेवन करने से सभी प्रकार के मदात्यय (Alcoholism) रोग नष्ट होते हैं। अभ्रक, कान्तलौह और राजावर्त भस्म को मधु के साथ सेवन करने से प्रमेह नष्ट होता है। इसकी मात्रा दो रत्ती से पाँच रत्ती तक की है।[4]

---

१. द्रष्टव्य वनौ० चन्द्रो०, पृ०- १३३

२. प्रमेहक्षयदुर्नामपाण्डुश्लेष्मानिलापहः।
दीपनः पाचनो वृष्यो राजावर्ती रसायनः।। र० वि०- पृ०- २१२

३. र० वि०- पृ०- २१४

४. राजावर्ती रस-शुल्वं माक्षिकं घृतपाचितम्।

मध्वाज्य शर्करायुक्तं हन्ति सर्वान् मादात्ययान्।। वनौ० चन्द्रो०, पृ०- १५८

वैक्रान्तमणि के चिकित्सीय गुण-

वैक्रान्त रसराज है। वैक्रान्त हीरे तथा लोहे के समान शरीर को सुदृढ़ बनाता है। विषों के प्रभाव को नष्ट करता है। ज्वर, कुष्ठ और क्षयरोग का नाश करता है।[1] वैक्रान्त षड्रस समन्वित, त्रिदोशनाशक, वीर्य को प्रगाढ़ करने वाला पाण्डु, उदर रोग, ज्वर, श्वास, कास, क्षय और प्रमेह को नष्ट करता है। समस्त महारोगों का नाश करता है। परम बुद्धिवर्धक है।[2]

काच भीष्ममणि के चिकित्सीय गुण-

भीष्ममणि स्फटिक मणि का ही एक प्रकार है। मुख्यतः इसका प्रयोग रक्तपित्त रोग में एवं ज्वर विशेषतः पित्तज्वर में पिपासाधिक्य हो रुधिराख्यमणि की पिष्टी २ से ४ रत्ती की मात्रामें देना सद्यः लाभप्रद है।[3] रत्नों की भस्मों में अन्य प्रकार की भस्मों के मिश्रण से भी अनेकं प्रकारके रोगों का उपचार किया जा सकता है। इन भस्मों से होने वाले रोगों का उपचार इस प्रकार से है-

१- सर्वप्रथम हीरे की भस्ममें अन्य प्रकारकी भस्मों को मिलाकार विभिन्न रोगों का उपचार बताया गया है। स्वर्णमाक्षिक, कान्तलोह, अभ्रक और हीरा भस्म का एक-एक भाग और स्वर्ण भस्म का एक भाग लेकर समस्त द्रव्यों को मिलाकर मुलिका रस की सात दिन तक भावना देकर शराव सम्पुट में बन्द करके गजपुट में फूंकना चाहिए। स्वांग शीतल होने पर द्रव्य को निकाल लेना चाहिए। इस रस को मधु और घृत के साथ सेवन करने से बुढ़ापा शीघ्र नहीं आता है और समस्त रोगों का नाश होता है।[4]

शंख के चिकित्सीय गुण -

वैद्यक के अनुसार यह नेत्रों को हितकारी, पित्त, कफ, रुधिर विकार, विषविकार, वायुगोला, शूल, श्वास, अजीर्ण, संग्रहणी और मुहासों को नष्ट करने वाला माना गया है। दक्षिणावर्त्ती में इससे भी अधिक गुण होते हैं। जिस घर में यह रहता है, उसके घर में धन की कभी कमी नहीं होती है। वामावर्त्ती ही अधिक मिलता है और यही औषधि के काम में लाया जाता है। जो शंख उज्जवल और चमकदार होता है वह उत्तम समझा जाता है।[5]

१- वैक्रान्तो वज्रसदृशो देहलोहकरो मतः। विषघ्नों रस राजश्च ज्वरकुष्ठक्षयप्रणुत्।।

२- वैक्रान्तस्तु त्रिदोषहनः षड्रसो मेहदार्ढ्यकृत्। पाण्डूदरंज्वरश्वासकासक्षयप्रमेहनुत्।।
र० वि०, पृ०-२१८

३- द्रष्टव्य र० वि०, पृ०- २४७

४- हेम-माक्षिक-कान्ताभ्रवज्र भस्म प्रवेशयेत्। रसे सहेम्नि सप्ताहं मूलिकारसमदितम्।।
तां पिष्टिं यन्त्रयोगेन पचेत् पंचामृताहव्यः। रसोऽयं मधुसर्पिभ्यां युक्तः पूर्वाधिको गुणः।।
र० वि०- पृ०-३३

५- द्रष्टव्य [illegible] २६७

शंख को विधिपूर्वक शुद्ध कर भस्म बनाकर काम में लाते हैं। यह भस्म सब प्रकार के ज्वर, खाँसी, श्वास, अतिसार आदि रोगों में उचित अनुपान से अत्यन्त लाभकारी है। यह स्तंभक और बाजीकरण भी है। इसकी मात्रा चार रत्ती से डेढ़ माशे तक है।[१]

५.३ रत्नों का औषधियों में प्रयोग-

रत्नों की भस्मों के मेल से निर्मित औषधियाँ जोकि विभिन्न प्रकार के रोगों का शमन करती हैं। जिन का वर्णन आयुर्वेद में दिया हुआ उन में से प्रमुख निम्नलिखित हैं:-

१- वज्रधाररसः

हीरा भस्म, पारद भस्म, अभ्रक भस्म, स्वर्ण भस्म का एक-एक भाग लेकर हरताल को इन चारों को ही बराबर लेकर सहजन, धनूरा, सेहुड मदार का दूध। इन सब को एक-एक भावना देनी चाहिए।इस के बाद वाकुची के तेल की सात दिन तक भावना देनी चाहिए। इस प्रकार के मिश्रण को एक मात्रा में लेने से सब प्रकार के कुष्ट नष्ट हो जाते है।[२]

२- वडवानलरसः(वातनाशरसः)

हीरा, स्वर्ण, पारद, ताम्र, कान्तलोह, स्वर्ण माक्षिक, हरताल, सुरमा(काला) तुत्थक(तूतिया), समुद्रफेन, सेन्धान नमक, काला नमक, बिड, नमक, समुद्र नमक, काच नमक- इन समस्त द्रव्यों की भस्मों को समान मात्रा में लेकर थूहर के दूध को एक दिन तक भावना पर जो द्रव्य तैयार होता है,उसे एक माशा की मात्रा में अद्रक के रस के साथ सेवन करने से कम्पवायु, धनुर्वात(टेटनस) और दण्डापतानकावस्था में देनेसे यह सभी अवस्थाएं नष्ट हो जाती हैं।[३]

१- द्रष्टव्य हि० शब्द सागर पृ० - ४६६५

२- रसणन्धकताम्राभ्रकं क्षारांस्त्रनि् वरुणावृषम्। अपामार्गस्य च क्षारं लवणं द्विद्विमाषकम्।।
चांगेर्या हस्तिशुण्ढयाश्च रस पिष्टं पचेत् पुटे। भक्षयित्वा ततो गुंजा ग्रहण्यां कांजिकं पिबेत्।।
पंड्क्तिशूले च कासे च मन्दाग्नावार्द्रकद्रवम्। अम्लपिते च धारोष्णं क्षीरं वज्रधरो ह्ययम्।।
(रसरत्नसमुच्चय,रसकामधेनु),र० वि०, पृ०-३४

३- सूतहाटकवज्रार्ककान्त भस्म समाक्षिकम्। तालं नीलांजनं तुत्थमाब्धफेनं समांशकम्।।
पंचानां लवणानां तु भागैकैकं विमर्दयेत्। वज्रीक्षीरैर्दिनैकं तु रूद्ध्वा तं मूधरे पुटेत्।।
माषैकं चार्द्रकद्रावेलैहयेदवृत्वानलम्। पिपलीमूलजं क्वाथ सपिप्पल्यनुपाययेत्।।
धनुर्वातं दण्डवातं श्रृंखलीकम्वातनुत्।। (रसरत्नाकर, रसराजसुन्दर), र० वि०, पृ०-३४

३- विद्यावागीश्वरीगुटिका

अभ्रक भस्म, हीरा भस्म, स्वर्ण, चाँदी, ताम्र, मुण्डलोह, तीक्ष्णलौह, कान्तलोह, शुद्ध हरताल इन सब की भस्मों का समान भाग लेकर मिलाने के बाद द्रव्य को अच्छी तरह खरल कर लेना चाहिए। अब इस में शुद्ध पारद समस्त द्रव्य के बराबर मिलाकर एक दिन खरल कर के दूसरे दिन से अम्लवर्ग की ओषधियों के रस से तीन दिनतक भावना देनी चाहिए। प्रगाढ़ होने पर गोला बनाकर सुखा लेनेके बाद उस अन्ध मूषामें तबतक रखना चाहिए जब तक कि उसकी गोली न बन जाए। इस गोली को एक वर्ष तक सदैव मुख में रखने से बुढ़ापा शीघ्र नहीं आता है और मृत्यु भी शीघ्र नहीं होती है। बुद्धि में विशेष प्रखरता आकर वाक्शक्ति बढ़ जाती है। आयु विशेष बढ जाती है।[1]

४- अग्निरसः

हीरा भस्म के दो भाग, स्वर्णभस्म के तीन भाग,पारदभस्म के ६ भाग-इन तीनों को मिलाकर गोखरु के क्वाथ में एक दिन भावना देनी चाहिए। देश काल और आयु को देखकर १ रत्ती की मात्रा में इसके सेवन से ज्वर राजयक्ष्मा, साध्य अथवा असाध्य क्षय इन-इन प्रकार के रोगों का नाश होता है। थूहर की जड़ के चूर्ण को अनुपान के रूप में देना चाहिए।[2]

१- व्योमसत्वं मृतं वज्र स्वर्णतारार्कमुण्डकम्।
तीक्ष्णं कान्तं तालकं च शुद्ध कृत्वा विमिश्रयेत्।।
सूक्ष्मचूर्णं समं सर्वं चूर्णांशं शुद्धपारदम्।
त्रिदिनं चाम्लवर्गेण मर्दितं चान्धितं धमेत्।।
विद्ध्यावागीश्वरी ख्याता गुटिका वत्सरावधि।
यस्य वक्त्रे स्थिता तस्य जरा मृत्युर्न विद्यते।।
कर्ष जयोतिष्मती तैलं क्रामणार्थ पिबेत्सदा।
वाक्पतिर्जायते धीरो जीवेच्चन्द्रार्कतारकम्।। (रसरत्नाकर), र० वि० पृ०- ३५

२- वज्रहाटकसूतानां भस्मैषां द्वित्रिषट्क्रमात्।
त्रिकण्ढकरसैर्भाव्यं दिनान्ते तद्विचूर्णयेत्।।
गुंजामांत्रं प्रयोक्तव्यं सज्वरे राजयक्ष्मणि।
स्नुहीमूलं च जम्बीरद्रवैः स्यादनुपानकम्।।
साध्यसाध्यक्षयं हन्ति ह्यनुपानं मृगाकंवत्।
अयमग्निरसं खादेत त्रिनिकं राजयक्ष्मनुत्।। (रसरत्नाकर), र० वि० पृ०- ३५

५- सुरसुन्दरीगुटिका

अभ्रक, स्वर्णमाक्षिक, हीरा, कान्तलोह, स्वर्ण और पारद भस्म की समान मात्रा लेकर खरल करके जलवेतस के स्वरस में पकाना चाहिए। गाढ़ा होने पर शराव-सम्पुट में बन्द कर फूंक देना चाहिए। स्वांग शीत होने पर औषध द्रव्य को निकाल लेना चाहिए। शरीर में किसी भी स्थान से शस्त्रादि की चोट से रक्तस्राव बन्द हो जाता है। विष रोग नष्ट होते हैं। यदि इस रस को एक वर्ष तक मुख में धारण किया जाए तो आयु स्थिर हो कर वली पलित नहीं पाता है।[1]

६- मकरध्वजो रसः

हीरा भस्म १ भाग, स्वर्णभस्म २ भाग, ताम्रभस्म ३भाग, पारद भस्म ४भाग, अभ्रक भस्म ४भाग, लोह भस्म ६ भाग, इन सभी प्रकार की भस्मों को मसूली के रस में घोट लेना चाहिए। घोटने के बाद इसे कांच की कूपी में रखकर तीनदिन तक बालुका यंत्र में पाचन करना चाहिए। कांचकी कूपी में से समस्त द्रव्य को निकालकार मसूली क्वाथ, स्नुही दुग्ध एवं मदार (अर्क) दुग्ध में प्रत्येक के साथ एक-एक दिन घोटकर भूघर यंत्र द्वारा एक प्रकार तक अग्नि देनी चाहिए। इसके बाद इसमें मिश्री, पीपल, दालचीनी, इलायची तथा तेजपत्र के समान(औषध के बराबर) चूर्ण अच्छी प्रकार से घोट लेना चाहिए। इस रस की एक माश की मात्रा में पीपल, मसूली, मुलेठी और केवांच बीज के चूर्ण को दो तोला की मात्रा में मिलाकर गोदंग्ध एवं मिश्री के साथ सेवन करने से तथा मकरध्वज के साथ सेवन करने से सहस्रों रमणियों के साथ सम्भोग किया जा सकता है और अधिक दिन सेवन से शरीर पुष्ट हो जाता है।[2]

१- अभ्रकं माक्षिकं वज्रं कान्त हेम समम्। सर्वाणि समभागनि सूतयुक्तानि कारयेत्।।
गोलकं ततः कृत्वा पक्वं निचुलवारिणा। ततस्तं पुटपाककेन स्तम्भयित्वा प्रयत्नतः।।
वाह्ये चास्यापि लिप्त्वा च वक्त्रस्था गुटिकोत्तमा। स्तम्भयेच्छस्त्रसंघात विषरोगाश्च नाशयेत।।
अब्देनैकेन वक्त्रस्था वयः स्तम्भं करोतिच्। वलीपलितहन्त्रीयं गुटिका सुरसरी।।
(रसरत्नाकर, रसचन्द्रिका- पृ०- १३६

२- वज्रहेमार्कसूताभ्रलोहभस्मक्रमोत्तरम्। सर्वकन्याद्रवैर्मर्द्य शाल्मल्याश्च द्रवैस्त्र्यहम्।।
तद्रुद्ध्वा काचकुप्यन्तर्वालकायाँ त्र्यहं पचेत्। तत्कल्कं मुशलीक्वाथैर्वज्राकक्षीरसंयुते।।
दिनैकं मर्दयेत्खल्वे रूद्ध्वाऽन्तर्भूधरे पुटेत्। यामादुद्धृत्य संचूर्ण्यं सिता कृष्णात्रिजातके।।
समैः समं विमिश्रयाथ माषैकं भक्षयेत्सदा। मागधी मुशली यष्टी वानरी बीजकं समम्।।
चूर्ण सिताज्य गौक्षीरैः पलार्धं पायेयदनु। कामिनीनां सहस्रैकं रममाणो न मुह्यति।।
सेवनाद दृढकायः स्यादसोऽयं मकरध्वजः।। (रसरत्नसमुच्च) र० वि०, पृ०-३७

७- वज्रपञ्चरसः

हीरा और पारद की भस्म का समान भाग तथा स्वर्ण भस्म का चतुर्थ भाग लेकर इन सभी को हंसपाद के स्वरस में एक दिन तक भावना देनी चाहिए। गाढ़ा हो जाने पर गोला बनाकर सुखा लेने के बाद शराव सम्पुट में बन्दकर गजपुट द्वारा पका लेना चाहिए, स्वांगशीत हो जाने पर औषध द्रव्य को फिर से पुनः मदार के दूध की एक दिन भावना देकर गाढ़ा हो जाने पर गोला बनाकर सुखा लेना चाहिए। शराव सम्पुट में बन्दकर गजपुट द्वारा पकाना चाहिए। स्वांगशीत हो जाने के बाद पीसकर छ मास तक इस रस के सेवन से वलीपलित नष्ट होकर आयु की वृद्धि होती है और शरीर दिव्य सुन्दर हो जाता है। स्वांग शीत आयु की वृद्धि होती है और शरीर दिव्य सुन्दर हो जाता है। स्वांगशीत हो जाने के बाद पीसे हुए द्रव्य में चीता, अद्रक, सैन्धव, सोंचर नमक और लोह भस्म इनको समान मात्रा में लेकर खरल करने के बाद ही इसका सेवन करना चाहिए।[1]

८- कमलाविलासरसः

लोह, अभ्रक, गन्ध, पारद, स्वर्ण और हीरे की भस्म को समान मात्रा में लेकर घृत कुमारी के रस से घोंट कर गोला बना लेना चाहिए । इस गोले को एरण्ड पत्र से ढककर कच्चे सूत से बांधकर तीन दिन तक अन्नराशि में दबा देने के बाद इस का चूर्ण बनाकर देश,काल और आयु को देखकर ही मधु और त्रिफला क्वाथके साथ सेवन करने से वृद्धा वस्था शीघ्र न आकर व्याधियाँ नष्ट हो जाती है और सुखोपलब्धि होती हैं इसका सेवन करने से पाँच प्रकार के कास, पाण्डु, हिचकी, हलीमक, व्रण, कफरोग वायुरोग, अग्नि मांद्य, कण्डू, कुष्ट, विसर्प विद्रधि, मुखरोग अपस्मार आदि रोगों का नष्ट करता है।[2]

१- वज्रपारदयोर्भस्म समभागं प्रकल्पयेत्। सूतपादं मृतं स्वर्णं सर्वं मर्द्यं दिनावधि।।
हसपाद्या द्रवैरेव तद्गोलं चान्धितं पुटेत्। अर्कक्षीरैः पुनर्मर्द्यं तद्वदगजपुट पचेत्।।
भक्षयेत्सर्षपवृध्या यावन्माषं विवर्धयेत्। शरण्यः साधकानां तु रसोऽयं कज्रपंजरः।।
चित्रर्काद्रकसिन्धूत्थमृततीक्ष्णसुवर्चलम्। समं सर्वं सदा चानु भक्षयं स्यातक्रमणे हितम्।।
मासषट्कप्रयोगेण जीवेदाचन्द्रतारकम्। वलीपलितनिर्मुक्तो दिव्यकयो महाबलः ।।

रसरत्नाकर, र० वि०, पृ० -३८

२- लोहाभ्रौ वलिसूतहाटकविस्तुल्यं कुमारीरसे, पक्वैरण्डदलैर्निवध्य सुदृढं सद्धान्यराशौ त्र्यहम्।
क्षिप्त्वोदधृत्य विचूर्णितं मधुवरोयुक्तं यथा सात्म्यतः कृष्णात्रेयविर्निमितं गदजराविध्वंसि सौख्यप्रदम्।।
आज्ञासिद्धमिदं रसायनवरं सर्वं प्रमेहप्रणुत्। कासं पंचविधं तथैव तनुगं पाण्डु च हिक्का व्रणम्।
श्लेष्माणं पवनं हलीमकगदं हन्याच्चमन्दानलम् कण्डूकुष्ठविसर्पविद्रधिमुखापस्मारकाद्यांजयेत्।।

रसरत्नसमुच्चय, र० वि०, पृ० -३८

९- त्रैलोक्यचिन्तामणिरसः

हीरा, स्वर्ण और चाँदी भस्म का एक-एक भाग, तीक्ष्ण लोहभस्म का तीन भाग, अभ्रक और पारद भस्म की ६-६ भाग लेकर इन सबों को मिलाकर घृतकुमारी के रस में लौह या पत्थर के खरल में अच्छी तरह घोट लेना चाहिए। प्रगाढ़ होने पर एक-एक रत्ती की गोलियां बना लेनी चाहिए। इन रस के सेवन से जो रोग किसी और अन्य औषधियों से अच्छे नहीं हो पाते है, इस रस के सेवन से रोग नष्ट हो जाते हैं।[1]

१०- जयमङ्गलो रसः

हरताल, स्वर्णमाक्षिक, अजमोदा, रोप्यमाक्षिक, कान्तलोह, पीतल, तीक्ष्ण लोह, अभ्रक मण्डुर, हीरा, स्वर्ण और बंग भस्म का एक-एक भाग तथा पारद १२ भाग और गन्धक १२ भाग लेकर दोनों की कजली बना लेनी चाहिए। इस कज्जली में समस्त भस्मों को डालकर बांझ ककोड़े की जड़ सम्भालु के पत्ते मुलेठी, मीठातेलिया, सुहागाभस्म, खूनखराबा, चीता, कलिहारी कालीमिरच, सेठं पीपल और अतीस इन सबों का बराबर २ भाग का चूर्ण मिलाकर महुआ के पुष्पों के रस की भावना देकर २-२ रत्ती को गोलियाँ बनाकर सन्निपात या विषयाप्त अचेतनावस्था में इस रस को मुख द्वारा नस्य अथवा अंजन करने से फोरन चेतनता आ जाती है। सभी प्रकार के विषमज्वरों में इसका प्रयोग किया जाता है।[2]

१- हीरं सुवर्णं सुमृतं च तारमेषां समं तीक्ष्णरजश्चतुर्णाम्।
समं मृताभ्रं रससिन्दूरंच निष्पिष्टतीक्ष्णस्य तथाऽश्मनो वा।।
खल्ले द्रवेणेव कुमारिकायाः गुंजाप्रमाणां वटिकां प्रकुर्यात्।
त्रैलोक्यचिन्तामणिरसे नाम्ना सम्पूज्य सम्यग्गिरिजां दिनेशम्।।
हन्त्यामयात् योगशतैविवर्ज्यानिथ प्रणाशाय मुनिप्रणीतः।
अस्य प्रसादेन गदानशेषान् जरां विनिर्जित्य सुखं विभाति।।
रसराजसुन्दर, आयुर्वेदप्रकाश, रसचन्द्रिका, रसायनसार संग्रह, र०वि०,पृ०-३६

२- तालं ताप्यजगन्धकंच विमलं कान्ताऽऽरतीक्ष्णाभ्रकम,
मण्डूरं कुलिशं सुराऽऽसघनं चैभिः समं सूतकम्।
वन्ध्याकद्रससिन्धुवारमधुकं श्रृंगीविषं टंकणम्
बोलं चित्रकलांगली रमस्चिं विश्वोपकुल्याविषा।।
एभिः सर्वसमांशकैस्सुविधिना बद्ध्वा द्विगुंजावटी
माधूकेन रसेन दोषनिचये तस्यै प्रपाने हिता।
कृत्वा नेत्रयुगेअंजनं च विधिना तत्सन्निपातं
जये द्वैधैस्त्यक्तमचेतनं च विषमं ताप हिसर्वोत्थितम्।।
रसमंगल, रसराजसुन्दर, रसचन्द्रिका, रसायनसार संग्रह, र०वि०,पृ०-३६

११- कालकंटको रसः

हीरा भस्म १ भाग, पारदभस्म २ भाग, अभ्रकभस्म ३ भाग, स्वर्णभस्म ४ भाग, ताम्र भस्म ५ भाग, तीक्ष्ण लोहभस्म ६ भग, मुण्डलोहभस्म ७ भाग,इन सबों को अम्लवर्ण के रसों की तीन दिन तक भावना देनी चाहिए। इस औषध द्रव्यमें सर्जिकाक्षार, टंकण (सुहागा) भस्म, यवक्षार एवं पांचों नमको का एक-२ भाग मिला लेना चाहिए। सम्भालु स्वरस की तीन दिन तक भावना देकर समस्त द्रव्यका अष्टमांश वत्सनाभ(मीठा तेलिया) और अष्ट मांश ही सुहागे की भस्म मिलाकर जम्बीरी नीबू के रस की एक दिन भावना देने के बाद दो रत्ती की मात्रा में अद्रक रस के साथ सेवन करना चाहिए। सम्भालु मूल चूर्ण और गूगल समान मात्रा में मिलाकर इसका सेवन करने से अनुपान वातज व्याधियों का क्षय होता है। सन्निपात में अद्रक के रस के साथ सेवन करना होता है। सन्निपात में अंद्रक के रस के साथ सेवन करना चाहिए। मण्डल कष्ट और वातजरोगों के अलावा समस्त रोगों में अनुपान भेद में दिया जा सकता है।[1]

१२- वातकण्टको रसः

हीरा भस्म एक भाग, अभ्रक भस्म दो भाग, स्वर्ण भस्म तीन भाग, ताम्रभस्म चार भाग, तीक्षण लोहभस्म पाँच भाग, मुण्डलोहभस्म ६ भाग, कालीमिर्च चूर्ण सात भाग इन सभी को तीन दिन तक अम्लवर्गीय औषधियों की भावना देकर इस द्रव्य में यवक्षार, सर्जिकाक्षार और पांचों नमक को (सब मिलाकर आठभाग) डालकर सम्भालु के स्वरस की तीन दिन तक भावना देकर प्रगाढ़ होने पर इस में एक-भाग शुद्ध मीठा तेलिया का चूर्ण और एक भाग सुहागाचूर्ण डालकर और जम्बीरी नीबू के रस की भावना देने के बाद प्रगाढ़ होने पर दो-दो रत्ती की गोलियां बनाकर सम्भालु की जड़ का चूर्ण और शुद्ध गुग्गुल सम मात्रा में लेकर उस में घी मिलाकर एक-एक तोले की गोलियां बनाकर लेनी चाहिए। दो रत्ती की मात्रा में वातकव्टकरस लेने के बाद में एक

१- वज्रसूताभ्रहेमार्कतीक्ष्णमुंडं क्रमोत्तरम्। मारितं मर्दयेदम्लवर्गेण दिवसत्रयम्।।
त्रिक्षारं पंचलवणं मोर्दतस्य समं समम्। दत्वा निर्गुण्डिकाद्रावैर्मर्दयेद्यिदवसत्रयम्।।
शुष्कमेतद्धिचूर्ण्याथ विपं चास्याष्टमांशतः। टंकणं विषतुल्यांशं दत्वा जम्बीरजैर्द्रवैः।।
भावयेद्यिदनमेकन्तु रसोयं कालकण्टकः। दातव्यः सर्वरोगेषु सन्निपाते विशेषतः।।
द्विगुंजामार्द्रकर्द्रावैर्धृतैर्वा वातरोगिणाम्। निंगुण्डीमूलचूर्ण तु माहिषाख्यं च गुग्गुलुम्।
समांशं मर्दयेदाज्ये तद्वटी कर्षसंमिता। अनुयोज्या घृतैर्नित्यं स्निग्धमुष्णं च भोजनम्।।
मंडलान्नाश्येत्सर्वान्वातरोगान्न संशयः। सन्निपाते पिबेच्चानु रविमूलकषायकम्।।
बृहन्निघण्टुरत्नाकर, र० वि०, पृ०-४०

तोलेकी गोली अद्रक खरल अथवा घृतके साथ लेने से वातव्याधि और सन्निपात जैसे रोग नष्ट होते हैं।[1]

१३- सर्वेश्वररसः

शुद्ध पारद बीस तोला और गन्धक पाँच तोला दोनों की कंजली बनाकर ताम्रभस्म, अभ्रक भस्म, लोहभस्म और हिंगुलभस्म पांच-पांच तोला, स्वर्णभस्म और चांदी भस्म प्रत्येक को तीन तोला लेकर हीरा भस्म एकमाशा और हरताल सत्व दस तोला-इन सभीको मिलाकर जम्बीरी नींबू का रस, धतूरे का रस बासक (अडूसा) रस, थूहर का दूध,मदार का दूध कुचले का रस लेकर कनेर मूल के रस से भावना देकर एक गोला बना लेना चाहिए। कपड़े से उस गोले को लपेटकर शरावसम्पुट में बन्दकर बालुकायंत्र में मन्द मन्द अग्नि द्वारा तीनदिन तक स्वेदित करनेके बाद स्वांगशीत होने पर औषध का चूर्ण करके मीठा तेलिया का चूर्ण पाँच तोला, पीपलचूर्ण दस तोला सबको मिलाकर दो रत्ती की मात्रामें सेवन करने से सुप्तिकुष्ठ और मण्डलकुष्ठ नष्ट हो जाता है।[2]

१- वज्रमृताभ्रहेमार्कतीक्ष्णमुण्डं क्रमोत्तरम्। मारिचं मर्द्दयेम्लवर्गेण दिवसत्रयम्।।
द्विक्षारं पंचलवणं मर्हितं स्यात्समं समम्। ततो निर्गुण्डिकाद्रावैर्मर्द्दयेद्दिवसत्रयम्।।
शुष्कमेतद्विचूर्ण्याथ विषंचास्याष्टमांशतः। टंकणं विषतुल्यांशं दत्वा तं जम्बीरद्रवैः।।
भावयेद्दिनमेकन्तु रसोयं वातकण्टकाः। दातव्यो वातरोगेषु सन्निपाते विशेषतः।।
द्विगुंजामार्द्रकद्रावैर्घृतैर्वा वातरोगिणे। निर्गुण्डीमूलचूर्णन्तु महिषाक्षंच गुग्गुलुम्।।
समांशं मर्द्दयेदाज्ये तद्वटी कर्षसम्मिता। अनुयोज्य घृतैर्नित्यं स्निग्धमुष्णंच भोजयेत्।।
मण्डलं नाशयेत्सर्वं वातरोगे विशेषतः। सन्निपाते पिबेक्षानु तालमूलीकषायकम्।।
रसेन्द्रसारसंग्रह, रसराजसुन्दर, र०वि०- पृ०-४१

२- शुद्धसूतं चतुर्गन्धं पलं यामं विचूर्णयेत्। मृतताम्राभ्रलोहानां दरदं च पलं पलम्
सुवर्णं रजतं चैव प्रत्येकं दशनिष्ककम्। माषैकं मृतवज्रं तालसत्वं पलद्वयम।।
जम्बीरोन्त्तवासाभिः स्नुर्ह्यकविषमुष्टिभिः। मर्द्य हयारिजेद्रविः प्रत्येकेन दिनं दिनम्।।
एवं सप्तदिनं मर्द्यं तद्गोलमं वस्त्रवेष्टितम्। वालुकायन्त्रगं स्वेद्यं त्रिदिनं लघुवह्निना।।
आदायचूर्णयेच्छलक्षणं पलैकं योजयेद्विषम्। द्विपलं पिप्पलीचूर्ण मिश्रं सर्वेश्वरो रसः।।
द्विगुजो लिह्यते क्षौद्रैः सुप्तमण्डलकुष्ठनुत्। वाकुची देवकाष्ठं च कर्षमात्रं सुचूर्णयेत्।।
लिहेदेरण्डतैलाक्तमनुपानं सुखावहम्।
शार्ङ्गधरसंहिता, बृहद्योगतरंगिणी, रसकामधेनु, रसरत्नसमुच्चय, भैषज्यरत्नावली, वातरक्त चि० प्र०- ७७-८२, प्रमेह चि० प्र०- १८०-१८३ रसप्रकाश सुधाकर एवं र० वि०, पृ०-४२

१४- मृत्युञ्जयरसः

स्वर्णभस्म, चाँदीभस्म, हीराभस्म इन तीनों को समान मात्रा में लेकर मसूली, चूहा कन्नी, बिजौरा नीबू तथा केंवाच के क्वाथ में तीन-तीन दिन घोटकर तैयार कर इस रस को रोगों के अनुसार ही उपयोग करना चाहिए। इससे राजयक्ष्मा, प्रमेह, जीर्णज्वर अतिसार, संग्रहणी एवं बहुमूत्र रोग नष्ट होता हैं। इस रस के सेवन से बुढ़ापे और मृत्यु पर विजय प्राप्त की जा सकती है। शरीर वज्र के समान मजबूत होकर सैकड़ों स्त्रियों के साथ संभोग करने में सक्षम हो जाता है। वीर्यक्षय नहीं हो पाता है और नपुंसक पुरुष भी जवान हो जाता है। इस रस के सेवन से सुन्दरता, मेधाशक्ति और बुद्धि तीव्र हो जाती ह। चलने की शक्ति घोटे के समान नेत्र दृष्टि मयूर के समान, श्रवण शक्ति वराहके समान हो जाती है। कहने का तात्पर्य यह है कि यह रस स्त्रियों की कामपिपासा बुझाने में दूसरा कामदेवही है। इस रस को एक माशा की मात्रा में लेना चाहिए। इसके सेवन के समय गेहूँ की चीजें, उडद, केला, कटहर, छुहारा, बादाम, नारियल एवं एवं मधुर पदार्थों का एक वर्ष तक सेवन करना चाहिए।[1]

१५- मदनकामदेवोरसः

चाँदी भस्म का एकभाग, हीराभस्म के दो भाग, स्वर्ण भस्म के तीन भाग, ताम्र भस्म के चार भाग, पारदभस्म के पांच भाग, गंधक के ६भाग लोह भस्म के सात भाग-इन सभी को परस्पर मिलाने के पूर्व गन्धक और पारदकी सर्वप्रथम कज्जली बना लेनी चाहिए। इस कज्जली में अन्य समस्त औषधियों को घृतकुमारी के रस में घोट लेना चाहिए। घृतकुमारी के रस में घोटने के बाद काँच कूपी का ठीक प्रकार से मुख बन्दकर एक बड़ी हण्डी में रख कर उस हण्डी में नमक भर कर चूल्हे पर मन्दाग्नि में धीरे-धीरे पका लेना चाहिए। कांच कूपीके स्वांगशीतल हो जाने के बाद औषध द्रव्यको बाहर निकाल लेनेके बाद इस मदार दुग्ध, असगन्ध, काकोली, केवांच मसूली

१- एकांशं प्रक्षिपेत्स्वर्णं रौप्यं वज्रंच तत्समम् । मुसल्या चाखुकर्ण्या च भाव्यं लुंगरसैस्त्र्यहम्।।
मोचात्मगुप्ता स्वररसैस्तदा मृत्युंजयो रसः। सर्वरोगहरो ह्येष सेवितः पथ्यशालिभिः।।
राजयक्ष्मादिरोगांश्च प्रमेहान विंशतिं तथा। जीर्णज्वरानतीसारान् ग्रहर्णी बहुमूत्राताम्।।
तेन तेनानुपानेन नाशयेन्नात्र संशयः। किमत्र बहुनोक्तेन जरामृत्युहरस्तथा।।
वज्रदेहो भवेत्सेवी द्रावयेद्वानिताशतम्। न रेतसः क्षयस्तस्य षष्ठोऽपि तरुणायते।।
उर्ध्वलिगंसदातिष्ठेल्ललनायाः प्रियो भवेत्। तप्तहाटकसंकाशः श्रीधीमेधाविभूषितः।।
हयवेगो मयूराक्षो वाराश्रुतिरेव सः। अपरः कामदेवो वा मानिनीमानमर्दनः।।
गोधूमजान्विकारांश्च माषान्नं कदलीफलम्। पन्सं चापि खर्ज्जूरं वातामं नालिकेरकम्।।
मधुरंच भजेत्प्राज्ञो वर्षमात्रमतन्द्रितः। मात्रास्य माषप्रमिता सदा सेव्या नरोत्तमैः।।
रससंकेत कलिका, रासराजसुन्दर, र० वि०, पृ०- ४३

तालमखाना शतावर पद्मकन्द, कसेरू और कास के क्वाथ में तीन-तीन बार भावना देनी चाहिए। इसके पश्चात् इस भावना दिये हुए रसमें कस्तूरी सोंठ, मिरच, पीपल, कपूर, कंकोल, छोटी इलायची तथा लौंग का चूर्ण और इन सबके बराबर मिश्री मिलाकर इस द्रव्य को दस तोला गोदुग्ध के साथ पांच माशा की मात्रा में सेवन करते समय मधुराहार लेना चाहिए। इस से सुन्दरता, बल और तेजस्विता बढ़ती है। इस रस से तरुणियों के साथ अत्यन्त रमण करने पर भी शरीर में कोई हानि नहीं होती है।[1]

१६- कालाग्निरुद्रो रसः

हीरा भस्म का एक भाग,पारद भस्म के दो भाग,ताम्र भस्म के तीन भाग, स्वर्ण के चार भाग, लोहभस्म के पांच भाग, चाँदी भस्म के ६ भाग, तीक्ष्ण लोहभस्म के सात भाग-इन सभी को लेकर चीता बिजोरा नींबू, जम्बीरी नीबू, सहजने की जड़ और धृत कुमारी के रस में तीन दिन तक भावना देकर अद्रक के रस की सात दिन तक भावना देकर उसमें मीठे तेलियाका चूर्ण चतुर्थांश और सुहागाभस्म भी चतुर्थांश मिलाकर एक दिनके पश्चात् इस में त्रिकुटा, त्रिफला, जातुर्जात(दालचीनी तेजपाल, इलायची, नागकेशर) सेन्धा और सोंचर नमक, घर का धुआँ इन सभी को एक-एक भाग लेकर मिला लेना चाहिए । मिश्रण को मिला लेने के बाद इस में अद्रक,सहजना और बिजौरे नींबू के रस की भावना देकर तीन- तीन रत्ती की गोलियां बनाकर सेवन करने से अग्निमांद्य, हिचकी, श्वास, मण्डलकुष्ठ और यदि शरीर मोटा हो अथवा दुर्बल हो तो इस रस के सेवन से शरीर ठीक ठीक समावस्था में आता है।[2]

१- तारं वज्रं सुवर्णंच ताम्रं सूतं सगन्धकम्। लौहंच क्रमवृद्धानि कुर्य्यर्यदितानि मात्रया।।
विमर्द्य कन्यकाद्रावैर्न्यसेत् काचमये घटे। विमुद्रय पिठरीमध्ये धारयेत्सैन्धवैर्भृते।।
वह्निं शनैः शनै कुर्याद्दिनैकं तत्समुद्धरेत्। स्वांगशीतंच तच्चूर्णं भावयेदर्कदुग्धकैः।।
अश्वगन्धा च काकोली वानरी मुसली क्षुरा। त्रित्रिवेलं रसैरेषा शतवर्य्याश्च भावयेत्।।
पद्मकन्दकसेरूणां रसैः काशस्य भावयेत्। कस्तूरी व्योषकर्पूरं कंकोलैलालवंगकम्।।
पूर्वचूर्णादष्टमांशमेतत् चूर्णं विमिश्रयेत्। सर्वैः समां शर्करांच दत्वा शाणोन्मितं पिबेत्।।
गोदुग्धा द्विपलेनैव मधुराहारसेवकः। अस्य प्रभावात्सौन्दर्य वलं तेलोऽभिवर्द्धते।।
तरुणी रमयेदबह्वीर्न च हानिः प्रजायते।।
योगरत्नाकर, रसमंगल, बृहद्योगतरंगिणी, रसराजसुन्दर, र० वि, पृ० ४४

२- वज्रसूतार्कस्वर्णायस्तारतीक्ष्णमयं क्रमात्। भागवृद्धया मृतं सर्वं सहसा चित्रकद्रवैः।।
मर्दयेन्मातुलुंगाम्लैर्जंबीरस्य दिनत्रयम्। तथा शिग्रुजलैः क्वाथैः कन्याक्वाथैर्दिनत्रयम्।।
आर्द्रकस्य दिनैः सप्त दिवसे भावितं ततः। शोषितं सूक्ष्मचूर्णन्तु पादांशं टंकणं तथा।।
टंकणं सवत्सनागं चूर्णं कृत्वा विमिश्रितम्। त्रिकटुत्रिफलावह्नि चातुर्जातकसैन्धवम्।।
सौवर्चलं धूभसारं चूर्णमेतत् समं समम्। कृत्वा सम सुभागैकं तत्सर्वं चार्द्रकद्रवैः।।
शिग्रजैर्मातुलुंगोत्थैर्लोलयित्वा वटीकृतम। रसः कालाग्निरुद्रोयं त्रिगुञ्जं खादयेत्सदा।।
अग्निदीप्तिकरं हिक्काश्वासं सर्वकृतान्तकः। स्थूलानां कुरुते कार्श्य कृशानां स्थौल्यकारकम्।।
अनुपानविशेषेस्तु रोगेषु योजयेत्। साध्यासाध्यं जयत्याशु मण्डलान्नात्र संशयः।।
रसराजसुन्दर, र० वि०, पृ०- ४५

१७- दिव्यखेचरी वाटिका

एक अंधमूषा लेकर उसके भीतर नाग और वंश का लेप कर देना चाहिए। इस मूषा में स्वर्णभस्म, कृष्णाभ्रभस्म, चाँदी भस्म और ताम्रभस्म का एक-एक भाग लेकर उसे बन्द कर दें। इस मूषा को अग्नि पर रखकर धोंकनी पर एक दिन तक धोक लेना चाहिए। इस प्रकार की विधि करने से मूषा के अन्दर समस्त द्रव्य को स्वांगशीत होने पर मूषा में बनी गोली निकाल लेनी चाहिए। एक दूसरी मूषाको नाग बंगका लेप करके उसमें पूर्वोक्त गोली हीरा भस्म को रखकर उसका मुख बन्द करके एक दन तक धोंकनी में धोकं लेने के बाद स्वांगशीत होने के भाद द्रव्यको निकालकर उसका बारीक चूर्ण बना लेना चाहिए। इस चूर्ण के बराबर पारद लेकर दोनों को मिला लें और दिव्य वनस्पतियोंके फलोंके रस की भावना देते हुए तप्त खरलमें तीन दिन तक घोटें और इसके पश्चात् एंक मूषा में बन्द कर भूधर यंत्र में २४ घण्टे तक पाक करें। स्वांगशीतल होने पर औषध द्रव्य निकालकर पुनः बराबर परिमाण का पारद डाल कर फिर से पूर्वोक्त विधि अपनानी चाहिए। यह विधि सात बार अपनानी चाहिए। सात बार यह विधि करने से पारदकी भस्म बन जाएगी।

अब इस भस्म में बराबर की गंधक मिलाकर अन्ध मूषा में बन्द करके अग्नि पंर रख करके एक दिन धौकंनी पर धोकने से जो गोली बंनेगी उसे एक वर्ष तक धारण करने से आयु की वृद्धि होती है। उस व्यक्तिके मल मूत्र में ऐसी शक्ति आजाती है। कि यदि लोहेके या ताम्रके टुकड़े पर मल का प्रलेप करके अग्निपर तपाया जाए तो वह स्वर्ण बन जाता है। यदि गोली न बनाकर भस्म को एक रत्ती की मात्रा के साथ सेवन किया जाए तो शरीर दिव्य होकर बलि पलित रहित, पराक्रमी एवं सौन्दर्य युक्त हो जाता है। आयु एक लाख वर्ष की हो जाती है।[1]

१- स्वर्ण कृष्णाभ्रसत्वं च तारं ताम्रं सुचूर्णितम्। समांशं द्वन्द्वलिप्तायां मषायां चान्धितं धमेत्।।
तत्खोटभागाश्वत्वारा भागैकं मृतवज्रकम्। माक्षिकं तीक्ष्णकान्तं च भागैकं मृतवज्रकम्।।
समस्तं द्वन्द्वलिप्तायां मूषायां चान्धितं धमेत्। तत्खोटं सूक्ष्मचूर्णन्तु चूर्णाशं द्रुतसूतकम्।।
त्रिदिनं तप्तखल्वे तु मर्द्यं दिव्यौषंधिद्रवैः। रुद्ध्वाथ भूधरे पच्यादहोरात्रात्समुद्धरेत्।।
द्रुतसूतं पुनस्तुल्यं दत्वा मर्द्य पुटेत्तथा। इत्येवं सप्तवारांस्तु द्रुतं सूतं समं समम्।।
दत्वा मर्द्य पुटे पच्यज्जायते भस्मसूतकः। भस्मसूतसमं गन्धं दत्वा रुदध्वा धमेद् दृढम्।।
जायेत गुटिका दिव्या विख्याता दिव्यखेचरी। वर्षैकं धारयेद्वक्त्रे जीवेत्कल्पसहस्रकम्।।
तस्य मूत्रपुरीषाभ्यां सर्वलोहस्य लेपनात्। जायते कनकं दिव्यं समावर्ते न संशयः।।
पलद्वयं भृंगराजद्रवं चानुपिवेत्सदा। पूर्वेक्तं भस्मसूतं वा गुंजामात्रं सदा लिहेत्।।
वर्षैकं मधनाऽऽज्येन लक्षायुर्जायते नरः। वलीपलितनिर्मुक्तो महाबलपराक्रमः।।
रसराजसुन्दर, र० वि०, पृ०-४६

१८- **दिव्यखेचरी गुटिका-** स्वर्ण का मोटा पत्र एक भाग, हीरा का मोटा चूर्ण का एक भाग पारद चार भाग लेकर प्रथम एक अन्धमूषा में दो भाग पारद डाल देने चाहिए और उस पर हीरा चूर्ण और स्वर्ण पत्र डालकर पुनः बचा हुआ दो भाग पारद भी डाल देना चाहिए। अन्धमूषा को ठीक तरह से बन्द करके भूधर यंत्र द्वारा पाक कर लेना चाहिए। स्वांग शीतल होने पर समस्त द्रव्यको निकालकर दिव्य फलों के रसों की एक दिन तक तप्त खरलमें भावना देकर भूधर यंत्र द्वारा पाक कर लेना चाहिए। इसके बाद औषध द्रव्य को देकर भूधर यंत्र द्वारा पाक कर लेना चाहिए। इसके बाद औषध द्रव्य को दिव्य वनस्पतियों के फलों के रसकी भावना देकर मूषामें बन्द करके तुषाग्नि में तीन दिन तक पाक करके स्वांगशीतल होने पर द्रव्य को निकाल लेना चाहिए। इस द्रव्य में पारदभस्म एक भाग, शुद्ध सीसे का बुरादा एक भाग हिंगुलोत्थ पारद एक भाग-इन तीनों को जम्बीरी नींबू के रस की भावना देकर अन्धमूषा में बन्द करके एक दिन तक अग्निमें रखकर धोंकना चाहिए। स्वांगशीतलहोने पर पारदादि की गोली निकाल कर एक खुली मूषा में रखकर अग्नि पर रख कर धोंकते रहना चाहिए। यह द्रव्य तब तक धोंकते रहना चाहिए,जब तक कि गोली में मिश्रित सीसा भस्मी भूत होकर अपने अस्तित्व को नष्ट न कर दे। उस अवशिष्ट द्रव्यमें दसवा भाग विडनमक मिलाकर कच्छप यंत्र रखकर स्वर्णादि धातुओं का एक-एक करके जारणकरें प्रत्येक धातु छ-६ गुणी जारण हो जानी चाहिए और सब के अन्त में हीरा द्विगुण जारण करें। इन सब विधियों के समाप्त होनेके पश्चात् दिव्य वन-स्पपियों के फलों के रसों में समस्त औषध द्रव्य को खूब अच्छी प्रकारसे घोटकर एक मूषा में बन्दकर के अग्निपर रखकर धोंकनी से धोकं लेना चाहिए। मूषाके अन्दर ही अन्दर गोली बन जाएगी। इस गोली का शालिग्राम के समान अंकुशी मंत्र से पूजन करके मुख में धारण करने से शरीर दिव्य प्रभायुक्त हो जाता है। प्रतिदिन मुखमें धारण करने से आयु बहुत बढ़ जाती है। यहां तक कि मनुष्य आकाश मार्ग में उड़ने लगता है। उसके मल मूत्र में इतनी शक्ति आ जाती है कि स्पर्श मात्र से तांबे का स्वर्ण बन जाता है। ढाक के फूल,. तिल (काली) और मिश्री ५तोला दूधके साथ मिलाकर पान करते रहना चाहिए। '

- हेम्ना यद्द्वन्द्वितं च वज्रं कुर्यात्तत्सूक्ष्मचूर्णितम्। एतद्देयं गुह्यसूते मूषायामधरोत्तरम्।।
पादमात्रं प्रयत्नेन रुद्ध्वा सन्धिं विशोषयेत्। भूधराख्ये दिनं पच्यात्समुद्धृत्याथ मर्दयेत्।।
दिव्यौषधफलं द्रावैस्तप्तखल्ले दिनावधि। उद्धृत्य भूधरे पच्याद्दिनं लघुपुटैः पुटेत्।।
समुद्धृत्य पुनस्तवन्मर्घं रुद्ध्वा दिनत्रयम्। तुषाग्निना शनैः स्वेद्यमूर्ध्वाधः परिवर्त्तयन्।।
जायते भस्मसूतोऽयं सर्वयोगेषु योजयेत्। द्रुतसूतस्य भागैकं भागैकं पूर्वभस्मकम्।।
शुद्धनागस्य भागैकं सर्वसमम्लेन मर्दयेत्। अन्धमूषागतं ध्मेयं खोटो भवति तद्रसः।।
धमेत्प्रकटमूषायां यावन्नागक्षयो भवेत्। द्रुतसूतप्रकारेण द्रावयित्वा त्विमं रसम्।।
निक्षिपेत्कच्छपे यन्त्रे विडं दत्वा दशांशतः। स्वर्णादिसर्वलोहानि क्रमेणैव च जारयेत्।।
त्रिगुणं तु भवेद्यावत्ततों रत्नानि वैक्रमात्। जारयेद्द्रावितान्येव प्रत्येकं त्रिगुणं शनैः।
ततो यन्त्रात्समुद्धृत्य दिव्यौषधद्रवैर्दिनम्। मर्द्यं रुद्ध्वा धमेद्गाढं जायते गुटिका शुभा।।
पूजयेदंकुशीमन्त्रैर्नाम्नेयं दिव्यखेचरी। यस्य वक्त्रे स्थिता ह्येषा स भवेदैभरवोपम्।।
दिव्यतेजा महाकायः खेचरत्वेन गच्छति। यत्रेच्छा तत्र तत्रेव क्रीडते ह्यंगनादिभिः।।
महाकल्पान्तपर्यन्तं तिष्ठत्येव न सशयः। तस्य मूत्रपुरीषाभ्यां ताम्रं भवति कांचनम्।
पलाशपुष्पचूर्णन्तु तिलाः कृष्णाः सशर्कराः। सर्वं पलत्रयं खादेन्नित्यं स्यात् कामणे हितम्।।

रससरत्नसमुच्चय १४७-१४८

१९- कामदेवो रसः

पारद गंधक दो-दो तोला लेकर कज्जली बना लेनी चाहिए। चाँदी हीरा, स्वर्ण ताम्र और लौहभस्म दो-दो तोला लेकर कज्जली में मिलाकर घृतकुमारी के रस के सा भावना दें। प्रगाढ़ होने पर और सूखजाने पर आतशी शीशी में भर कर शीशी मुख मिट्टी (नमक मिश्रित) से बन्द करके बालुकायंत्र द्वारा गर्म कर लेना चाहि स्वांगशीतल हाने पर औषध द्रव्य निकाल कर पीसकर मदारके दूध,कासमूल के स्वर कमलकन्द के रस, मूसली क्वाथ, गोखरू के क्वाथ, काकीलीस्वरस, असगन्ध स्वर या क्वाथ, शतावर और जवासे के क्वाथ की अलग- अलग तीन- तीन भावनाएं दे चाहिए। इस भावित द्रव्य में सोंठ, कालीमिरच, पीपल, कपूर केशर, इलायची, लौं और कस्तूरी सभी का समान भाग लेकर चूर्ण करके परस्पर मिलाकर और खरल खूब बारीक चूर्ण मिला लेना चाहिए। इस समस्त औषध द्रव्यके बराबर शुद्ध दे शर्करा मिला कर गोदुग्ध के साथ एक निष्क की मात्रा में सेवन करना चाहिए। इ रस के सेवन काल में मधुर और अम्लपदार्थों का परित्याग करना चाहिए। इस रस सेवन से बल, कान्ति एवं विशेषकर स्त्रियों के सेवन करने से उनकी सुन्दरता अभिवृाद्धि होती है। पुरुषों के सेवन करने से स्त्रीसम्भोग करने पर भी वीर्यक्षय न होता है। यह रस- श्रेष्ठ वीर्य वर्धक योग है।[1]

२०- अग्निकुमार रसः

पारद एक भाग, गन्धक तीन भाग इन दोनों की कज्जली बनाकर रख ले चाहिए। सीसा, बंग, ताम्र, चाँदी, स्वर्ण अभ्रक, लोह, रौप्यमाक्षिक और हीरा इन स का अलग-अलग एक-एक भाग भस्म लेकर पारद गन्धककी कज्जली में मिला गोरखमुण्डी,अतीस, मकोय, असगन्ध, सम्हालु और भृगंराज प्रत्येक के स्वरस तीन-तीन दिन तक भावनाएं देनी चाहिए। प्रगाढ़ होने पर गोला बनाकर और सुखा

१- तारं वज्रं स्वर्णताम्रं च सूतं लोहं गन्धं भागयुग्मं प्रकुर्यात्।
कन्याद्रावैर्मर्दयेदेकयामं चूर्णं कृत्वा काचकूप्यां निवेश्य।।
कूपीं चापि पूरयेत्सिन्धुचूर्णैर्मुद्रां दत्वा शोषयेत्तत्प्रयत्नात्।
वह्निं कुर्याद्वासरैकं प्रयत्नात् शीतं जातं खल्वमध्ये विचूर्ण्य।।
अर्कक्षीरेणाथ भाव्यं हि सर्वं कासस्यैवं पद्मकन्दस्य नीरैः।
मौशल्या वै गोक्षुरस्य द्रवेण त्रिस्त्रिर्वेलां भावनां च प्रदद्यात्।।
काकोल्या वै वाजिगन्धाशहताह्वा दुःस्पर्शानां वै रवै स्सैर्भावयेच्च।
चूर्णं कृत्वा मिश्रयेदव्योषचूर्णं कर्दूरं वै कुंकमैलालवंगम्।।
कस्तूरीं वै पूर्वचूर्णात्षडंशां कार्या सर्वैः शर्करा वै समा व।
भक्षेच्चैवं निष्कमात्रं प्रयत्नाद्गोक्षीरं वै चानुपाने विद्येयम्।।
मिष्टाहारं सेवयेच्चैव नाम्लमोजस्तेजो वर्धते वै बलं च।
सौन्दर्यं वै जायते सुन्दरीणां वृद्धिः कामे नैव हानिश्च वीर्ये।।
तस्मात् सेव्यः कामदेवो रसोऽयं वृष्यपूक्तस्त्वेष योगो वरिष्ठः।।
रसप्रकाश सुधाकर र०वि०, पु०

उस पर पत्त लपेटकर पांच परत का मिट्टी का लेप करके सुखालें और एक मिट्टी की हाड़ी में आधा रेती भर कर उस पर गोल रख दें और फिरसे रेती हांड़ी के मुंह तक भर दें। इस हांड़ी का मुख एक सकोरे से ढक कर कपड़ मिट्टी कर, हांड़ी को मन्दग्नि पर रखकर ६ पहर की आंच देकर स्वांगशीतल होने पर औषध द्रव्य को निकाल कर बारीक चूर्ण कर, इस चूर्ण को पीपल और अद्रक की पांच-पांच भावनाएं देकर कलिहारी स्वरस की ७ भावनाएं और चीतामूल क्वाथ और सम्भालु स्वरस की १२-१२ भावनाएं देकर दो-दो रत्ती की गोलियां बना लेनी चाहिए। दो रत्ती की एक गोली को पीपल और सोंठके चूर्ण में मिलाकर अद्रक के रस के साथ लेने से कास, श्वास, मूत्रकृच्छ्रग्रहणी, अर्श, शोथ, अश्मरी, उपदशादि शिश्नरोग, अग्निमाद्य, वातव्याधि, शूल, अपस्मार, सन्निपात और कफ का नाश होता है।[1]

२१- हीरावेध्यो रसः

हीरा भस्म के दो भाग, अभ्रक भस्म के तीन भाग, पारद भस्म के चार भाग, शुद्ध गन्धक के ६ भाग, लोह भस्म के दो भाग, चाँदी भस्म के चार भाग-इन सभी को मिश्रित कर खरल में हुरहुर के स्वरस की एवं गोलोचन के पानी की ५-५ भावनाएं देकर समस्त द्रव्य को एक मजबूत कूषा में बन्द कर इस मूषा को शरावसम्पुट में बन्द करके एक हाथ लम्बे चौड़े और गहरे गर्तमें नीचे कुछ कण्डे रखकर शरावसम्पुट को रखकर उस गर्त को इतने कण्डों से भरदें जिनकी अग्नि दो पहर में शान्त हो जाए। शरावसम्पुट स्वांगशीत हो जाने पर औषध द्रव्यको निकाल कर भैरव देव का पूजन करके एक रत्ती औषध को मरिच चूर्ण के साथ लेना चाहिए। क्रोध, घमण्ड, व्यायाम, आतसेवन, अ[illegible] बोलना चिन्ता चुगली और झूठ बोलना आदि को छोड़कर पथ्यकर आहार-बिहारक[illegible] सेवन करना चाहिए।

१- सूतं चैकं [illegible]कं च [illegible]भागं नागं वंगशुल्वतारं च हेम।
अभ्रं लो[illegible] कवज्रमेंकैकं वैशोधयित्वा प्रदेयम्।।
मुण्डीश्वे[illegible] यश्वगन्धानिर्गुण्डयो वै भृगराजेन युक्ताः।
रसै[illegible] व[illegible]न् त्रीन् प्रमर्द्यात्खल्वे सम्यग्गोलकं कारयेद्धि।।
त[illegible]र्गों शोषयेत्तं च गोलं लेपाः सम्यक् पंच मृदिभः प्रदेया।
[illegible]ार्द्धं पुरयेद्वालुकाभिर्मध्ये गोलं निक्षिपेन्मुद्रयेच्च।।
[illegible] कुर्याद्यामषष्टथष्टमात्रं शीते सिद्धोजायते वे रसोऽयम्।
कृष्णाक्वाथैर्भावनाः पंच देया आद्रैणैवं भावयेत्पंचवारान्।।
जवालामुख्याः स्वै रसैःसप्तवारं भाव्यं चाथो सूर्यवारं हि वह्नेः।
निर्गुण्डया वै भावना भानुगात्राःपश्चात्कार्या वल्लमात्रा वटी हि।।
देया सदिभः पंचमाशा हि कृष्णा तदवछुटी चूर्णिता तत्प्रमाणा।
कासे श्वासे मूत्रकृच्छ्रे ग्रहण्यामर्शः शोफे चाश्मरीमेद्ररोगे।।
मन्दे हा[illegible] र०वि०, पृ०- ५०
सेव्यो [illegible]ार्द्रकेणापि सम्[illegible]ये।। रसप्रकाश सुधाकर,

यह रस पुष्टिकारक, दृष्टि दायक, आरोग्य, सुख, सन्तान, आयुवर्धक और वायुनाशक है। शरीर की कान्ति को बढ़ाता है। यह रस बुढापा केश पतन और खालित्य को नष्ट करता है। शरीर को आरोग्य रखते हुए मजबूत बनाता है। स्थावर जंगम, एवं कृत्रिम किसी भी प्रकारका विष इस रस के सेवन से शरीर पर असर नहीं कर पाता है। क्षयरोग,कास,प्रमेह, रक्तपित, विद्रधि, अष्ठीला, गुल्म संग्रहणी तथा महाधोर अतिसार को नष्ट करता है। इस रस के सेवन करने से बुद्धि बढ़ती है और मनुष्य देवता के समान कान्ति मान हो जाता है।[1]

२२- मृत्युञ्जय रसः

हीरा, पारद और मोती भस्म समान मात्रा में लेकर नींबूके रसकी भावना देकर गोला बना लेना चाहिए और गोले को शराव सम्पुट में बन्द कर के कुक्कुटपुट द्वारा साफ करके तीन रत्ती की मात्रा में इस रसको मधुके साथ यदि एक वर्ष तक सेवन किया जाए तो मनुष्य की अकाल मृत्यु नहीं होती है तथा समस्त रोग नष्ट होते हैं।[2]

१- द्वौ भागौ मृतहीरस्य ह्यभ्रकस्य त्रयः पुनः । भस्म सूतस्य चत्वारः षट्शुद्धगन्धकस्यच।।
मृतलोहस्य द्वौ भागौ चत्वारस्तारकस्य च। रोच नाया भवन्त्यत्र भावनाः पंच सूतके।।
तथा सुवर्चलायाश्च दातव्या भावनाः क्रमात्। अथो दृढायां कूषायां मध्ये दत्वा च तं रसम्।।
पुनः शरावद्धितये दत्वा पश्चाद्विमुद्रयेत्। हस्त प्रमाण के कुण्डे देयः शनैर्लघुः।।
द्वियामं यावदेवैतच्छीतमादाय तं रसम्। विधाय भैरवस्याऽथ पूजनं भिषजस्ततः।।
गुंजामेकममुं दद्याद्धीरावेध्यं रसेश्वरम्। मारिचेन समं प्रातस्ततस्ताम्बूलभक्षणम्।।
कोधमात्सर्यमुत्सार्य व्यायामं धर्मसेवनम्। अतिप्रलपनं चिन्तामभ्यसूयां च वर्जयेत्।।
असत्यभाषणं चैव पथ्य सेव्यं निरन्तरम्। अनेन जायते पुष्टिर्दृष्टयारोग्यंच जायते।।
अनेन सुखमाप्नोति पुत्रं चानेन चोत्तमम्। अनेन नश्यते वायुरनेनायुश्च वर्धते।।
अनेन लभते कान्तिमनेनापि जरांजयेत्। अनेन पलितं याति खालित्यंच विशेषतः।।
अनेन वज्रकायाः स्याद्विशेपेण निरामयः। स्थावरं जंगमंचापि कृत्रिमंचापि यद्विषम्।।
अनेन न प्रभवति सेवमानस्य न क्वचित्। अनेन देवरूपः स्याज्जायते बुद्धिरुत्तम्।।
क्षयं कासं प्रमेहंच रक्तपित्तं सुदारुणम्। विद्रध्यष्ठीलिके गुल्मं ग्रहणीमपि दुस्तराम्।।
अतिसारं महाधोर सर्वान् व्याधीश्च नाशयेत्।

रसकामधेनु, रसचिन्तामणि, र० वि०, पृ०- ५२

२- वज्रभस्म रसभ्स्म मौक्तिकं मर्दितं च खलु निम्बुवारिणा।
तच्च कुक्कुटपुटेन पाचितं चूर्णयेन्मधुयुतं हि वल्लकम्।। रसप्रकाश सुधाकर, र० वि०,पृ०-५५

२३- विजयपर्पटी

१. शुद्ध पारद, हीरा भस्म, स्वर्ण, चाँदी, मोती, ताम्र और अभ्रक भस्म का एक-एक भाग, गन्धक समस्त द्रव्य के बराबर लेकर मिलाने के बाद पर्पटी निर्माण विधि से पर्पटी बना कर उसे पीस लेना चाहिए। दो रत्ती की मात्रा में इस पर्पटीके सेवन से कष्टसाध्य और बहुत पुरानी संग्रहणी,अत्यन्त कष्टकर और पुराना आमशूल एवं अतिसार, प्रवाहिका, ६ प्रकार के अर्श, सोपद्रव राजयक्ष्मा शोथ,कामला,पाण्डु प्लीहा, गुल्म, जलोदर पक्तिशूल, अम्लपित्त वातरक्त,वमन, भ्रम १८ प्रकार के कुष्ट, प्रमेह, विषमज्वर अजीर्ण (चार प्रकार का) अग्निमांद्य और अरूचि रोग नष्ट होते हैं। वृद्ध व्यक्ति भी इस रस के सेवन से बलिपलित से रहित और निर्मल, स्वच्छ-बुद्धि वाला होकर सौ वर्ष तक जीता है। प्रातः काल सेवन करने से अत्यन्त कामात्तजना होती है।[1]

२४- भूताङ्कूशरसः

पारद गंधक का एक-एक भाग लेकर कज्जली बनाकर इस कज्जली में लोह, ताम्र, अभ्रक और मोती भस्म का एक-एक भाग, हीरा भस्म के १/४ भाग मैनसिल, हरताल, अंजन और तुत्थ भस्म अंजन और तुत्थ भस्म का एक-एक भाग, रसोत समुद्रफेन और पांची नमक का एक- एक भाग मिला लेना चाहिए। अब भृगराज रस, चीताक्वाथ और थूहर के दूध की एक-एक दिन तक भावना देकर गोला बनाकर इस गोले को शरावसम्पुट में बन्द करके गजपुट में पाक कर स्वांगशीतल होने पर औषध द्रव्य निकालकर उसे अच्छी प्रकार से पीस लेना चाहिए। इस रस को दो रत्ती की मात्रामें अद्रक रसके साथ सेवन करने से और अनुपानसे पीपलचूर्ण और दशमूल क्वाथ के सेवन करने से उन्माद रोग नष्ट हो जाता है। प्रतिदिन सरसों के तेल की मालिश और भैंस का घी तथा दूध एवं गुरू पदार्थो का सेवन करना चाहिए। दो-दो दिनका अन्तर देकर कड़वी तुम्बीके क्वाथ से वाष्पस्नान भी करना उत्तम है।[2]

१- रसं वज्रहेमतारं मोक्तिकं ताम्रमभ्रकम्। सर्वतुल्येन गन्धेन कुर्याद्विजयपर्पटीम्।।
दुर्वारां ग्रहणीं हन्ति दुःसाध्यां बहुवार्षिकीम्। आमशूलमतीसारं चिरोत्थमतिदारुणम्।।
प्रवाहिकां षडशांसि यक्ष्माणं सपरिग्रहम्। शोथंच कामलां पाण्डुं प्लीहगुल्मजलोदरम्।।
पक्तिशूलाम्लपित्तं वातरक्तं वमिं भ्रमिम्। अष्टादशविधान् कुष्ठान् प्रमेहान् विषमज्वरान्।।
चतुर्विधमजीर्णंच मन्दाग्नित्वमरोचकम्। जीर्णोऽपि पर्पटीं कुर्वन् वपुषा निर्मलः सुधीः।।
जीवेद्वर्षशतं श्रीमान् वलीपलितवर्जितः। प्रातः करोति नियतं सततं द्विगुंजाम्।।
यस्ताम स विन्दति तुलां कुसुमायुधस्य। आयुश्च दीर्घमनघं वपुषः स्थिरत्वं हानिं वलीपलितयोरतुलं बलंच।।
रसराजचन्द्रिका, भैष्ज्यरत्नावली ग्रहणीरोग चि० प्र० ४६१-४८४, र० वि०,पृ०- ५५

२- सूतायस्ताम्रमभ्रंच मुक्ता चापि समं समम्। सूतपादोत्तमं वज्रं शिलागन्धकनालकम्।।
तुत्थं रसांजनं शुद्धमब्धिफेनं शिलांजनम्। पंचानां लवणानांच प्रतिभागं रसोन्मितम्।।
भृंगराजचित्रवज्रीदुग्शेनापि विमदूर्दयेत्। दिनान्ते पिण्डिकां कृत्वा रुद्ध्वजा गजपुटे पचेत्।।
भूताकुंशो रसो नाम नित्यं गुंजाद्वयं लिहेत्। आर्द्रकस्य रसेनापि भूतोन्मादनिवारणम्।।
पिप्पल्याक्तं पिबेच्चानु दशमूलकषायकम्। स्वेदयेत्कटुतुम्ब्या च तीक्ष्ण रूक्षंच वर्जयेत्।।
माहिषंच धृतं क्षीरं गुर्वन्नमपि भक्षयेत्। अभयंग कटतैलेन हितो भूतांकुशे रसे।।
रसराजसुन्दर, रसचन्द्रिका, रसरत्नाकर, रसेन्द्रसारसंग्रह, भैषज्यरत्नावली उन्माद चि० प्र०४६-५१

२५- प्रमेहकुञ्जरकेसरी रसः

प्रथम पारद गंधक समान मात्रा में लेकर कज्जली तैयार कर इस कज्जली में लोह अभ्रक, नाग, बंग, स्वर्ण, हीरा और मोतीभस्म समानमात्रा में लेकर अच्छीं प्रकार से मिला लें शतावरके रस की भावना देकर गोला बनानेके बाद इसे शराव सम्पुटमें बन्द कर और एक गर्त में रखकर उपलों की आंच दे। स्वांगशीतल होने पर द्रव्यको निकाल ले। इस को ६ रत्ती की मात्रा में शीतल जल के साथ एक मास तक सेवन करने से १८ प्रकार के प्रमेह नष्ट होते हैं। तथा पुष्टि, तेज, बल, वर्ण, शुक्र और अग्नि की वृद्धि होती है।[1]

२६- कन्दर्पसुन्दरोरसः

पारद, हीरा, सीसा, मोती, चाँदी, स्वर्ण और अभ्रक भस्म का एक-एक तोला लेकर कपास और खेंर के क्वाथ की भावनाएं देकर इस में प्रवाल, भस्म और शुद्ध गंधे दो-दो तोला मिलाकर अच्छी तरह खरल करके हिरन के सींग में भरकर मुख को बन्द करके लघुपुट में पाक करें। स्वांगशीतल होने पर औषध द्रव्य को निकालकर धाय के फूल, काकोली, महुआ जटामांसी, बला अतिबला, महाबला मीठातेलिया हिंगोट, दाख, पीपल, बन्द शतावर, शालपणी, पृष्णिपर्णी, मुद्गषर्णी माषपर्णी फाल्सा, कसेरू, मुलेठी और केवांच के बीज का क्वाथ या रस की अल्ग- अलग भावना देकर इसमें इलायची, दालचीनी,तेजपात, जटामांसी, लौंग, अगर, केशर नागरमोथा, कस्तूरी पीपल, सुगन्धबाला, और कपूर प्रत्येक का चूर्ण चार-चार माशे मिला लें। इस रस को चार माशा की मात्रा में मिश्री आंवला और विदारी कन्द एक तोला तथा घृतके एक तोलेके साथ सेवन करने से सम्भोग शक्ति अत्यन्त बढ़ जाती है।[2]

१- रसगन्धायसाभ्राणि नागवंगौ सुवर्णकम्। वज्रकं मौक्तिकं सर्वमेकीकृत्य विचूर्णयेत्।।
शतावरीरसेनैव गोलकं शुष्कमातपे। बुद्ध्वा शुष्कं समुद्धृत्य शरावे सुदृढे क्षिपेत्।।
सन्धिलेपं मृदा कुर्याद् गर्ते च गोमयाग्निना। पुटेद्यामचतुः संखयमुद्धृत्य स्वांगशीतलम्।।
श्लक्ष्णं खल्वे विनिक्षिप्य गोलं तं मर्द येद दृढम्। देवब्राह्मणपूजांच कृत्वा धृत्वाऽथ कूपिके।।
खादेद्वल्लद्वयं प्रातः शीतं चानु पिवेज्जलम्। अष्टादशप्रमेहाश्च जयन्मासोपयोगतः।।
पुष्टिं तेजो बलं वर्णं शुक्रवृद्धिमनुत्तमाम्। रसराजसुन्दर,रसरत्नाकर, रसेन्द्रसारसंग्रह,
भैषज्यरत्नावली उन्माद चि० प्र०४६-५१, रस चन्द्रिका, तदेव- पृ० -५७

२- सूतां वज्रमहिमुक्ता तारं हेमसिताभ्रकम्। रसैः कार्पासकानेतान मर्दयेदोरमेदजैः।।
प्रवालं चूर्णगन्धस्य द्वि द्विकर्षो विमिश्रयेत्। प्रवालं चूर्णगन्धस्य विमर्द्य मृगश्रृंगके।।
क्षिप्त्वा मृदुपुटे पक्त्वा भावयेन्धातकीरसैः। काकोलीमधूकं मांसी वलात्रयविषेंगुदम्।।
द्राक्षा पिप्पलि वंदाकं वरी पर्णीचतुष्टयम्। परूषकं कसेरुश्च मधुकं वानरी तथा।।
भावथित्वा रसैरेषां शोषथित्वा विचूर्णयेत्। एतात्वक् पत्रकं मांसी लवंगागरु केशरम्।।
मुस्तं मृगमदं कृष्णा जलं चन्द्रश्च मिश्रयेत्। एतच्चूर्णैः शाणमितैः रसं कन्दर्पसुन्दरम्।।
खादेच्छाणमितं रात्रौ सिताधात्रीविदारिका। एतेषां कर्षचूर्णेन सर्पिष्कर्षे ।।
रसराजसुन्दर,रसप्रकाश सुधाकर- २५८ २७-

७.रत्नप्रभा वाटिका

स्वर्ण, मोती, अभ्रक, सीसा, बंग,पीतल, स्वर्णमाक्षिक, चाँदी, हीरा, लोह, हरताल र स्वर्ण भस्म समान मात्रा में लेकर मिला और केला, मकोय, अडूसा, नीलकम्ल र जयन्ती रस की एक-एक भावना देकर उस के पश्चात् कपूर जल से एक दिन क खरल करके एक-एक रत्ती की गोलियां बनाकर इस रसको प्रातः काल सेवन ने से स्त्री रोग नष्ट होते हैं। बलवीर्य की वृद्धि होती है।[1]

८- महोदधिरसः

प्रथम पारद गंधक समान मात्रा में लेकर कज्जली बना कर इस कज्जली में र्ण, हीरा प्रवाल और मोती भस्म समान मात्रामें डालकर त्रिफला क्वाथकी भावना र आधी-आधी रत्ती की गोलियां बनाकर इस रस को दोषानुसार अनुपान के साथ न करने से रुद्धांत्र, आंत्रवृद्धि, वातज, पित्तज मथा कफज जैसे अन्यान्य रोग नष्ट जाते है।[2]

९- त्रैलोक्यचिन्तामणिरसः

१ पारद, हीरा, स्वर्ण, चाँदी, सीसा लोह, ताम्र,मोती, स्वर्णमाक्षिक प्रवाल, शंख र तुत्थभस्म समान मात्रा में लेकर चीता क्वाथ की सात दिन तक भावना देकर वर्ण की बड़ी-बड़ी कौड़ियों में भरकर सुहागा से मुख बन्दकर शराव सम्पुट में बन्द गजपुट में फूंक दे। स्वांगशीतल होने पर समस्त औषध द्रव्यको निकाल कर पीस और सम्हालु और अद्रकरस की सात-सात भावनाएं देकर चीता क्वाथकी २१ वनाएं देकर एक रत्ती की मात्रा में पीपल, कालीमिरच मधु और घृतके साथ सेवन ने से साध्य अथवा असाध्य सभी प्रकार का क्षय रोग निश्चय ही नष्ट होता हैं। ठ प्रकार के महारोग, कासश्वास, ज्वर और अतिसार जैसे रोग ज्वर और अतिसार

स्वर्णं मौक्तिकम भ्रंच नागं वडंगच पित्तलम्। माक्षिकं रजतं वज्रं लौहं तालंच खर्परम्।।
कदल्याः काकमाच्याश्च वासकस्योत्पलस्य च। स्वरसेन जयन्त्याश्च कर्पूरसलिलेन च।।
भावयित्वा यथाशास्त्रमहोरात्रगतः परम्। सम्मर्द्यातन्द्रितः कुयार्द् भिषग्गुंजामिता वटीः।।
एकैकांञ्च प्रयुंजीत प्रावराशं बलाम्बुना। उष्णेन पयसा वापि केशराजरसेन वा ।।
इयं रत्न प्रभा नाम्नी वटिका सर्वसिद्धिदा। सर्वस्त्रीरोगहन्त्री व बल्या वृष्या रसायनी
भैषज्यरत्नावली,ज्वर चिकित्सा- प्र०-६७६-६७८

रसं गन्धं तथा हेम व्रजविद्रुममौकितकम्। गृहीत्वा सम्भागेन मर्दयेत त्रिफलाम्बुना।।
गुञ्जार्द्धप्रमिताः कुर्याद् वटीश्छायप्रशोषिताः। एकैकां दापयेदासां यथादोषानुपानतः।।
रुद्धान्त्रत्वमन्त्रवृद्धि तथान्यानन्त्रजान् गदान। वातपित्तकफोत्थांश्च सर्वान् हन्ति महो दधिः।।
रसराजसुन्दर, भैषज्यरत्नावली, का० चि० प्र०- ९८-१०३
रसचन्द्रिका, बृहद्योगतरंगिणी, र० वि०, पृ० -५९

जैसे रोग नष्ट होते हैं।यह रस योगवाही है अतएव अनुपान भेद से समस्त रोगों में लाभप्रद है।[1]

३०- रत्नगर्भपोटलीरसः

पारद, गन्धक को समान मात्रा में लेकर कज्जली तैयार कर इस कज्जली में हीरा चाँदी, ताम्र, तीक्ष्ण लोह, अभ्रक, मोती, शंख, प्रवाल, हरताल और मैनसिल भस्म समान मात्रा में चीता जड़ के क्वाथ की सात दिनतक भावना देकर मदार दूध, सम्हालु के सूरण रस और सेंहुडके दूध की अलग-अलग तीन दिन तक भावना देकर औषध द्रव्य को पीत वर्ण की कौड़ियो में भरकर उसका मुख सुहागा(मदार दुग्ध भावित) से बन्दकर इन कौड़ियों को शरावसम्पुट में बन्द कर गजपुट की आंच देकर स्वांगशीतल होने पर औषेध द्रव्य निकाल कर उसे पीसंकर इसी मिले हुए द्रव्य में पारद भस्म और वैक्रान्त भस्म १/४ भाग डालकर सहजना मूल और चीतामूल क्वाथ एवं अद्रक रस की क्रमशः ७, २१ और ७ भावना देकर इसमें सुहागा, मीठा तेलिया, काली मिर्च, लौंग, इलायची, सोंठ हरीत की, पीपल और जायफल का चूर्ण प्रत्येक १/४-१/४ भाग मिलाकर नीबू और अद्रकके रस में घौटकर ४-४ रत्ती की गोलियां बनाकर इस रस को पीपल चूर्ण और मधु के साथ सेवन करने से समस्त रोग नष्ट होते हुए अग्नि दीपन बल, तेज पाण्डु, शूल संग्रहणी, रक्तातिसार प्रमेहश प्लीहा, जलोदर अश्मरी तुषा, हलीमक, शोथ, उदररोग, भगन्दर, ज्वर, अर्श और कुष्टरोग नष्ट होते हैं। बहुत दिनों तक सेवन करते रहनेसे पलित और मृत्यु शीघ्र न होकर बहुत ही दृढ़ और मजबूत हो जाता है।[2]

३१- सुरेन्द्रभ्रवटी

प्रथम पारद गन्धक समान मात्रा में लेकर कज्जली तैयारकर इस कज्जली में सहस्र-पुटी अभ्रक, हीरा, प्रवाल, मोती, स्वर्ण, चाँदी स्वर्णमाक्षिक और कान्त लोहभस्म समान मात्रा में मिलाकर चीतामूल क्वाथ की भावना देकर तीन-तीन रत्तो की गोलियां बनाकर, बल दोषानुसार अनुपान व्यवस्था करके इस रस के सेवन से क्लोमरोग नष्ट होते हैं।

१- रसं वज्रं हेमतारं नागं लौहंच ताम्रकम्। तुल्यांशं मारितं योज्यं मुक्तामाक्षिकोविद्रुमम्।।
शंखंच तुत्थां तुल्यांशं सप्ताहं चित्रकद्रवैः। मर्दयित्वा विचूर्ण्याथ तेन पूर्या वराटिका।।
टंगणं रविदुग्धेन पिष्ट्वा तन्मुख मन्धयेत्। मृदभाण्डे तं निरुध्याथ सम्यग्गजपुटे पचेत्।।
आदाय चूर्णयेत्सर्वं निर्गुण्डयः सप्तभावनाः। आर्द्रकस्य रसैः सप्त चित्रकस्यैकविंशतिः।।
द्रवैर्भाव्यं ततः शोष्यं देयं गुंजैकसम्मितम्। यक्ष्मरोगं निहन्तयाशु साध्यासाध्यं न संशय।।
योजयेत्पिप्पली क्षौद्रैः सघृतैर्मरिचैस्तथा। महा रोगाष्टके कासे जवरे श्वासेऽतिसारके।।
पोट्टलीरत्नगर्भोऽयं योगवाहे नियोजयेत्।।

योगरत्नाकर, भैषज्यरत्नावली चि०-प्र०-१६६-२०३, र० वि०, पृ०- ६२

२- द्रष्टव्य रसरत्नाकर, रसचन्द्रिका, रसेन्द्रसारसंग्रह, योगतरंगिणी, बृहद्योगतरंगिणी, बृहन्निघण्टुरत्नाकर, र० वि० पृ० [illegible] ६२

क्लोमरोग के रोगी को उग्र आहार-विहारको छोड़ देना चाहिए। संसार में ऐसा कोई रोग नहीं है जिसे यह रस नष्ट न कर सकता हो।[1]

३२- मणिपर्पटीरसः

हीरा, पन्ना, पुखराज, नीलम, पारदभस्म, हिंगंल और गंधक समान २ भाग लेकर प्रथम पारद, गंन्धक की कजली बनाकर, इस कज्जली में उपयुक्त भस्म मिलाकर समस्त द्रव्य को लोहपात्र में रखकर चूल्हे पर गरम कर पर्पटी निर्माण विधि से पर्पटी बना लें। पर्पटी के शीतल हो जाने पर सम्हालु, तुलसी, सहजन, धतूरा आक, चीता,सोंठ मिरच, पीपल, त्रिफला, केला तथा अद्रकके रस एवं क्वाथ की पृथक्-पृथक् सात-सात भावनाएं देकर इस रस को एक रत्ती की मात्रा में मधु के साथ सेवन करने से अथवा दोषानुसार ठीक-ठीक अनुपान के साथ सेवन करने से समस्त नासारोग नष्ट होते है।[2]

३३- वसन्तकुसुमाकर रसः

स्वर्ण और चाँदी भस्म के दो-दो भाग बंग, नाग और कान्तलोहभस्म के तीन-तीन भाग, रस सिन्दूर, हीरा प्रवाल और मोती भस्म के चार-चार भाग-इन सभी को मिलाकर गोदुग्ध की भावना देकर ईख, अडूसा, केले की जड़,कमल और चमेली के फूलों की अलग-अलग सात-सात भावनाएं देकर सफेद चन्दन, सुगन्धवाला खस और हलदी के क्वाथ की अलग-अलग,सात-सात भावना देकर कस्तूरी जलकी भावना देकर ६-६ रत्ती की गोलियां बनाकर इस रसको मधु, मिश्री और घृत के साथ सेवन करने से बलि पलित, प्रमेह क्षय, कास, तृषा, उन्माद, श्वास, रक्तदोष विषविकार रोग नष्ट होते हैं इसके अतिरिक्त श्वेतपाण्डु मूत्राधात और अश्मरी रोग नष्ट होते हैं। इस रस को मिश्री और चंदन के साथ सेवन करने से अम्लपितादि रोग नष्ट होते हैं। यह रस मेधा बल वीर्य, कामशक्ति कान्ति और उत्तम सात्विक, आहार विहार का पालन करने से सौ-सौ स्त्रियों के साथ समागम करने की शक्ति को बढ़ाता है।[3]

१- द्रष्टव्य- भैषज्यरत्नावली ६४ क्लोमरोग चि० प्र०-१६-२० श्लोक, र० वि०, पृ० -६३

२- रसरत्नसमुच्चय, र० वि० - पृ० - ६३

३- पृथग्द्वौ हाटकं चन्द्रं त्रयो बंगहिकान्तजम्। चत्वारः सूतं वज्रंच प्रवालं मौक्तिकं तथा।।
भावना गव्यदुग्धेक्षुवासाश्रीद्विजलैर्निशा। मोचकन्दरसैः सप्त क्रमादभाव्यं पृथक्पृथक्।।
शतपत्ररसेनैव मालत्याः कुसुमैस्तथा। पश्चान्मृगमदैर्भाव्यः सुसिद्धो रसराड्भवेत्।।
कुसुमाकरविख्यातो वसन्तपदपूर्वकः। वल्लद्वयमितः सेव्यः सिताज्यमधुसंयुतः।।
वलिपलिहृन्मेध्यः कामदः सुखदाः सदा। मेहध्नः पुष्टिदः श्रेष्ठः परं वृष्यो रसायनम्।
आयुर्वृद्धिकरं पुसां प्रजाजननमुत्तमम्। क्षयकासतृषोन्मादश्वासरक्तविषार्तिजित।।
सिताचन्दनसंयुक्तमम्लपित्तादिरोगजित्। शुक्लपाण्ड्वामयांशूलान्मूत्राघाताश्मरीं हरेत्।।
योगवाहित्विदं सेव्यं कान्ति श्री बलवर्धनम्। सुसात्म्यमिष्टभोजी च रमयेत्प्रमदाशतम्।।
रसराजसुन्दर,रसेन्द्रसारसंग्रह, रसरत्नाकर, भैषज्यरत्नावली, रसचन्द्रिका, रसरत्नसमुच्चय, योगतरंगिणी चि० प्र०-४८-५१

३४- सर्वेश्वरपर्पटीरसः

स्वर्ण, चाँदी, ताम्र, नाग ,बंग,लोह,कान्तलोह, मुण्डलोह, अभ्रक कांस्य पित्तल, स्वर्ण माक्षिक, रौप्यमाक्षिक, तुत्थ, खर्पर, गन्धक, गेरु, कसीस, हरताल, मैनसिल, अंजन और फिटकिरी भस्म के कुष्ट और शिलाजीत एक-एक तोला, वैक्रान्त, सूर्यकान्तमणि, चन्द्रकान्तमणि, महानील मणि, हीरा, मोती, माणिक्य, पन्ना, पुखराज, नीलम, प्रवाल, स्फटिक, वैदूर्य और राजावर्त भस्म तीन- तीन रत्तो, उपयुक्त समस्त द्रव्य से चार गुणा अधिक शुद्ध पारद और पारद से चार गुण अधिक गंधक लेकर इनकी कज्जली बनाकर, इस कज्जली में समस्त औषध द्रव्य मिलाकर खरल कर एक लोह के पात्र में रखकर अग्नि पर चढाएं और एक काष्ट दण्ड से औषध को जलाते जाएं जब सब औषध अच्छी तरह से पिघल जाए तब उसमें मीठा तेलिया चूर्ण१/१६ भाग मिलाकर नीचे गोबर बिछाकर ऊपर केले का पत्ता बिछा दे और समस्त औषध द्रव्य इस केले के पत्ते पर डालकर, दूसरे केले के पत्ते से ढ़क दे, ऊपर उसके गोबर बिछा दे। १०-१५ मिन्ट बाद स्वांग शीतल होने के बाद मारिच और अद्रक के रस के साथ इस रस को एक रत्ती की मात्रामें सेवन करने से ६ प्रकार की विद्रधि सात प्रकारके वर्त्मरोग सब प्रकारके क्षय रोग तथा विशेषकर पाण्डु संग्रहणी और आठ प्रकार के गुल्म रोग यकृत और प्लीरोग जठररोग, प्रमेह, सोमरोग, प्रदर, अग्निमांद्य समस्त उदावर्तरोग नष्ट होते हैं। यह रस दुसाहय विद्राधि या केन्सर को भी नष्टकर देता है। इस रसके सेवनसे असात्म्य पदार्थ भी सात्म्यहो जाते हैं।[1]

१- रसोपरसलोहानि काषिकाणि पृथक् पृथक्। तेशु लोहानि सर्वाणि पाषाणाः कठिनास्तथा।।
धनसत्वं च तत्सर्वं भस्मीकृत्य प्रयोजयेत्। रत्नानि वल्लतुल्यानिभस्मीकृत्य च सर्वशः।।
एभिश्चतुर्गुणः सुतो गन्धस्तस्माच्चतुर्गुणः। कृत्वा कज्ललिकां ताभ्यां क्षिपेल्लोहस्य भाजने।।
प्रद्राव्य बदरांगारैर्निक्षिपेत्तदनन्तरम्। रसोपरसलोहानां रत्नानामीप सर्वशः।।
चूर्ण भस्म च निक्षिप्य काष्ठेनाऽऽलोडय मेलयेत्। ततश्च षोडशाशेन मिश्रयित्वाऽरूणं विषम्।।
गोमयोपरि निक्षिप्ते निक्षिपेत्कदलीदले। पत्रेणान्येन रम्भायाः समाच्छाद्य प्रयत्नतः।।
कराभ्यां चिपटीकृत्य क्षिपेदुपरि गोमयम्। ततः शीतं समाहृत्य चूर्णयित्वा च पर्पटीम्।।
विनिक्षिपेत्करण्डान्तः सम्पूज्य रसभैरवम्। सर्वेश्वराभिधानेयं पर्पटी परिकीर्तिता।।
सर्वलोकहितार्थाय नन्दिनेयं विनिर्मिता। रक्तियुक्ता समानेया मरिचार्द्रसमन्विता।।
विद्रधौ षट्प्रकारायां देया वदर्मसु सप्तसु। क्षयरोगेषु सर्वेषु पाण्डुरोगे विशेषतः।।
ग्रहणीरोगभेदेषु गुल्मेष्वटविधेषुच। मूलरोगेष्वशेषेषु प्लीहायां यकृदामये ।
प्रमेहे सोमरोगे च प्रदरे जठरार्तिष। विशेषेण च मन्दाग्नौ सर्वेष्वावर्तकेषु च।।
अनुक्तेष्वपि रोगेषु तत्तदोचित्ययोगतः। रसोऽयं खलु दातव्यः शिवतुल्यपराक्रमः।।
यद्यदद्रव्यमसात्म्यं हि जनानामुपजायते। तत्सर्वं सात्म्यमायाति रसस्यास्य निषेवणात्।।
दुसाध्यो विद्रधिर्मासाच्छानितमायाति निश्चितम्। रसरत्नसमुच्चय - पृ० १७६

३५- रत्न भागोत्तरस्रस-

हीरा भस्म पांच रत्ती, पन्ना भस्म ५ रत्ती, माणिक्य भस्म सात रत्ती, पुखराज भस्म सात रत्ती, नीलमभस्म नौरत्ती, वैदुर्यमणिभस्म दस रत्ती, गोमेदभस्म ११ रत्ती, मोती भस्म १२ रत्ती, प्रवाल भस्म १३ रत्ती, वैक्रान्त, स्वर्णमाक्षिक और रौप्यमाक्षिक भस्म ८१- ८१ माशा, पारद गन्धक की कज्जली समस्त द्रव्य से तिगुणी इन सभी को मिलाकर बकरी के दूध की दो दिनतक भावना देकर पर्पटी निर्माण विधि से पर्पटी बनाकर और बांस ककोड़े की जड़ की भावना देकर इस गोले को शराव सम्पुट में बन्द करके बीस उपली में फूंक कर सौलह बार बांझ ककोड़े की भावना देकर उपलो को आंच देकर इस रस के सेवन से दीपन पाचन रुचिवर्धन, वीर्यवर्धन एवं गर्भिणाी रोगनाशक होता है, पाण्डु और योनि रोग नष्ट कर सन्तति प्रदान करने में तथा सौभाग्य दान में सर्वश्रेष्ठ है।[1]

मुक्तादिचूणं, (हिक्काश्वास एवं नेत्र रोगों पर) **मुक्ता भस्मः-**

मुक्ता भस्म में अन्य भस्मों को मिलाने से विभिन्न प्रकार के रोगों का उपचार इस प्रकार बताया गया है- मोती, प्रवाल, वैदूर्य, शंख, स्फटिक, अंजन, चन्दन, कांच (Glass= Glesum= Akind of qwartz प्राकृतिक कांच) मदार के मूल की छाल, छोटी इलाची, सेंधानमक, कालानमक, ताम्र (copper) लोह, चाँदी, सौगन्धिक कसेरू, जायफल, सन के बीज और अपामर्ग के बीज **'निष्तुष'** छिलके निकाले हुए'इन द्रव्योंको समान मात्रा में लेकर इनका चूर्ण बना लेना चाहिए। इन मुक्तादि चूर्ण का मधु और घृत के साथ सेवन करने से हिक्का, श्वास- कास रोग नष्ट हो जाते हैं। इस योगका नेत्रों में अंजन करने से तिमिर (Amaurosis) नामक नेत्र रोग,कांच(तिमिर की उत्तरावस्था में एक विशेष लक्षणात्मक रोग युक्तप्रकार) नीलिका(लिंगनाश नीलिका कांच-तिमिर की दूसरी अवस्था-मोतिया बिन्द- catarct), पुष्पक(फूला- opacity of the carnia), पैल्य(अपरिकिलन्न वर्त्म-पलक का ढीला होना-परंतु अश्रुस्राव न होना. ptosis,Blepharo ptosis, का एक भेद), नेत्रभिष्यन्द (conjauctivitis) और अर्म (नाखूना- pterygium) आदि रोग नष्ट होते हैं।[2]

१- वज्रं मरकतं पद्मरागं पुष्पं च नीलकम्।
पंचगुंजामितं सर्वं रत्नं भागोत्तरं परम्।
वैदूर्य चाथ गोमेदं मौक्तिकं विद्रुमं तथा।।
तत्तन्त्रोक्ताविधानेन भस्मीकुर्यात् प्रयत्नतः।।
सर्वस्मादष्टगुणितं भस्म वैक्रान्तसम्भवम्।
तत्तुल्यं ताप्यजं भस्म तद्वद्धिमलभस्म च।।
सर्वतस्त्रिगुणां तुल्यां रसगन्धककज्जलीम्।
सर्वमेकत्र सम्मर्द्य छागीदुग्धेन तद्द्वयहम्।।
विधाय पर्पटीं यत्नात्परिचूर्ण्य प्रयत्नतः।
वन्ध्याककोंटकीचूर्णक्वाथेन परिमर्दयेत्।।
काननोत्पलविंशत्या रत्नभागोत्तराभिधः।
महावन्ध्यादिवन्ध्यानां सर्वासां सन्ततिप्रदः।
देवी शास्त्रे विनिर्दिष्टः पुंसां वन्ध्यत्वरोगनुत्। सोऽयं पाचनदीपनो रूचिकरो वृष्यस्तथा गर्भिणी ।।
सर्वव्याधिविनाशनो रतिकरः पाण्डुप्रचण्डार्तिनुत्। धन्यो बुद्धिकरश्च पुत्रजननः सौभाग्यकृद् योषितां।।
निर्दोषः स्मरमन्दिराम यहरो योगादशेषार्तिनुत्।। रसरत्नसमुच्चय, रस चन्द्रिका, र० वि०, पृ०- ६६

२- मुक्ताप्रवाल-वैदूर्यशंखस्फटिकमंजनम्।
ससारगंधकाचार्क-सूक्ष्मैला लवणद्वयम्।।
ताम्रायोरजसी रूप्यं सौगन्धिक-कशेरूकम्।
जातीफलं शणाद्वीजमपामार्गस्य तण्डुलाः।।
चरक संहिता चि० अ०-१७, हिक्काश्वास, र० वि०,पृ०-१०१

१- हिक्का नाशक योग

कुटकी और गेरू (गैरिक-स्वर्ण गैरिकत्र, Hameetite) एवं मुक्ताभस्म को समान मात्रा में मिलाकर बिजौरे नींबू के रस के साथ अथवा मधु के साथ ४ रत्ती से दो माषा पर्यन्त लेने से हिक्का रोग नष्ट हो जाता है। ताम्रभस्म एकसे तीन रत्ती पर्यन्त मधुके साथ सेवन करने से भी हिक्का रोग नष्ट होता है।[1]

२- मुक्तापञ्चामृतरस

वातादि दोषों में १/२ रत्ती से १रत्ती पर्यन्त मात्रा में मुक्ता भस्म लेकर उसमें कपूर मिलाने के बाद जायफल मिलाने से जो चूर्ण तैयार होता है उसे मधु के साथ सेवन करने से सन्निपातिक अतिसार एवं रक्तातिसार जैसे रोग नष्ट होते है।[2]

३- चैतन्योदयरसः

मुक्ता भस्म के आठ भाग, प्रवाल भस्म के चार भाग, खुरक बंग भस्म दो भाग, शंख भस्म एक भाग और शुक्ति भस्म एक भाग-इन पाँचों द्रव्यों को खरल में लेकर ईखके रस में ६ घण्टे तक मर्दन करके गोला बना लेना चाहिए। इस गोले को शराव सम्पुट में बन्द करके लघु पुटमें फूँक देना चाहिए। ईखके रसके समान ही गोदुग्ध, विदारीकन्द, घृतकुमारी, शतावरी, तुलसी और (हंसपदी-Adiantum Lumilatum,No. हंसराजादि वर्ग Poly podiaceae) इन द्रव्यों के रस में क्रमशः पाँच-पाँच बार क्रमशः भावना देकर पाँच-पाँच बार लघु पुट में फूँक देना चाहिए । इस रस को पिप्पली चूर्ण में चार रत्ती की मात्रा में मिलाकर चिरकालिक प्रसूता गौ के दुग्ध के साथ सेवन करने एवं प्रतिदिन स्वल्पाहार करते रहने से जीर्ण-ज्वर(पुराना बुखार- chronic fever) और क्षय(शरीर के अंग प्रत्यंगों का दुर्बल होना-Atrophy) रोग नष्ट होते हैं।[3]

१- कटुकागैरिकाभ्यांच मुक्ताभस्म तथैवच। बीजपूरस्य तोयेन ताम्रं तद्वत्समाक्षिकम्।। रसचन्द्रिका

२- मुक्ता भस्मेति नामेदे दोषं दृष्टवा प्रकल्पयेत्। गुंजार्धमेकगुंज वा कपूरिण सुवासितम्।।
जातोफलादि-संयुक्तं रहस्यं परमं मतम्। बृहन्निघण्टुरत्नाकर, योगरत्नाकर,
जीर्ण ज्वराध्याय, र० वि०,पृ०-१०२

३-मुक्ताप्रवालखरबंगककम्बुशुक्ति-भूति वसूदधिदृगिन्दुसुधाशुभागाम्।
इक्षोरसेन सुरभेः पयसा विदारी-कन्यावरीसुरसहयपदीरसैश्च।।
सम्मर्द्य यामयुगलं च वनोपलाभिः,दद्यात् पुटानिमृदुलानि च पंच पंच।
पंचामृतं रसविभुं भिषजा प्रयुज्य, गुंजाचतुष्टयमितं चपलारजश्च।।
पात्रे निधाय चिरसूतपयस्विनीनाम् दुग्धेन च पिबतः खलु चाल्पभोक्तुः।
जीर्णज्वरः क्षयमियादथ सर्वरोगाःस्वीयानुपानकलिताश्च शमं प्रयान्ति।।
आयुर्वेद प्रकाश, र० वि०, पृ०-१०३

४- चिन्तामणिरसः

पारद, गन्धक को समान मात्रा में लेकर कज्जली बना लें और इस कज्जली में स्वर्ण, अभ्रक, मोती, लोह और वंशलोचनभस्म समान मात्रामें मिलाकर शिलाजीत और कपूर समान मात्रामें मिला लेना चाहिए। इस चूर्णको त्रिफला क्वाथ से घोटकर एक-२ रत्ती की गोलियाँ बनाकर मात्रानुसार शतावरी क्वाथके साथ इस रस के सेवन से तत्वोन्माद नष्ट होता है।[1]

पारद गन्धक को समान मात्रा में लेकर कज्जली बना लेना चाहिए। इस कज्जली में स्वर्ण, चाँदी, ताम्र और मोती भस्म समान मात्रा में लेकर इसमें मिला लें। इसके पश्चात् त्रिकुटा, मैनसिल और कस्तूरी भी समान मात्रा में लेकर इस में मिला लेना चाहिए। इन समस्त द्रव्यों को पानी में घोट कर दो-दो रत्ती की गोलियाँ बनालें। इस का सेवन करने से आठ प्रकार के ज्वरों का नाश होता है।[2]

५- स्वर्णदिगुटिका

स्वर्ण, चाँदी, ताम्र और मोती भस्म, मदार मूलत्वक् चूर्ण, समुद्रफेन, त्रिफला, गुडूचि, सोंठ, पीपल, हल्दी और मुलेठी का चूर्ण तुत्थभस्म, शंखभस्म और प्रवालभस्म इन समस्त औषधों को समान मात्रा में लेकर मुलेठी के क्वाथ को भावना देकर छोटी-छोटी गोलियां बनाकर सेवन करने से समस्त उपद्रवयुक्त नेत्र रोग नष्ट होते हैं।[3]

६- हिक्कान्तकरसः

स्वर्ण, मोती, ताम्र और कान्त लोह भस्म का एक-एक भाग सेवन करने से समस्त प्रकार की हिचकी एक ही मात्रा के सेवन से नष्ट हो जाती है।[4]

१- हेमाभ्रं मौक्तिकं सूतं गन्धकं जतुकायसी। तुगाक्षीरं शशांकञ्च भावयित्वा वराम्भसा।।
रक्तिमात्रा वटीः कृत्वाच्छायायां परि शोषयेत्। शतावर्यूर्य म्भसा शान्त्यै तत्वोन्मादस्य पाययेत्।।
र० वि०- १०३

२- हाटकं रजतं ताम्रं मुक्ता गन्धकपारदौ। त्रिकटु कुनटी चैव कस्तूरी च पृथक् पृथक्।।
जलेन वटिका कार्या द्विगुंजाफलमानतः। चिन्तामणिरसो ह्येष जवराष्टानां निकृन्तनः।।
रसेन्द्रसारसंग्रह- पृ०-२०४

३- स्वर्ण रूप्यार्कमुक्तार्कौ वार्धिफेनवरामृताः। शंखव्योष-निशातुत्थप्रवालं मधुयष्टिका।।
सर्वं च क्लीतकाम्भोभि प्रपिपष्टं वटिका हरेत्। अशेषनयनङ्कांतांस्तदुपद्रवदुस्तरान्।।
रसकामधेनु, र० वि०, पृ०-१०४

४- हेममुक्तार्ककान्तानामं भस्म वल्लमितं परम्। वीजपूररसक्षैद्रसौवर्चलसमन्वितम्।।
हन्ति हिक्काशतं सत्यमेकमात्राह्ययत्नतः। का कथा पंचहिक्कानां हरणे सूत उच्यते।।
रसराजसुन्दर, रसचन्द्रिका रसकामधेनु , र० वि०, पृ०-१०४

६- महाकल्याणवटी

पारद गंधक समान मात्रा में लेकर कज्जली तैयार कर इसमें स्वर्ण, अभ्रक, लोह और मोती भस्म समान मात्रा में लेकर अच्छी प्रकार से मिला लेना चाहिए आवले के रस में घोटकर एक-२ रत्ती की गोलियां बनाकर मधु और तिल पिष्टी के साथ अथवा मधु और शर्करा के साथ अथवा मक्खन के साथ इस रस के सेवन करने से वातज, कफज और पित्तज सुरापान जन्य रोग निश्चय ही नष्ट होते हैं।[1]

७- मेहकेसरी रसः

बंग, स्वर्ण, कान्तलोह, पारद और मोतीभस्म, दालचीनी, छोटी इलायची, तेजपात और नागकेशर के चूर्ण इन सभी को समान मात्रा में लेकर घृतकुमारी के रस में घोटकर दो-दो माशे की गोलियां बना कर, इसके सेवन के बाद दूध और चावल खाने चाहिए। यह रस बंग स्वर्ण, कान्तलोह, पारद और मोतीभस्म, दालचीनी, छोटी इलायची, तेजपात और नागकेशर के चूर्ण इन सभी को समान मात्रा में लेकर घृतकुमारी के रस में घोटकर दो-दो माशे की गोलियां बना कर इसके सेवनके बाद दूध और चावल खाने चाहिए। यह रस पुराना प्रमेह, मधुमेह और स्वप्नदोषादि रोगो को तीन दिन में ही शान्त करता है।[2]

८- श्वासकास चिन्तामणिरसः

शुद्ध पारद स्वर्ण माक्षिक भस्म तथा स्वर्ण भस्म का एक-एक भाग, मोती भस्म का १/२ भाग शुद्ध गन्धक के दो एवं गन्धक की कजली बना लेनी चाहिए। उसके बाद अन्य औषधि का सम्मिश्रण करके कटेली स्वरस, बकरी दुग्ध, मुलेठी, क्वाथ एवं पान के रस की सात-सात भावना देकर दौ-दो रत्ती की गोलियो बना लेनी चाहिए। पिपली चूर्ण एवं मधु के साथ सेवन करने से श्वास कास जैसे रोगों का नाश होता है।[3]

१- हेमाभ्रंच रसं गन्धमयो मौक्तिमेव च । धात्रीरसेन सम्मर्द्य गुंजामात्रां वटीं चरेत्।।
भक्षयेत्प्रातरूत्थाय तिलक्षोदमधुप्लुताम। सिताक्षोद्रयुतां वापि नवनीतेन वा सह।।।
अयथापानजा रोगा वातजाः कफपित्तजाः। गदाःसर्वे विनश्यन्ति ध्रुवमस्य निषेवणात्।।
भैष०र०- २२ चि०-८४, प्र०२५-२८

२- मृतवंग सुवर्णंच कान्तलौहंच पारदम्। मुक्ता गुडत्वचंत्तैव सूक्ष्मैलापत्रकेशरम्।।
समभागं विचूर्ण्याथ कन्यानीरेण भावयेत्। द्विमाषां वटिकां रवादेद् दुग्धान्न प्रपिबेत्ततः।
प्रमेहं नाशयंत्याशु केशरी करिणं यथा। शुक्रप्रवाहं शमयेत् त्रिरात्रान्नात्र संशयः।।
चिरजातं प्रवाहंच मधुमेहंच नाशयेत्।।
भैषज्यरत्नावली, ३६, प्रेमह चि० प्र० ८५-१४६-१५१, र० वि०,पृ०- १०

३- पारदं माक्षिकं स्वर्णसमाशं परिकल्पयेत्। पारदार्द्ध मौक्तिकंच सूताद द्विगुणगन्धकम्।।
अभ्रंचैव तथा योंज्यंव्योम्नो द्विगुणलौहकम्। कण्टकारीरसेनैव छागीदुग्धेन च पृथक्।।
यष्टिमधुरसेनैव पर्णपत्ररसेन च। भावयेत् सप्तवारंच द्विगुंजां वटिकां भजेत्।।
पिप्पली-मधुसंयुक्तां श्वासकासादि निवर्दिनीम्। (रसचन्द्रिका, रसराजसुन्दर, रसेन्द्रसारसंग्रह)
भैषज्यरत्नावली, ३६, प्रेमह चि० प्र० ८५-१४६-१५१, र० वि०,पृ०- १०

८- श्लेष्मान्तक रसः

अभ्रकभस्म का एक भाग, रस सिन्दूरके दो भाग, शंखभस्म के तीन भाग, मोती भस्म का १/२ भाग, कचूर चूर्ण १/२ भाग, त्रिफला चूर्ण का एक भाग इन सभी को परस्पर मिलाकर अडूसे के रसमें खूब घोट कर आधी रत्ती की गोली बनाकर अद्रक रस या मधु रस के साथ सेवन करने से कफज अग्निमांद्य और परिणामशूल का विनाश होता है।[1]

९- मृगाङ्क रसः

स्वर्ण, चाँदी मोती, लोह, अभ्रक और स्वर्णमाक्षिक भस्म तथा मुलेठी, पीपल, काली मिरच और सोंठ का चूर्ण तथाशिलाजीत को समान मात्रा में लेकर घोट लेना चाहिए। घोटने के बाद श्वेत तथा कृष्ण भृंगराज के स्वरस की भावना देनी चाहिए। प्रगाढ़ हो जाने पर दो-दो रत्ती को गोलियां बना कर सेवन करने से वातज पित्तज एवं कफज प्रमेह को नष्ट करता है। इसके अतिरिक्त कष्टसाध्य मधुमेह तक को नष्टकर देता है।[2]

१०- मृगाङ्क रसः

पारदभस्म और स्वर्णभस्मका एक-२ निष्क, शंखभस्म, शुद्ध गन्धक और मूल के क्वाथ और काजी में घोटकर गोला बनाकर इस गोलेको लवणसे भरी हुई हांड़ीके मध्य में रखकर पाक करना चाहिए। स्वांगशीत होने पर इसे कालीमिर्च एवं घृतके साथ या मधु एवं पीपलचूर्णके साथ सेवन करनेसे राजयक्ष्मा नष्ट होता है।[3]

१- अभ्रकं रस सिन्दूरं शंखभस्म च मौक्तिकम्। एकभाग-द्वित्रिभागा ह्यर्धभागं च मौक्तिकम्।।
कर्चरं मौक्तिकार्ध स्यात् त्रिफला कर्षसम्मिता। सर्वं सुखल्वे सम्मर्घ दिनं सिहास्यतोयतः।।
छायाशुष्कां वटीं कृत्वा रक्तिकार्धप्रमाणतः। आर्द्रकस्य रसेनैव मधुना सह लेहयेत्।।
श्लेष्मोल्वणं वह्निमान्द्यं शूलं सपरिमाणजम्। श्लेष्मान्तको रसो नाम विनिहन्त्यनुपानतः।।
रसचन्द्रिका, रसराजसुन्दर

२- स्वर्ण रौप्यं मौक्तिकंच विशुद्धंच शिलाजतु। लौप्मभ्रं तथा ताप्यं मधुयष्टी च पिप्पली।।
मरिचं विश्वकंचेति सर्वमेकत्र कारयेत्। विमर्द्यं प्रहरं यत्नात् कज्जलाकृतिसन्निभम्।।
रसरत्नाकर, र० वि०, पृ०-१०७

३- रसभस्म स्वर्णभस्म निष्कं निष्कं प्रकल्पयेत्। शंखगन्धकमुक्तानां द्वौ-द्वौ निष्कौ तु चूर्णयेत्।।
मुक्ताभावे वराटी वा रसपादं च टंकणम्। वहन्यारनाल-क्वाथेन मर्दयेत् प्रहरद्वयम्।।
तद्गोलकं विशोष्याथ भाण्डे लवण पूरिते। पचेद्यामचतुष्कंच मृगांकोऽयं महारसः।।
रोगराजनिवृत्यर्थ चतुर्गुंजामितं घृतैः। दातव्यं मरिचैः सार्ध पिप्पली-मधुनापि वा।।
रसराजसुन्दर, रसकामधेनु, रसेन्द्रसारसंग्रह, रसचन्द्रिका, र० वि०- पृ०- १०७

११- मृगाङ्क रसः

पारद एक भाग, स्वर्ण भस्म एक भाग, मोतीभस्म दो भाग, गन्धक दो भाग सुहागा भस्म एक भाग लेकर प्रथम गन्धक की कज्जली बनाकर अन्य भस्मों को उसी में डालकर काजी से घोटकर एक गोला बना ले। इस गोले को शरावसम्पुट में डालकर नमक से भरी हुई हांड़ी के मध्य में रखकर चार प्रहर तक गर्म कर स्वांगशीतल होने पर औषध द्रव्य को पीस लेना चाहिए। चार रत्ती की मात्रामें मारिच चूर्णके साथ अथवा दस पीपल के चूर्ण और मधु के साथ सेवन करने से प्रबल राजयक्ष्मा का नाश होता है।[1]

१२- मृगाङ्क रसः

शुद्ध पारद, गन्धक, स्वर्णभस्म, प्रत्येक का एक-एक भाग लेकर और उसी के अनुसार मोती भस्म के दो भाग, यवक्षार के १/२ भाग लेकर इन सभी को पूरी तरह घोट लेना चाहिए और कांजी से मर्दनकर गोला बना लेना चाहिए। इसे शरावसम्पुट में रखकर नमक से पूरित हांडी में नमक के मध्य में रखकर एक दिन पर्यन्त चूल्हे पर रख कर पकाना चाहिए। हांडी के स्वांग शीतल होने पर औषध को तीन रत्ती की मात्रा में पीपल चूर्ण अथवा घृत या मधु के साथ सेवन करने से क्षय अग्निमांद्य एवं संग्रहणी आदि रोगों का नाश करता है।[2]

१- स्याद्रसेन समं हेम मौक्तिकं द्विगुणं भवेत्। गन्धकंच समं तेन रसतुल्यन्तु टंकणम्।।
तत्सर्व गोलकं कृत्वा कांजिकन च पेषयेत। भाण्डे लवणपूर्णेऽथ पचेद्यामचतुष्टयम्।।
मृगांकसंज्ञको ज्ञेयो राजयक्ष्मनिकृन्तनः। गुंजाचतुष्टयंचास्य मरिचै सह भक्षयेत्।।
पिपलीदशकैवर्णपि मधुना सह लेहयेत्। वृन्ताकबिल्वतैलानि कारवेल्लंच वर्जयेत्।।
वृहन्निघण्टु, रत्नाकर, क्षयाधिकार, र० वि०- पृ०- १०७

२- रसवलितपनीयं योजयेत्तुल्यभगं, तदनु थुगलभागं मौक्तिकानां शुभानाम्।
यवजचरणभागं मर्दयेत्सर्वमेतद् दिनमपि तुषवारा गोलकं लध्वमत्रे।।
विधाय मुद्रां विदधीत भाण्डे चुल्लयां समुद्रे लवणेन पुर्णे।
दिनं पचेच्चानु मृगांकनामा क्षयाग्निमान्द्यग्रहणी विकारे ।।
योज्यः सदावल्लिजसपिर्षा वा कृष्णामधुम्यां सततं त्रिगुंजम्।
वर्ज्य सदा पित्त्करं हि वस्तु लोके शवत्पययविधिर्निरुक्तः।।
भैषज्यरत्नावली, राजयक्ष्माधिकार, र० वि०, पृ०-१०८

१३- **वसन्तमालती रसः**

स्वर्णभस्म का एक भाग, मोती भस्म के दो भाग, शुद्ध हिंगुल के तीन भाग इन सबको मिला कर मक्खन में घोटने के बाद नींबू के रस में भी घोटना चाहिए। नींबू के रसको घोटना चाहिए जबतक कि उसमें से मक्खन की स्निग्धता नष्ट हो जाए। दो रत्ती की मात्रा में मधु के साथ सेवन करते हुए यह रस अग्नि को प्रदीप्त करते हुए जीर्णजवर एवं कास का नाश करता है।[1]

१४- **महावीर रसः**

शुद्ध पारद पाँच तोला, शुद्ध गंधक पाँच तोला मोती भस्म पाँच तोला, तीक्ष्ण लोह भस्म ५ तोला, तुत्थ भस्म पाँच तोला लेकर प्रथम पारद गंधक की कज्जली बना लें। इसकें बाद इस कज्जली में शेष औषधियां मिलाकर तुलसी, कोयल, चित्रक कलिहारी, भृंगराज (भंगरैया) के स्वरस की भावना देनी चाहिए। इसके पश्चात् शराव सम्पुट में रखकर मन्दाग्नि में संस्वेदन करके सर्वांग शीतल होने पर इसे निकालकर इस समस्त द्रव्य का चतुर्थांश अर्थात ६ तोला शुद्ध वत्सनाभ चूर्ण और २५ तोले कपर्दिका भस्म मिलाकर अद्रक और जम्भीरी नींबू की क्रमशः भावना देकर सुखा लेना चाहिए। काली मिरच और मधु के साथ एक माश की मात्रा में सेवन करने से ग्रहणी, पाण्डु, गुलम और अतिसार जैसे रोगों का नाश होता है।[2]

१- स्वर्ण मुक्ता दरदमरिचं भागवृद्धया प्रदिष्टं खर्पर्य प्रथममोखलं मर्दयेतं म्रक्षणेन।
यांवत्स्नेहो व्रजति विलयं निम्बुनीरेण तावद। गुंजाद्वन्द्व मधु चपलयामालती प्राग्वसन्तः।।
सेवितोऽयं हरेत्तूर्ण ंच विषमवरम। व्याधीनन्यांश्च कासादीन् प्रदीप्तं कुरूतेऽनलम्।।
योगतरंगिणी, तरंग २७ रस चन्द्रिका,
भैषज्यरत्नावली- ज्वर प्र०१२०५-१२०६

२- द्रष्टव्य रस राजसुन्दर, राजयक्ष्माधिकार, र० वि०, पृ०- १०६
निष्को द्वौ तुत्थभागस्य रसादेकं सुसंस्कृतात्। निष्कं विषस्य द्वौ तीक्ष्णात् कर्षांशं गन्धमौक्तिकात्।।
अग्निपर्णी-हरिलता-भृंगार्द्रसुरसारसैः। मर्दितं लांगलीकन्दप्रलिप्ते सम्पुटे पचेत्।।
अर्धपादं च पोटल्याः काकिन्यौ द्वे विषस्य च। लिहेन्मरिचचूर्णं च मधुना पोटलीसमम्।।
क्षयग्रहण्यतीसाखहिन्दौर्ब्रल्यकासिनाम्। पाण्डुगुल्मवतामेष महावीरो हितो रसः।।
अतिस्थूलस्य पू[illegible]मतः क्षये। न योजयेत क्षीररसान् विरूद्धक्रमतत्वतः।।
रसरत्नसमुच्चयः अध्याय-१४, रसप्रकाशसुधाकर, र०वि०, पृ०- ११०

१५- कुमुदेश्वरी रसः

१- तुत्थ भस्म दो निष्क (१०माशा) शुद्ध पारद एक निष्क (५माशा) शुद्ध वत्सनाभ (मीठा तेलिया) ५माश, लोह भस्म १० माशा, शुद्ध गन्धक और मोती भस्म प्रत्येक १/४ कर्ष लेकर सर्वप्रथम पारद की कज्जली बनाकर अन्य औषधियों को भी कज्जली में मिला लेना चाहिए। अग्निपर्णी, विष्णुक्रान्ता, भृंगराज अद्रक तथा तुलसी स्वरस को एक दिन भावना देकर गोला बना लेना चाहिए। अग्निपर्णी, विष्णुक्रान्ता भृंगराज, अद्रक तथा तुलसी स्वरस की एक दिन भावना देकर गोला बना लेना चाहिए। इस के बाद लांगली मूल का उस गोले पर लेप करके शराव सम्पुट में बन्द करके गर्म कर लेना चाहिए। सर्वांग शीतल होने पर औषध को निकालकर औषध का अर्धपाद मुगांक पोटली रस और समस्त औषध से द्विगुण शुद्ध करके इस चूर्ण को काली मिर्च के चूर्ण एवं मधु के साथ एक रत्ती से दो रत्ती की मात्रा में सेवन कंरने से क्षय, संग्रहणी, अतिसार, अग्निमांद्य, कास, पाण्डु और गुल्म का नाश करने में उपयोगी हैं।[1]

२ कुमुदेश्वरी रसः

पारद, स्वर्ण और मोती भस्म के चार-चार भाग, सुहागा का एक भाग, गंधक के १३ भग इन सभी को कांजी से घोटकर गोला बनाकर इस गोले पर कपड़ा लपेटकर मिट्टी का लेप करके सुखा लेना चाहिए और एक दिन बालु का यन्त्र में गरम करके स्वांशीतल होने पर औषध द्रव्य को निकालकर पीस लेना चाहिए। मधु और काली मिरच के चूर्णके साथ इस रस के सेवन से राजयक्ष्मा नष्ट हो जाता है।[2]

३- कुमुदेश्वरी रसः

पारद गंधक समान मात्रा में लेकर कज्जली बना कर इसमें स्वर्ण भस्म, रस सिन्दूर, मोती भस्म, सुहागा भस्म,चाँदीभस्म और स्वर्ण माक्षिक भस्म समान मात्रा में मिलाकर कांजी में घोटकर गोला बना लेना चाहिए। इस गोले पर कपड़ मिट्टी करके नमक से भरी हुई हांडी के मध्य में रखकर एक रात्रि पर्यन्ततक पुटपाक कर लेना चाहिए। स्वांग शीतल होने पर औषध द्रव्य निकाल कर पीस लेना चाहिए। इस रसको काली मिर्च के चूर्ण और घृतके साथ सेवन करने से राजयक्ष्मा का शमन होता है।[3]

१- सूतभस्मसमहेमभस्मकं मौक्तिकं च रसपादटंकणम्।
गन्धमत्र कुरु सर्वतुल्यकं चूर्णितं तुषजलेन गोलकंम्।।
लेपयेन्मृदुमृदा विशोषितं पाचितं सिकतयन्त्रमध्यतः।
बासरैकमथ शीतलीकृतश्चूर्णितो मरिचमाक्षिकैः प्लुतः।।
भक्षितो हि कुमुदेश्वरो रसो राजयक्ष्मपरिशान्तिकारक।। रससराजसुन्दर, र० वि०- पृ० ११०,

२- द्रष्टव्य र० वि० पृ० ११२

३- .... भैषज्य रत्नावली- ज्वर प्र० १२०७-१२०८

४- कुमुदेश्वरी रसः

ताम्र भस्म, चांदी भस्म, अभ्रक भस्म लौह भस्म, मोती भस्म, हिंगुल (शुद्ध) पोहकरमूल, पारद, गन्धक, गूगल, सोंठ मिरच, पीपल, रास्ना, जमालगोटा, त्रिफला, कुटकी, दन्तीमूल, देवदाली, सेधानमक, निशोथ इन सब को समान मात्रा में लेकर सर्वप्रथम पारद की कज्जली बनाकर इस कज्जली में समस्त औषधों को डालकर एरण्ड तेल डालकर खूब घोटं लेना चाहिए। यह रस आठ प्रकार के उदर रोग, पाण्डु, आनाह, विषम ज्वर, अजीर्ण, आम, कफ, क्षय, सब प्रकार के शूल कास, श्वास, शोथ इन सभी प्रकार के रोगों को नष्ट करता है। विशेषकर यह **'प्लीहान्तक रस'** प्लीहोदर को अवश्य नष्ट करता है।[1]

१८- कुमार कल्याणो रसः

रस सिन्दूर, मोती, स्वर्ण, अभ्रक लोह और स्वर्ण माक्षिक भस्म समान मात्रा में लेकर घृतकुमारी के रस की भावना देकर मूंग के बराबर गोलिया बना कर बालक की शरीर- सम्पत्ति एवं आयु को ठीक-ठीक ध्यान में रखते हुए एक गोली अथवा आधी गोली की मात्रा में सेवन करने से यह रस जवर, श्वास, वमन, पारिगर्भिक रोग, गुदा दोष के समस्त रोग जिनके कारण बालक माता का दूध नहीं पीता है।[2]

१- हेमभस्मरस-भस्मगंधकं मोक्तिकन्तु रसटंकणं तथा।
तारकं गरुडसर्वतुल्यकं काजिंकेन परिमर्ध गोलकम्।।
मृत्स्नया च परिवेष्टय शोषितं भाण्डके लवणगेऽथ पाचयेत्।
एकरात्र मृदुसंपुटेन वा सिद्धिमेति कुमुदेश्वरो रसः।।
वल्लमस्य मरिचैर्धृतान्विते राजयक्ष्मपरिशान्तयेपिबेत्।।

भैषज्यरत्नावली, र०वि०, पृ०-११२

२- सिन्दूरं मौक्तिकं हेम व्योमायो हेममाक्षिकम्। कन्यातोयेन संमर्घ कुर्य्यान्मुद्गमिता बटीः।।
वटिका वटिकार्द्धं वा क्योऽवस्थां विविच्यच। क्षीरेण सितया सार्द्धं वालेषु विनियोजयेत्।।
कुमाराणां जवरं श्वासं वमनं पारिगर्भिकम्। ग्रहदोषांच निखिलान् स्तन्यस्याग्रहणं तथा।।
कामलामतिसारंच कृशतां वह्निवैकृतम्। रसः कुमारकल्याणो नाशयेन्नात्र संशयः।।

भैषज्यरत्नावली बालरोग चि०प्र०, श्लो० ११६-१२२

१९- त्रैलोक्यमोहनो रसः

पारद, गंन्धक, बंग और मोती भस्म तथा शिलाजीत इन सब को समान मात्रा में लेकर पाषण भेद, घृतकुमारी, मूर्वा गुडूचि और त्रिफला के क्वाथ को अलग-अलग भावना देकर सुखा लेने के बाद आतशी शीशी में भरकर शीशी के मुख को(उडद का आटा मीटा तेलिया का चूर्ण और पानी को पिटठी बनाकर) बन्दकर शीशी को बालुका यंत्र द्वारा चार पहर की आंच देकर स्वांग शीतल होने पर औषध द्रव्य को निकालकर पीस लेना चाहिए। इस रस को चोपचीनी चूर्ण १ माशा और त्रैलोक्य मोहनरस एक रत्ती को पान के बीडे के साथ सेंवन करने से प्रमेह का नाश होता ह।[1]

२०- त्रिपुरसुन्दरो रसः

रस सिन्दूर, अभ्रकं भस्म, स्वर्णमाक्षिक भस्म, मोती भस्म ओर स्वर्णभस्म समान मात्रा में लेकर घुतकुमारी क रस में पांच दिन तक घोंटकर एक-एक रत्ती की गोलियाँ बनाकर दस उत्तम रस के सेवन से आमाशय सम्बन्धी रोग नष्टहोते हैं। बल, वीर्य और बुद्धिकी वृद्धि होती है और शरीर लावण्यमय हो जाता है।[2]

१- शुद्धसूतस्तथा वंगभस्म शिलाजतुः। मौक्तिकं च समं सर्वं शुष्कमादौ विमर्दयेत।।
पाषाणभेदक्वाथेन कुमारीस्वरसेन च । मूर्वागुडूचीत्रिफलाकषायेण पृथक पृथक्।।
दिनानि पंच सम्मर्द्य धर्मे संशोषयेत्ततः। काचकूप्यांविनिक्षिप्य मुखं तस्य विमुद्रयेत्।।
माषन्नविषचूर्णानां कल्केन भिषगुत्तमः। संस्थाप्य बालुकायन्त्रे चतुर्यामं विपाचयेत्।।
चोपचीनीयचूर्णेन माषमानेन योजितः। त्रैलोक्यमोहनो नाम्ना गुंजामात्रो रसोत्तमः।
पर्णखण्डेन दातव्यः प्रमेहमन्थनः परः।। रसराजसुन्दर, र० वि०, पृ०- ११३

२- सिन्दूरमभ्रन्त्वथ हेममाक्षिकं मुक्ताफलं हेंम च तुल्य भागिकम्।
कन्याम्बुना मर्दय सप्तवासरान् गुंजाप्रमाणां वटिकां विधेहि च ।।
रसोत्तमस्यास्य निषेवणारो ह्यामाशयोत्थामयरोगसंघतः।
गत्वा विमुक्तिं बलवीर्यसयुतो मेधान्वितः सौम्यवपुश्च जायते।।
भैषज्यरत्नावली गदोद्वेगचिन्ह०प्र० - ०९-१० श्लोक तदेव- पृ०- ११४

२१- रसेन्द्र-चूर्णम्

रस सिन्दूर एक पल (५तोले) वंशलोचन, मोतीभस्म, स्वर्णभस्म प्रत्येक को तीन-तीन माशे लेकर इन चारों औषधियों को खरल में घोट लेना चाहिए। इसके पश्चात् वस्त्रपूत अफीम को भी उपर्युक्त चारों औषधियों में मिलाकर घोट लेने चाहिए। घोटते समय थोड़ा-थोड़ा दूध डाल कर धूप में सुखाने के बाद इस औषध का चूर्ण बना कर चार रत्ती की मात्रा में दूधके साथ सेवन करने पर अपने अग्नि बल को ध्यान में रखते हुए मोदक का सेवन अनुपान रूप में किया जा सकता है। इसके प्रयोग के सेवन काल में उष्ण बल का ही प्रत्येक कार्य में उपयोग करना चाहिए । जैसे शौच एवं जलपान में उष्ण जल का ही सेवन करना चाहिए। इस रस के सेवन से ग्रहणी रक्तातिसार प्रसूति का रोग तथा अग्निमाद्यादि रोगों का विनाश करके अग्नि को प्रदीप्त करते हुए शरीर को हृष्टपुष्ट और बलवान करता है।[1]

२२- हंसपोटली रसः

शुद्ध पारद का एक भाग, तीक्ष्ण लोहभस्म के दो भाग, तुत्थभस्म के दो भाग शुद्ध गंधक का एक भाग, मुक्ताभस्म का एक भाग, शुद्ध वत्सनाभ का एक भाग लेकर सर्वप्रथम गंधक की कज्जली बना कर समस्त औषधियों को इसमें मिलाकर खरल कर लेना चाहिए। भंगराज, अदरक, तुलसी, केवांच, हल्दी, कलिहारी इन प्रत्येक की जड़ के रस की एक-एक दिन भावना देकर एक-एक माशे की वटिका बनाकर काली मिर्च के चूर्ण अथवा मधु के साथ सेवन करने से संग्रहणी, अतिसार पाण्डु निर्बलता, गुल्म, श्वासकास, हिक्का और अरूचि जैसे रोगों का नाश होता है।[2]

१- पलैकं रससिन्दूरमाददीताथ शाणकम्। प्रत्येकं वंशजा मुक्ता निरूत्थं हेमभस्मनाम्।।
द्राव्यैदहिफेनस्य शाणं क्षीरे निमज्जितम्। वस्त्रपूतेन तेनैव तत्सर्व मर्दयेद्भृशम्।।
छायायामातपे वऽथ शोषयेच्चूर्णयेत्ततः। चर्तुगुंजामितं चूर्णं क्षीरेण यह सेवयेत्।।
सक्षीरमन्नमश्नीयान्नाश्नीयाल्लवणाम्भसी। याक्ज्जीर्येत् तावदाद्यं पक्वमांयेन मोदकम।।
शोचमाचमनं कार्यमग्नि पूतेन वारिणा। वाससाच्छादयेद देहं न स्नायादस्या सेवकः।।
अत्रानुवर्तयेत्सर्वान् नियमान् रससेविनाम्। चूर्णं रसेन्द्रनामेदं रसे श्रेष्ठं रसायनम्।।
नाशयेद् ग्रहणीं कृत्सनां रक्तातिसारसूतिके। अग्निमान्द्यादिकं जित्वा दोपयेज्जठरानलम्।।
पुष्टंहृष्टं बलिष्ठंच नरः कुर्याद्धिताशनः।
भैष०र० ग्रहण्याधिकारः चि०प्र०- ५०१-५०८ श्लो०,र० वि०, पृ०- ११६

२- निष्कैकं मर्दितं सूतं द्विनिष्कं मृततीक्ष्णकम्। शिखितुत्थं तीक्ष्णातुल्यं कर्षार्द्ध गन्धमौक्तिकम्।।
विषं निष्कं चैतत्सर्व भृंगार्द्रसुरसारसैः। अग्निपर्णी हरिद्रा च लांगलीकन्दजैर्द्रवैः।।
मरिचैर्मधुना लेह्या माषैका हंसपोटली। हन्ति सग्रहणीं चैव अतिसारं च पाण्डुताम्।।
दौर्बल्यं गुल्मं श्वासं च कासं हिक्कामरोचकम्। क्षौद्रेण विजयानिष्कं लेहयेदनुपानकम्।।
रसराजसुन्दर ग्रहण्याधिकारः, र० वि०- पृ०- ११६

२३- सिद्धसूतः

पारद भस्म पांच तोला, स्वर्ण भस्म पाच तोला, बंगभस्म पांच तोला, मोतीभस्म दस तोला, सुहागा एकतोला इन पांचों औषधियों को अम्लवेतस के क्वाथ में एक दिन तक घोटने के बाद सात दिन तक जौ की कांजी में घोटकर गोला बना लेना चाहिए। इस गोले को लघु पुट में पाक करके स्वांग शीतल होने पर चूर्णकर स्वर्ण अथवा चादी के पात्र में रख देना चाहिए। यह राज-मृगांकरस राजयक्ष्मा को नष्ट करता है। इसका सेवन एक रत्ती से दो रत्तो तक का ही है।[1]

२५- लक्ष्मी विलासरसः

मोती भस्म, स्वर्णपत्र (वरक), चांदीपत्र और यवक्षार लें। एक तोला पारद में स्वर्णपत्र और रजतपत्र मिलाकर घोटें और फिर इसमें मोतीभस्म तथा यवक्षार डालकर पुनः घोटकर लाल कमल के स्वरस की एक दिन तक भावना देकर शुद्ध गंधक एक तोला डालकर घोटकर इस द्रव्य को आतिशी शीशी में भरकर शीशी का मुख बन्द कर बालुका यन्त्र में तीन प्रहरतक पाक करके स्वांगशीत होने पर औषध द्रव्य को मुसली के चूर्ण और शर्करा के साथ एक रत्ती की मात्रा में सेवन करने पर यह नंपुसकता को नष्ट करके वीर्य को बनाता है तथा निर्बल और कमजोर शरीर में बल को बढाता है। मूंग की दाल, शाली चावल एवं भैस का दूध और घी इस रस के सेवन काल में पथ्यकर है।[2]

२६- पारद और गंधक एक-एक तोला लेकर कज्जली बनाकर इसे बंगभस्म चांदीभस्म, कपूर और अभ्रकभस्म एक-२ तोला मिलाकर स्वर्ण और मोती भस्म तीन-२ माशे डालकर भृगंराज स्वरस में घोटकर दो-दो रत्ती की गोलिया बनाकर सेवन करने से साध्य अथवा असाध्य समस्त बीस प्रकारके प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, पाण्डु, धातुगतज्वर, हलीमक, रक्त पित्त, वातज, पित्तज और कफजं ग्रहणी, आमदोष, मन्दाग्नि, अरूचि, सोमरोग बहुमूत्र एवं समस्त प्रकार की मूत्रज व्याधियां, मूत्रातिसारदि रोग नष्ट होते हैं। दुर्बल व्यक्ति हृष्टपुष्ट होता है।

१-मक्ताफलं शुद्धसूतं सुवर्णं रूप्यमेव च । यवक्षारचं तत्सर्वं तोलकैकं प्रकल्पयेत्।।
रक्तोत्पलपत्रतोयैर्मर्दयेत्पत्तलोकृतम्। मर्दयेच्च पुनर्दत्तवा गन्धकं तदनन्तरम्।।
क्षिप्तवा काचघटीमध्ये सन्निरूध्य त्रियामकम्। सिकताख्ये पचेच्छीते सिद्धसूतन्तु भक्षयेत्।।
रक्तिकैकप्रमाणेन मुशलीशर्करान्वितम्। शुक्रवृद्धि करोत्येष ध्वजभगंच नाशयेत्।।
दुर्बलं वपुरत्यर्थं बलयुक्तं करोत्यसौ। मुद्गर्भं घृतं क्षीरं शालयो माहिषं हितम्।।
रत्नावली-११७/७४ वाजीकरण प्र०-८४-८८, श्लोक

२-द्रष्टव्य रत्नावली-११७/७४ वाजीकरण प्र०-८४-८८, श्लोक

यह रस वीर्य की वृद्धि करते हुए बल, वर्ण, तेज ओज और कामशक्ति को बढाता है। इस रस का सेवन बाल वृद्ध सभी को मात्रा, काल का विचार करके कराया जाता है।[1]

२७- पारद और गंधक एक-एक तोला लेकर कज्जली बनाकर इसे बंगभस्म चांदीभस्म, कपूर और अभ्रकभस्म एक-२ तोला मिलाकर स्वर्ण और मोतीभस्म तीन-३ माशे डालकर भृगंराज स्वरस में घोटकर दो-दो रत्ती की गोलियॉं बनाकर सेवन करने से साध्य अथवा असाध्य समस्त बीस प्रकार के प्रमेह, मूत्रकृच्छ, पाण्डु, धातुगत ज्वर, हलीमक, रक्त पित्त, वातज, पित्तज और कफज ग्रहणी, आमदोष, मन्दाग्नि, अरूचि, सोमरोग बहुमूत्र एवं समस्त प्रकार की मूत्रज व्याधियॉं, मूत्रातिसारदि रोग नष्ट होते हैं। दुर्बल व्यक्ति हृष्टपुष्ट होता है। यह रस वीर्य की वृद्धि करते हुए बल, वर्ण, तेज ओज और कामशक्ति को बढाता है। इस रस का सेवन बाल वृद्ध सभी को मात्रा, काल का विचार करके कराया जाता है।[2]

१- सुवर्णताराभ्रकताम्रवंग-त्रिलोहनागामृतमौक्तिकानि।
एतत्समं योजय रसस्य भस्म खलवे कृतं स्यात्कृतकज्जलीकम्।।
सुमर्दयेन्माक्षिकसम्प्रयुक्तं तच्छोपयेद् द्वित्रिदिनं च धर्मे।
तत्कल्कमूषोदरमध्यगामि यत्नात्कतं ताक्षर्यपुटेन पक्वम्।।
यामाष्टकं पावकमर्दितं च लक्ष्मीविलासो रसराज एषः।
क्षये त्रिदोषप्रभवे च पाडौ सकामले सर्वसमीरणेषु।।
शोफप्रतिश्यायप्रनष्टवीर्यं मूलामयं चैव सशूल्कुष्ठम्।
हत्वाग्निमान्द्यं क्षयसन्निपातं श्वासं च कासं च हरेत्प्रयुक्तम्।
तारूण्यलक्ष्मी प्रतिबोधनाय श्रीमद्विलासो रसराज एषः।।
रस चन्द्रिका, रसराजसुन्दर, रसेन्द्रसार संग्रह, र० वि०, पृ-११८,११६

२- एकांशो रसराजस्य ग्राह्यौ द्वौ हाटकस्य च। मुक्ताफलस्य चत्वारो भागाः षडदीर्घनिः स्वनात्।।
त्र्यशं बलेर्वराटयाश्च टंगणो रसपादिकः। पकवनिम्बूकतोयेन सर्वमेकत्र मर्दयेत्।।
मूषामध्ये न्यसेत कल्कं तस्य वक्त्रं निरोधयेत्। गर्तेऽरत्निप्रमाणे तु पुटेत्त्रिशद्वनोपलैः।।
स्वांगशीतलतां ज्ञात्वा रसं मूषोदरान्नयेत। ततः खल्लोदरे मर्घ सुधारूपं समुद्धरेत्।।
एतस्यामृतरूपस्य दघाद् द्विगुंजसन्मितम्। घृतमाध्वीकसंयुक्तमेकोन त्रिशंदूषणैः।।
मन्दाग्नौ रोगसंधे च ग्रहण्या विषमजवरे। गुदांकरे महामूले पीनसे श्वासकासयोः।।
अतिसारे ग्रहण्यांच श्वयथौ पाण्डुके गदे। सर्वेषु कोष्ठरोगेषु यकृत्प्लीहादिकेषु च।
वातपित्तकफोत्थेषु द्वन्दजेषु त्रिजेषुच।।
रसराजसुन्दर, वैद्यक कल्पद्रुम, योगरत्नाकर' र० वि० - ११८-११६

२७- योगेन्द्ररसः

स्वर्ण, चाँदी अभ्रक, ताम्र का, तीक्ष्णलोह, कान्तलोह, मुण्डलोह, सीसक और मोती भस्म तथा मीठातेलिया के चूर्ण का एक-एक भाग लेकर इन सभी भस्मों के बराबर पारद भस्म को लेकर मधु के साथ घोटने के बाद दो तीन-दिन तक धूप में रख लेना चाहिए। धूप में जब यह द्रव्य प्रगाढ़ हो जाए तब गोला बनाकर इस के सवांग शीतल होने पर औषध द्रव्य को निकालकर चीता के क्वाथकी भावना देकर सुखा लेना चाहिए। इस रस के सेवन से क्षय, त्रिदोषज, पाण्डु, कामला, कतरोग, शोथ, प्रतिश्याय, शुक्रक्षय, अर्श शूल, कुष्ट, अग्निमांद्य, सन्निपात् श्वासकास का नाश होता है एवं जबानी और लक्ष्मी को बढ़ाता है।[1]

२८- हिरण्यगर्भपोटली रसः

पारद भस्म का एक भाग, स्वर्ण भस्म के दो भाग, मोती भस्म के चारभाग, शंखभस्म के ६ भाग, शुद्ध गंधक के ६ भाग, कौड़ी भस्म के तीन भाग, सुहागा भस्म के १/४ भाग लेकर सर्व प्रथम पारद गंधक की कज्जली बना लें। इस कज्जली में अन्य समस्त भस्मों को डालकर नींबू के रसकी भावना देकर एक सुदृढ़ मूषा में बन्दकर इस मूषा को एकगर्त में तीस उपलों के मध्य में रखकर स्वांगशीतल होने पर औषध द्रव्यको निकाल कर पीस लेना चाहिए। दो रत्ती की मात्रा में काली मिर्च २६, घृत और मधु के अनुपान से इस रस के सेवन से अग्निमांद्य, ग्रहणी रोग, विषम जवर अर्श, पीनस श्वासकास, अतिसार, पाण्डु शोथ, उपर रोग, यकृतरोग और लोहा रोगों को यह रस नष्ट करता है। इसके अतिरिक्त समस्त सन्निपातों में तथा समस्त रोगों में इस का प्रयोग किया जा सकता है।[2]

१- द्रष्टव्य र० वि०, पृ- ११८, ११६

२- एकांशो रसराजस्य ग्राह्यौ द्वौ हाटकस्य च। मुक्ताफलस्य चत्वारो भागाः षडदीर्घनिः स्वनात्।।
त्रयशं बलेर्वराटयाश्च टंगणो रसपादिकः। पकवनिम्बूकतोयेन सर्वमेकत्र मर्दयेत्।।
मूषामध्ये न्यसेत कल्कं तस्य वक्त्रं निरोधयेत्। गर्तेऽरत्निप्रमाणे तु पुटेत्त्रिशद्वनोपलैः।।
स्वांगशीतलतां ज्ञात्वा रसं मूषोदरान्नयेत। ततः खल्लोदरे मर्घ सुधारूपं समुद्धरेत्।।
एतस्यामृतरूपस्य दघाद् द्विगुंजसन्मितम्। घृतमाध्वीकसंयुक्तमेकोन त्रिशंदूषणैः।।
मन्दाग्नौ रोगसंधे च ग्रहण्या विषमजवरे। गुदांकरे महामूले पीनसे श्वासकासयोः।।
अतिसारे ग्रहण्यांच श्वययौ पाण्डुके गदे। सर्वेषु कोष्ठरोगेषु यकृत्प्लीहादिकेषु च।।
वातपित्तकफोत्थेषु द्वन्दजेषु त्रिजेसायनम्।।
भैषज्यरत्नावली, ८ग्रहणीरोगचि०प्र० ८६४-८६६, र० वि०, पृ-११८,११६

२६- योगेन्द्ररसः

रस सिंदूर के दो भाग, स्वर्ण कान्तलोह, अभ्रक मोती बंगभस्म का एक -एक भाग इन सबों को मिलाकर घृतकुमारी के रस में घोंटकर गोला बनाकर इस गोले को सुखाकर और पत्तों से लपेटकर धानके ढेर में दबाकर तीन दिनके बाद निकाल कर दो-दो रत्ती को गोलियां बनाकर अनुपान भेदसे समस्त रोगों में दिया जा सकता है। इस रस के सेवन से वातरोग, पित्तरोग, प्रमेह, बहुमूत्र, मूत्राघात, अपस्मार, भगन्दर अर्श, उन्माद मूर्धा, यक्ष्मा, पक्षाघात, शूल और अम्लपित्त का नाश इस प्रकार होता है, जैसे सूर्य के उदय होने पर अन्धकार का नाश हो जाता है। इस के अलावा इस को वंशलोचन, मिश्री और त्रिफला क्वाथ के साथ लेने से रोगी व्यक्ति कामदेव के समान देखने में स्वरूपवान हो जाता है। इसके सेवन काल में दुर्बल व्यक्तियों को रात्रि में गौ का दूध पीना चाहिए।[1]

३०- चिन्तामणिरसः

पारद गंधक समान मात्रा में लेकर कज्जली बना लेनी चाहिए। वैक्रात, चाँदी, ताम्र, लोह, मोती ओर स्वर्ण भस्म समान मात्रा में लेकर कज्जली में मिलाकर अद्रक, भृंगराज और चीता के रस को एक रत्ती की मात्रा में मधु और पीपल चूर्णके साथ सेवन करने से अर्श, क्षय, कास, अरूचि, जीर्ण जवर, पाण्डु, प्रमेह, विषम जवर और वायु रोग नष्ट होते हैं।[2]

१- विशुद्धं रससिन्दूरं तदर्घ शुद्धहाटकम्। तत्समं कान्तलोहं च तत्समं चाभ्रमेव च।।
विशुद्धं मौक्तिचैव वंग च तत्समं मतम्। कुमारिकारसैर्भव्यं धन्यराशौ दिनत्रयम्।।
ततो रक्तिद्वयमितां वटिं कुर्याद्विचक्षणः। योगवाही रसो ह्येष सर्वरोगकुलान्तकः।।
वातपित्तभवान् रोगान् प्रमेहान् वहुमूत्रताम्। मूत्राघातमपस्मारं भगन्दरगुदामयम्।।
उन्मादं मूर्च्छां यक्ष्माणं पक्षघातं हतेन्द्रियम्। शूलाम्लपित्तकं हन्ति भास्करस्तिमिरं यथा।।
त्रिफलारसयोगेन शुभया सितयापि वा। भक्षयित्वा भवेद्रोगी कामरूपी सुदर्शनः।।
रात्रौ सेव्यं गवां क्षीरं कृशानां च विशेषतः। योगेन्द्राख्यो रसो नाम्ना कृष्णात्रेयविनिर्मितः।।
धन्वन्तरि संहिता, र० वि०, पृ०- १२०

२- रसेन्द्रवैक्रान्तकरौप्यताम्रं सलोहमुक्ताफलगन्धहेम।
त्रिर्भावितं चाऽऽर्द्रकभृंग वहिन रसैरजागोपयसा तथैव।।
अर्शः क्षयं कासमरोच कंच जीर्णज्वरं पाण्डुममपि प्रमेहान्।
गुंजाप्रमाणं मधुमागधीभ्याम् लीढं निहन्याद्विषमं च वातम्।।
चिन्तामणिरिति ख्यातः पार्वत्या निर्मितः स्वयम्।।
धन्वन्तरि संहिता र० वि०, पृ०- १२१

३१- मोतीभस्म ६ माशा, कुचला चूर्ण दो दाने, सोने के बर्क १ माशा, चांदी के वर्क तीन माशे केशर एक तोला, जावित्री ६ मासा जायफल एक तोला, अकरकरा दो तोला, छोटी इलाची बीज एक तोला, भीमसेनी कपूर तीन माशा, कंकोल एक तोला-इन समस्त द्रव्यों को मिलाकर गुलाब जल में तीन दिन तक घोटकर दो-दो रत्ती की गोलियाँ बनाकर दूधके साथ सेवन करने से काम शक्ति, स्मरणशक्ति एवं स्तम्भनशक्ति प्रबल हो उठती है। इसका सेवन मुख्यतः शीतऋतु में करना चाहिए।[1]

३२- मोती बंशलोचन, चन्दन सफेद, अबरेश्म, बहमन सफेद प्रत्येक दो-दो तोला, अम्बर, सोने के वर्क और चांदी के बर्क पाँच-५ माशे कस्तूरी दो माशा, चीनी सफेद १५ तोला, गुलाब के फूल १५ तोला, अर्कवेदमुश्क १५ तोला, शहद १० तोला, इन सभी द्रव्यों को मिलाकर एक मशे की मात्रा में हर रोज इस्तेमाल करने से अन्माद व कमजोरी हटती है और काम शक्ति बढती है।[2]

३३- मोती भस्म आठ माशे, ककडी के बीज की मगज एक तोला, कद्दू मगज दस मासा, सफेद चंदन का चूर्ण पांच माशा,गुलाब जल दस तोला, गुलबनफशा सात माशा, गावजबां फूल सात माशा, बंसलोचन सात माशा, केशर तीन माशा, कस्तूरी सात माशा, अम्बर सात माशा इन सभी द्रव्यों को मिलाकर इनमें अनार शर्बत ६तोला, जरिश्क, शर्बत ६ तोला, अर्कवेदमुश्क तीन तोला मिलाकर एक मासा की मात्रा में एक महीनेतक सेवन करने से पागलपन दूर होता है तथा कामोत्तेजक भी है।[3]

३४- वंशलोचन अवरेशम कतरा हुआ,मस्तगी, केसर सम्बुल, मोतीभस्म, कहरूआ गुलसुर्ख प्रत्येक को तीन- तीन मात्रा लेकर माणिक्य, रवेन्द, नागर मोथा, ऊद, हिन्दी, मिचियागन्द, सफेद चन्दन, तुरंज का बक्कल, पत्रज, बुसद(प्रवाल) यशवहरा, तुख्मबादरंज बोया दरबंज, हील, छोटी-छोटी इलायची, जरिश्क, बेदाना, अम्बर, अशहब, सोनेके वर्क चांदी के वर्क प्रत्येक को दो-२ मासे लेकर सेवन करने से यह द्रव्य हृदय और मस्तिष्क को पुष्ट बनाता है। शरीर की दुर्बलता और पाचन शक्ति को बढाता है। पौरुष शक्ति को बढाने में भी यह सहायक सिद्ध होता है।[4]

१- द्रष्टव्य र० वि० पृ०- १२१

२- द्रष्टव्य तदेव - -

३- द्रष्टव्य तदेव - पृ०- १२२

४- द्रष्टव्य तदेव - -

३५- नवरत्नराजमृगाङ्करसः

शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, स्वर्ण भस्म, चाँदी भस्म, वैक्रान्त भस्म, कान्तलौह भस्म, वङ्गभस्म, सीसा भस्म, हीरा भस्म, मूँगा भस्म, विमल (स्वर्णमाक्षिक भेद) भस्म, माणिक्य भस्म, मरकत मणि भस्म, (पन्ना भस्म) स्वर्णमाक्षिक भस्म, मोती भस्म, पोखराज भस्म, शंख भस्म, वैदूर्य भस्म, ताम्र भस्म, शुक्ति भस्म, हरताल भस्म, अभ्रक भस्म, शुद्धहिङ्गल, शुद्धमनः शिला, गोमेद मणि भस्म और नीलम भस्म प्रत्येक १-१ भाग लेकर सबको एकत्र घोट कर उस में निम्न लिखित औषधियों के स्वरस या क्वाथ की पृथक्-पृथक् सात-सात भावनायें देवें। भावना द्रव्य- गोखरू, पान, अडूसा, गोरखमुण्डी, पिपली, चीता, ईख, गिलोय, धतूरा, भांग, द्राक्षा, शतावर, पुनर्नवा, गुलाब (सेवती), मुलेठी, सेमल, धाय, जायफल, बला (खिरेटी), अतिबला (कंघी), महाबला, नागबला, सुगन्धबाला, दाल चीनी, लौंग, कंकोल, कस्तूरी और नागकेशर इनमें से जिनके स्वरस मिल सकें उनके स्वरस और कस्तूरी का जल तथा शेष द्रव्यों का क्वाथ लेना चाहिए। इन सब की पृथक्-पृथक् सात भावना देने के पश्चात् उसका १ गोला बनावें और उसे सुखाकर शराब सम्पुट में बन्द करके १ दिन 'लवण यन्त्र' (सेंधा नमक से भरी हुई हाँडी) के बीच में रखकर क्रमवर्धित अग्नि पर रखकर पकावें। तदन्तर यन्त्र के स्वाङ्ग शीतल हो जाने पर उसमें से औषध को निकाल कर उस में पुनः उपर्युक्त द्रव्यों की ७-७ भावना दें। अन्त में कपूर और कस्तूरी समान भाग लेकर दोनों को एकत्र मिलाकर उसके पानी की १ भावना देकर सुरक्षित रखें। यह शंकर महादेव जी का कथित रस अत्यन्त गोपनीय है।

प्रयोग-

१-१ रत्ती मात्रा, इसे सेंधा नमक और पीपल के चूर्ण तथा शहद के साथ सेवन करने से शोथ, पाण्डु, उपद्रवों से युक्त वाव्याधि और २० प्रकार के प्रमेह नष्ट होते हैं। दुर्जय और गम्भीर वात रक्त में इसे हरड़ के चूर्ण के साथ देना चाहिए। यदि इसे गुडुची के सत्त्व, पीपल चूर्ण और शहद के साथ दिया जाय तो आध्मान, अरुचि, शूल, अग्निमान्द्य, खांसी, अपस्मार और वातोदर का नाश होता है। इसके अतिरिक्त यह रस, श्वास, संग्रहणी, हलीमक, हर प्रकार के ज्वर और क्षय को नष्ट करता है। एवं धातुओं का पोषण और कामशक्ति को अन्यन्त प्रबुद्ध करता है। इसके सेवन से इतनी शक्ति आ जाती है कि मनुष्य में प्रबलता आने लगती है। रोगोचित अनुपान के साथ सेवन करने से यह रस अन्य भी बहुत से रोगों को नष्ट करता है। यह नवरत्नों से युक्त **'राजगृगाङ्क'** रस है। ऐसा ही वर्णन योग रत्नावली में भी आया है।[1]

---

१. सूतं गन्धकहेमतारस्सकं वैक्रान्तकान्तायसंवङ्गं नागपविप्रवालविमलामाणिक्यमारुत्मतम्।
ताप्यं मौक्तिकपुष्परागजलजं वैदूर्यकं शुल्बकं शुक्तिस्तालकमभ्रमहिङ्गलशिलागोमेदनीलं समम्।।
गोक्षूरैः फणिवल्लिसिंहवदनामुण्डीकणाचित्रकैरिक्षुच्छिन्नरूहाहरप्रियजयाद्राक्षावरीजद्रवेः।
शोफघ्नीशतपत्रिकामधुजलैः सच्छाल्मलीधातकी जातीसस्यबलाचतुष्टयजलत्वग्देव पुष्पद्रशै।।
भैषज्यरत्नावली- वातव्याधि चि०- पृ०- २१३-२१८

३६- मुक्तादि का चूर्ण-

चरक संहिता के सप्तमाध्याय में मुक्तादि रत्नों को चूर्ण कर अन्यौषधियों के साथ आँखों के लिए अँजन बनाने एवं प्रयोग करने की विधि इस प्रकार बताई है। खाने के लिए रत्नों की भस्म प्रयोग में लानी चाहिए।

मोती, मूँगा, वैदूर्य (लहसुनिया), शंख, स्फटिक, सुरमा, लाल चन्दन, कांच, अर्कपुष्प (मदार पुष्प) छोटी इलायची, सौन्धानमक, सोंचलनमक, ताम्र भस्म, लौह भस्म, रजत भस्म, सौगन्धिक (हिङ्गुलसहशवर्ण का पद्मराग) भस्म, कशेरूक (कसेरु), जायफल, सनबीज, अपामार्ग, के निस्तुष बीज, इनके समपरिमाण में मिश्रित चूर्ण को १ कर्ष परिमाण में मधु और घी से चटायें।

गुण-

यह चूर्ण हिक्का, श्वास और कास को शीघ्र नष्ट करता है। आँखों में आँजने से तिमिर काँच नीलिका पुष्पक (फूला), अन्धकारदर्शन पिल्लरोग कण्ड्र अभिष्यन्द तथा अर्म नष्ट होते हैं। अञ्जनार्थ इस योग को प्रस्तुत रत्नों को सुदृढ़ खल्व में अत्यन्त श्लक्षम पीस लेना चाहिए। खाने के लिए भस्म का प्रयोग और ताम्रादि धातु की भस्म केवल गन्धक के साथ की होनी चाहिए।[1]

प्रवाल प्रयोग-

प्रवाल, मोती, अञ्जन, शंख, स्वर्ण और गेरू भस्म समान मात्रा में लेकर खरल करके रख लें। इसे मधु के साथ सेवन करने से पाण्डु आदि रोग नष्ट होते हैं।[2] सुश्रुतसंहिता

३६- कन्दर्परसः

शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, प्रवाल, स्वर्ण, गेरु, वैक्रान्त, चाँदी, शंख और मोती भस्म समान मात्रा में लेकर बड़ की कलियों के रस की ७ भावना देकर ३-३ रत्ती की गोलियाँ बना लें।

सेवन- इस रस को त्रिफला, देवदारु और अर्जुन के क्वाथ के साथ सेवन करने से औपसर्गिक मेह नष्ट होता है।[3] भैषज्यरत्नावली

---

१. मुक्ताप्रवालवैदूर्यशङ्खस्फटिकमञ्जनेम्। संसारगन्धकाचार्कसूक्ष्मैलालवणद्वयम्।।
ताम्रायोरजसी रूप्यं सौगन्धिककशेरूकम्। जातीफलं शणाद् बीजमपामार्गस्य तण्डुलाः।।
एषां पाणितलं चूर्णतुल्यानां क्षौद्रसर्पिषा। हिक्कांश्वासं च कासं च लीझमाशु नियच्छति।।
अञ्जनातिमिरंकाचं नीलिकांपुष्पकं तमः। पिल्लं कण्ड्मभिष्यन्दमर्म चैव प्रणाशयेत्।।
चरकसंहिता- ७ अध्याय/१२४-१२७

२. प्रवालमुक्ताञ्नशंखचूर्णं लिह्यात्तथा काञ्चनगौरिकोत्थम्। सुश्रुत संहिता चि० - ४४

३. रसं गन्धं प्रवालञ्च काञ्चनं गिरिमृत्तिका। वैक्रान्त रजतं शंखं मौक्तिञ्च समं समम्।।
न्यग्रोधस्य कषापेण भाव यित्वा च सप्तथा। वल्लोनमानां वटीं कृत्वा त्रिफलाक्वाथ वारिणा।।
सुरप्रियस्यार्जुनस्य क्वाथेनाभाम्भसापि वा। औपसर्गिकमेहस्य शान्तयर्थं विनियोजयेत्।।
भैषजन्यरत्नावली- मौपसर्गिकमेह चि० पृ०- २७-२६

३७- वसन्तमालिनीरसः

वैक्रान्त, अभ्रक, ताम्र, स्वर्णमाक्षिक रौप्य, गन्धक, प्रवाल, पारद, लौह, सुहागा और शम्बूक भस्म समान मात्रा में लेकर शतावर और हल्दी के क्वाथ की ७-७ भावना देकर सुखा लें। अब कस्तूरी और कर्पूर द्रव की भावना देकर २-२ रत्ती की गोलियाँ बना लें।

सेवन-

इस रस को पीपल और मधु के साथ सेवन करने से धातुओं में पहुँचा हुआ जीर्ण ज्वर नष्ट होता है। गुडूचिसत्त्व और मिश्री के साथ लेने से प्रमेह तथा बिजौरा नींबू और अदरक रस के साथ लेने से अश्मरी का नाश होता है।[1] (रसराजसुन्दर, रसचन्द्रिका)

३८- रक्तपित्तकुठारो रसः

पारद गन्धक समान मात्रा में मिलाकर कज्जली तैय्यार कर लें। इस में प्रवाल, स्वर्णमाक्षिक, सीसा और बंगभस्म समान मात्रा में डाल कर चन्दन, कमल, मालती की कलियाँ, अडूसा के पत्ते, धनिया, गजपीपल, शतावर, सेमल की छाल, बड़ पेड़ की दाढ़ी, इन सबों को क्वाथ से अलग-अलग १-१ भावना देकर पश्चात् घृत से घोट कर सुरक्षित रख दें।

सेवन- मधु और अडूसा के रस के साथ सेवन करने से रक्तपित्त का नाश होता है। संसार में इस रस के समान रक्तपित्त नाशक और दूसरी औषध नहीं है। इस रस का वर्णन रस राज सुन्दर, रासकामधेनु, रस चन्द्रिका, योगरत्नाकर, योगतरंगिणी, बृहद्रोगतरंगिणी, बहन्निघण्टुरत्नाकर में आया है।[2]

---

१. वैक्रान्तमभ्रं रविताप्यरौप्यगन्धप्रवालं रसभस्म लोहम्।
सटङ्कणं शम्बुकभस्म सर्वं समस्तमेतच्च वरीरजन्योः।।
द्रवैर्विमर्द्यं मुनिसंख्यया च कस्तूरिका शीतकरेण पश्चात्।
वल्लप्रमाणो मधुपिप्पलीभ्यां जीर्णज्वरे धातुगते प्रदेयः।।
छिन्नोद्भवा सच्वसितायुतश्च सर्वप्रमेहेषु च योजनीयः।
रसो वसन्तनामाऽयं मालिनीपदपूर्वकः।।
रसराजसुन्दर, रस चन्द्रिका, र० वि०- प्र० पृ०- १३८

२. शुद्धपारदबलिप्रवालकं हेममाक्षिक भुङ्गरङ्गकम्।
मादितं सकलमेतदुत्तमं भावयेत् पृथक् पृथक् द्रवैस्ततः।।
चन्दनस्य कमलस्य मालतीकोकस्य वृषपल्लवस्य च।
धान्यवारणकणाशतावरी- शाल्मलीवटजटामृतस्य च।।
रक्तपित्त कुल कण्डनाभिधो जायते रस बरोऽस्रपित्तिनाम्।
प्राणद्ये मधुवृषद्रवेरयं सेवितस्तु वसुकृष्णनिर्मितः।।

नास्त्यनेन सममत्र भूतले भेषज किमपि रक्तपित्तिनाम्।।
रसराजसुन्दर, र० वि० - पृ० - १३३

३९- सर्पपाद्या गुटिका

सरसों, पृष्णिपर्णी, तगर, कमलकेशर, हरताल भस्म, बायबिडंग, लोथ, मुनक्का, फूल प्रियंगु, चन्दन, सुगन्धबाला, जटामांसी, इन्द्रायण की जड़, मैनसिल, श्री वासक, हल्दी, दारूहल्दी, कमल, तुलसी, ब्राह्मी, गोरोचन, रास्ना, लकुच, केसर, देवदास, थुनेर, कोयल, चमेली के पुष्प, प्रवाल भस्म, पीपल, कालीमिर्च, छोटी इलायची, सम्भालु और मुलेठी- इन सबों का चूर्ण समान मात्रा में पुष्य नक्षत्र में लेकर जल में पीस कर ५-५ माशे की गोलियाँ बनाकर छाया में सुखा लें।

प्रयोग- इस गोली के नस्य, पान, अलेपन और अंजन करने से तथा पूजन करने से सब प्रकार के विष नष्ट हो जाते हैं। इस गोली के पास होने से राजदरबार, युद्ध, व्यापार एवं वाद-विवाद प्रतियोगिता में सदा लाभ होता है। जिस घर में ये गोलियाँ रखी जाती हैं में सर्प बिच्छु नहीं आ पाते। अंग में लेप करने से, चोट आदि सर्पदंष्ट और जल का भय नहीं रहता।[1] (गदनिग्रह)

४०- लक्ष्मीविलासरसः

स्वर्ण, चाँदी, अभ्रक, ताम्र, बंग, तीक्ष्णालोह, कान्तलोह, मुण्डलोह, सीसक और मोती भस्म तथा मीठातेलिया का चूर्ण १-१ भाग। इन सब भस्मों के बराबर पारद भस्म लेकर मिला लें और मधु के साथ घोटें। दो तीन दिन धूप में रखें। जब सब द्रव्य प्रगाढ़ हो जावे तब गोला बना लें। अब इस गोले को एक सु.ढ़मूषा में रखकर बन्द कर दें और कुक्कुट पुट में पाक करें। स्वांग शीतल होने पर औषध द्रव्य को निकाल कर चीता के क्वाथ की भावना देकर सुखा लें।

इस रस के सेवन से क्षय, त्रिदोषज, पाण्डु, कामला, वातरोग, शोथ, प्रतिश्याय, शुक्रक्षय, अर्श, शूल, कुष्ठ, अग्निमांद्य, सन्निपात, श्वास कास का नाश होता है एवं जवानी और लक्ष्मी को बढ़ाता है। इस रस का वर्णन रस राज सुन्दर, बृहन्निघण्टुरत्नाकर, योग रत्नाकर और रस चन्द्रिका में आया है।[2]

---

१. सर्षपाः पृश्निपर्णी च तगरं पद्मकेसरम्। हरितालं विडङ्गानि रोधद्राक्षाप्रियङ्गवः।।
चन्दनं बालकं मांसी विशाला समनःशिला। श्रीवासको निशा दार्वीपद्मकं ध्याममेव च।।
सुरसप्रसवाः स्पृक्का रोचना गन्धनाकुली। अम्लकं कुङ्कुकं दारु स्थौणंयं गिरिकर्णिका।।
जात्याः पुष्पं प्रवालं च पिप्पली मरिचानि च। सुक्ष्मैला सिन्दुवारं च यष्टायाह्नं रोध्रमेव च।।
एतान्यङ्गनि षट्त्रिंशत्पुष्येण परिपोषिताम्। गुटिकां कोलमात्रां च छायाशुष्कां हि कारयेत्।।
नस्यपानाञ्जने चैषा सम्यग्लेपे च पूजिता। पुंसां सर्वविषार्तानां राजद्वारे रणे तथा।।
वणितां लाभकामानां विवादे च सदा हिता। सरीसृपा न तिष्ठिन्ति यत्र निष्ठिन्ति वेश्मनि।।
अनया संप्रलिप्रस्य चौरवह्निभयं कुतः। सर्पदष्टभयं चापि जल राशि भयं न चा।।
(गदनिग्रह), र० वि० - पृ० - १३६

२- द्रष्टव्य- रसराजसुन्दर, रसचन्द्रिका, बृहद्योगतरंगिणी, योगरत्नाकर, भैषज्यरत्नावली

४१- वङ्गेश्वररसः

पारद और गन्धक समान मात्रा में लेकर कज्जली बना लें। इस कज्जली में लौह, अभ्रक, स्वर्ण, बंग और स्वर्णमाक्षिक भस्म समान मात्रा में लेकर मिला लें और घृतकुमारी के रस की एक दिन भावना देकर २-२ रत्ती की गोलियाँ बना लें।

उपयोग- यह रस रक्तभेद में बहुत लाभ करता है। इसके अलावा उदक भेद, बहुमूत्र, मूत्रकृच्छ्र, प्रमेह, क्षय, कास (पाँचों प्रकार का) कुष्ठ (१८ प्रकार का), पाण्डु, हलीमक, शूल, श्वास, ज्वर, हिचकी, अग्निमाद्य तथा अरुचि को यह रस नष्ट करता है। उभय तथा कान्विर्धक होता है।[1]

४२- हंसपोटलीरसः

शुद्ध पारद ५ तोला (१ पल), शुद्ध गन्धक ५ तोला, मोती भस्म ५ तोला, तीक्ष्ण लौह भस्म ५ तोला, तुत्थ भस्म ५ तोला लेकर प्रथम पारद गन्धक की कज्जली बना लें पश्चात् इस कज्जली में शेष औषधियाँ मिलाकर तुलसी, कोयल, चित्रक, कलिहारी, भृंगराज (भंगरैया) के स्वरस की भावना दें। और एक गोला बना लें। पश्चात् शराब सम्पुट में रखकर मन्दाग्नि में संस्वेदन करें। सर्वांग शीतल होने पर निकाल लें। अब इस समस्त द्रव्य का चतुर्थांश अर्थात् ६ तोला शुद्ध बत्सनाभ (बच्छनाग) चूर्ण और २५ तोले कपर्दिका भस्म मिलाकर अदरक और जम्भीरी नीम्बू की क्रमशः भावना देकर सुखा लें।

सेवन विधि- काली मिरच और मधु के साथ एक माशा की मात्रा में सेवन करने से ग्रहणी, पाण्डु, गुल्म और अतिसार पर निश्चय विजय होती है अर्थात् लाभ होता है।

अनुपान- औषध सेवन करने के पश्चात्(२ माशा से लेकर ६ माशा तक भांग के चूर्ण में मधु मिलाकर सेवन करना चाहिये।[2]

---

१. सूतं गन्धं मृतं लौहं मृतमभ्रं समांशिकम्। हेम वङ्गञ्च मुक्ता च ताप्यमेवं समं समम्।।
सर्वेषां चूर्णितं कृत्वा कन्यारसविमर्दितम्। गुञ्जाद्वयप्रमाणेन वटिकां कुरु यत्नतः।।
बृहद्वङ्गेश्वरो ह्येष रक्तमूत्रे प्रशस्यते। श्वेतमूत्रं बृहन्मूत्रं कृच्छ्रमूत्रं तथैव च।।
सर्वप्रकारमेहांस्तु नाशयेदविकल्पतः। अग्निवृद्धिं वयोवृद्धिं कान्तिवृद्धिं करोति च।।
क्षयरोगं निहन्त्याशु कासं पञ्चविधं तथा। कुष्ठमष्टादशविधं पाण्डुरोगं हलीमकम्।।
शूलं श्वासं ज्वरं हिक्कां मन्दाग्नित्वमरोचकम्। क्रमेण शीलितो हन्ति वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा।।
भैषज्यरत्नावली, र० वि०- पृ०- १११

२- रस गन्धकमुक्तानां विषस्यैकं पलं भवेत्। तीक्ष्णतुत्थकयोश्चक्रं पलं तत्सुरसारसैः।।
विष्णुक्रान्तावह्निवह्निहलीभृङ्गैविमर्दयेत्। गोलं संस्वेदयेदस्य मन्दाग्नौ चरमाशंकम्।।
विषं दग्धकपर्दानां चूर्णं तुल्यं नियोजयेत्। आर्द्रजम्बीरनीरेण पिष्टं स्याद्वसपोहलिः।।
सोषणो वा समधुको माषोऽस्य ग्रहणीगदम्। अतिसारं पाण्डुरोगं गुल्मं कार्श्यं ध्रवं जयेत्।।
क्षौद्रेण विजयानिष्कमनुपानेन योजयेत्। [illegible] चेयं [illegible]पोटली।।
रस कामधेनु, ग्रहण्यधिकार, र० वि- पृ०- १०६

४३- अदाङ्गनिगने रसः

पारद ११ भाग, गन्धक २२ भाग इन दोनों की कज्जली बना लें। इस कज्जली में ताम्र, हीरा, मोती, हरताल, वैक्रान्त, सूर्यकान्तमणि, माणिक्य, स्वर्ण, रौप्य, स्वर्णमाक्षिक और अभ्रकभस्म १.१ भाग मिला लें तथा लालकपास के फूलों के रस की तीन भावना देकर सुखा लें और आतशी शीशी में भरकर बालुका यन्त्र द्वारा तीन दिन तक पाक करें। स्वांगशीतल होने पर औषध द्रव्य निकालें। अब इस में समस्त औषध द्रव्य का १/१६वां भाग मीठा तेलिया चूर्ण मिला लें तथा काली मिरच, कपूर, वंशलोचन, जावित्री, लौंग एवं कस्तूरी चूर्ण मिलाकर खूब घोट डालें और सुरक्षित रख दें।

सेवन-

इस रस को प्रातः शाम पान के बीड़े में १ माशा की मात्रा में डालकर सेवन करने से कामशक्ति प्रबल होती है और वीर्य क्षीण नहीं होता।

नपुंसकता का नाश होता है। २० प्रकार के प्रमेह, राजयक्ष्मा, आनाह, ग्रहणी, ग्रहबाधा, पाण्डु, अर्श, रक्तपित्त और उदर रोग निश्चय नष्ट होते हैं। इस के अतिरिक्त पाँचों ज्ञानेन्द्रियों की शक्ति बढ़ाते हुए कान्ति, ओज, बल, प्रसन्नता तथा जठराग्नि की वृद्धि होती है। यह रस समस्त रोगों को नष्ट करता है।[1]

१- मिहिरकुलिशमुक्तातालवैक्रान्तभास्वन्मणिकुजमणिभस्मान्येकभागानि.त्वा।
कनकरजतताप्यव्यामसत्त्वानि चत्वार्यखिलसमरसेन्द्रं गन्धकं सर्वं तुल्यम्।।
मृदुविदलितमे तच्छोण कार्पासपुष्पाम्बुभिरमलतरैस्त्रिर्भावयित्वा विशोष्य।
क्रमदहनविपक्वं बालुकाकम चकुम्भे त्रिदिनमथ कलांशेनाच्छाहालाहलेन।।
युतमथ मरि चेन्दुत्वचपयोजाति कोशामरकुसुममृगाण्डै भार्वयेज्जायतेऽयसै।
मदननिगडनामा माषमात्रो दिनादौ निशि च भुजगवल्लीपर्णखण्डने भुक्तः।।
तदनु सुरभि दुग्धं पेयमल्पं सिताढयं पुनरपि ससिताम्लं चारुताम्बूल-मध्यात।
इह समुदितमन्नं पथ्यमाह द्विजन्मा मुनिरखिलगदानामन्तकेख्यातवीर्ये।।
नं संसेव्य मर्त्यो रमयति रमणीवृन्दमानन्दतुन्दं चामन्दं तस्य शुक्रां क्वच न च भवति प्रत्यहं वर्द्धते च।
षण्ढः षाण्ढयं जहाति प्रबलतरमपि प्रौढमाप्नोति गाढं शेफः
पातित्ययुक्तं गतनवतिसमस्यापि मर्त्यस्य चारुण।।
किं बहुना कथितेन गृहे सौ यस्य नरस्य वसत्यसमस्य।
पञ्चशरस्य शरस्य शरण्यं संभवतीह सदा महिलाहृदयस्थः।।
मेहन्विंशतिमेष हन्ति सहसा यक्ष्माणमुग्रं जपे दानाहग्रहणीग्रहान्म्लपयति प्रौढ़ विधत्ते वलम्।
पाण्डुं खण्डयति प्रसह्य रचयत्यर्शोविनाशं भृशं पित्तारत्रं दलयत्यवश्यमुदरव्याधि विलुम्पत्यपि।।
ओजः कान्ति बलप्रमोदधिषणाहृद्दन्तनासा श्रुति प्रौढ़िं देह.ढ़त्वमग्निपटुतां पुंसः प्रकुर्यादयम्।।
रोजो नास्ति सयोन शान्तिमुपयात्येतेन भूमीतले भूमीपव[illegible]प्रमरपदेनाशितम्।।

बृहद्योगतरंगिणी, र० वि०- पृ०- ६६

४४- रत्नगर्भपोटलीरसः

पारद, हीरा, स्वर्ण, चाँदी, सीसा, लौह, ताम्र, मोती, स्वर्णमाक्षिक, प्रवाल, शंख और तुत्थभस्म समान मात्रा में लेकर चीता क्वाथ की सात दिन तक भावना देकर पीतवर्ण की बड़ी-बड़ी कौड़ियों में भरकर(मदार दूध से भावित) सुहागा से मुखबन्द करदें और शराबसम्पुट में बन्द करके गजपुर में फूँक दें। स्वांगशीतल होने पर समस्त औषध द्रव्य को निकालकर पीस लें और सम्हालु तथा अदरक रस की ७-७ भावना दें और सुखा कर सुरक्षित रख दें।

सेवन- १ रत्ती की मात्रा में पीपल, कालीमिरच, मधु और घृत के साथ सेवन करने से साध्य अथवा असाध्य सभी प्रकार का क्षय रोग निश्चय ही नष्ट होता है। ८ प्रकार के महारोग, कासश्वास, ज्वर और अतिसार रोग नष्ट होते हैं। यह रस योगवाही है। अतएव अनुपान भेद से समस्त रोगों में लाभप्रद है।[1]

४५- प्रवालपञ्चामृतरसः

मोती, शंख, शुक्ति और कपार्दिकाभस्म १-१ भाग, प्रवाल भस्म २ भाग इन सबों को मिलाकर मदार-दूध कर एक दिन तक भावना दें और गोला बनाकर सराव सम्पुट में बन्द करके गजपुर में आँच दें। स्वांग शीतल होने पर औषध द्रव्य निकालकर पीस लें और सुरक्षित रखें।

सेवन- ३ रत्ती की मात्रा में प्रातः सायं सेवन करें।

इस से अनाह, उदररोग, गुल्म, प्लीहा, कासश्वास, अग्निमांद्य, कफ और वात के रोग, अंजीर्ण, उद्गार (डकार), हृदय के रोग, ग्रहणी, अतिसार, प्रमेह, मूत्ररोग, मूत्र-च्छ्रं और अश्मरी इस प्रकार के रोग नष्ट होते हैं। यह रस समस्त रोगों को नष्ट करता हैं।[2] इस रस में तीन रत्नों का प्रयोग होता है।

---

१. रसं वज्रं हेम तारं नागं लौहञ्च ताम्रकम्। तुल्यांशं मरिचं योज्यं मुक्तामाक्षिकविद्रुमम्।।
शङ्ख़्च तुत्थं तुल्यांशं सप्ताहं चित्रकद्रवैः। मर्दयित्वा विचूर्ण्याथ तेन पूर्या वराटिका।।
टङ्गणं रविदुग्धेन पिष्ट्वा तन्मुखमन्धयेत्। मृद्राण्डे तं निरुद्ध्याथ सम्यग्गजपुटे पचेत्।।
अदाय चूर्णयेत्सर्वं निर्गुण्ड्याः सप्त भावनाः। आर्द्रकस्य रसैः सप्त चित्रकस्यैकविंशतिः।।
द्रवैर्भाव्यं ततः शोष्यं देयं गुञ्जकसम्मितम्। योजयेत्पिप्पली क्षौद्रैः सघृतैमरिचैस्तथा।।
यक्ष्मरोगं निहन्त्याशु साध्यासांध्यं न संशयः। महारोगाष्टके कासे ज्वरे श्वासेऽति सार के।।
पोट्टलीरत्नगर्भोऽयं योगवाही नियोजयेत्।।

भैषज्यरत्नावली १४ राजयक्ष्मा चि०- पृ०- १८२-१८७

२. प्रवालमुक्ताफलशङ्खशुक्तिकपर्दिकानां च समांशभागम्।
प्रवालमत्र द्विगुणं प्रयोज्यं सर्वैः समांशं रविदुग्धमेव।।
एकीकृतं तत्खलु भाण्डमध्ये क्षिप्त्वा मुखे बन्धनमात्र योज्यम्।
पुरं च दद्यादतिशीतलं च उद्धृत्य तद्भस्म क्षिपेत् करण्डे।।
नित्यं द्विवारं प्रतिपाकयुक्तं बलप्रमाणं हि नरेण सेव्यम्।

रस चन्द्रिका, योगरत्नाकर, बृहन्निघण्टुरत्नाकर, र० वि०- पृ०- १२४

४६. भानुचूड़ामणि रसः

रस सिन्दूर, स्वर्ण, प्रवाल, वंग, लोक, तामृ तथा स्वर्णमाक्षिक भस्म तेजपात, अजवायन, सोंठ, सेधानमक, कालीमिरच, कूठ, खैरसार, हल्दी, दारूहल्दी और रसौंत का चूर्ण समान मात्रा में लेकर ज़ल के साथ घोटकर २-२ रत्ती की गोलियाँ बना लें। इन गोलियों को सवेरे उठकर सेवन करने से सभी प्रकार के ज्वर नष्ट होते हैं।[1]

४७- बहुमूत्रान्तको रसः

बीजबन्द, मखाना, मुलेठी, वंशलोचन, गंधविलोजासत्व, सालममिश्री, शुक्तिभस्म, प्रवालभस्म, हरीतकी और बेहड़े की मज्जा, शिलाजीत, छोटी इलायची तथा बंगभस्म इन सबों को समान मात्रा में लेकर मधु के साथ घोटें और गोलियाँ बना लें। बहुमूत्र और प्रमेह के रोगियों के लिये यह रस सुखप्रद है।[2]

४८- इन्दुशेखरो रसः

शिलाजीत, अभ्रक, रससिन्दूर, प्रवाल, लौह, स्वर्णमाक्षिक और हरतालभस्म समान मात्रा में लेकर भृंगराज, अर्जुन, समालु, अडूसा, कमल और कूड़े की छाल के क्वाथ की भावना देकर मटर के बराबर गोलियों को बना लें।

रोगानुसार अनुपान के साथ सेवन करने से गर्भिणी ज्वर, श्वासकास, शिरः शूल, रक्तातिसार, ग्रहणी, वमन, मन्दाग्नि, आलस्य और दौर्बल्य निश्चय से नष्ट होते हैं। इस रस को सर्वप्रथम शङ्कर जी ने बनाया था।[3]

---

१. सुवर्णरस सिन्दूरं प्रवालं वंगमेव च। लोहं ताम्रं तेजपत्रं यमनिं विश्व भेषजम्।।
सैन्धवं मरिचं कुष्ठं खदिरं द्विहरिद्रकम्। रसाञ्जनं माक्षिकं च रसभागञ्च कारयेत्।।
वारिणा वटिका कार्या रक्तिद्वयप्रमाणतः। भक्षयेत्प्रातरुत्थाय सर्व ज्वरकुलान्त.तं।।
रसेन्द्रसारसंग्रह, र० वि०- पृ० - १३५

२. बीजबन्धेक्षुरक्लीतवांशी-सिहूलकसालिमम्। शुक्तिविद्रमयोर्भूती मज्जानावक्षपध्ययोः।।
शिलाजतु त्रुटिर्विगः सर्वं सञ्चूर्ण्य माक्षिकैः। वटीर्वधान सुखदा, बहूमूत्र प्रमेहिषाम्।।
(सिद्धभषैज्यमणिमार्तण्ड) र० वि०- पृ०- १३५

३. शिलाजत्वभ्रसिन्दूर-प्रवालायोरजांसि च । माक्षिकंञ्च तथा तालं समभागानि मर्दयेत्।।
भृंङ्गराजस्य पार्थस्य निर्गुण्डया वासकस्य च। स्थलपद्मास्य पद्मस्य कुटस्य च वारिणा।।
भावयित्वा वटीः कृत्वा कलायपरिमाणतः। यथादोषानुपानेन गर्भिणीषु प्रयोजयेत्।।
गर्भिणीनां ज्वरं घोरं श्वासं कासं शिरोरुजम्। रक्तातिसारं ग्रहणीं वान्तिं वह्नेश्च मन्दताम्।।
आलस्यमपि दौर्बल्यं हन्यादेष न संशयः। कलेरादौ ससर्जेमं भगवानिन्दुशेखरः।।
भैषज्यरत्नावली स्त्री रोगाधिकार पृ०- ६४-६८

४९- रसेन्द्रवटी-

पारद गन्धक समान मात्रा में लेकर कज्जली तैयार कर लें। इसमें शिलाजीत, प्रवाल भस्म और लौह भस्म ४-४ भाग तथा स्वर्णभस्म १ भाग मिलावें और नीमत्वक्, असना एवं चीते के क्वाथ की अलग-अलग भावना देकर ३-३ रत्ती की गोलियाँ बना लें।
उपयोग- मुखरोग, वातरोग, प्रमेह, ज्वर नष्ट होते हैं एवं बलवीर्य की वृद्धि होती है।
अनुपान- इस रस के सेवन करने के बाद लिहसोड़ा क्वाथ, फिला क्वाथ, अगर क्वाथ का पान करें।[1]

५०- मिहरोदयवटी

लौह, अभ्रक, स्वर्ण, प्रवाल और कान्तलौह भस्म १-१ भाग, रस सिन्दूर २ भाग इन सबों को मिलाकर एरण्डमूल और लटामांसी के क्वाथ की भावना देकर २-२ रत्ती की गोलियाँ बना लें।
सेवन- इन गोलियों की हरीतकी के चूर्ण के साथ सेवन करने से, आधा सीसी, अनन्तवात, सूर्या वर्तक, शंखक एवं साध्य असाध्य सभी प्रकार के शिरोरोग नष्ट होते हैं।[2] (आयुर्वेद प्रकाश)

५१- पित्तप्रभञ्जनो रसः

प्रवाल और स्वर्णमाक्षिक भस्म को समान मात्रा में लेकर अर्द्रक रस की तीन बार भावना देकर रख लें। इस को दूध मिश्री के साथ सेवन करने से पित्त रोग शान्त होते हैं। एवं मधु घृत और मिश्री के साथ सेवन करने से वात तथा पित्त रोग नष्ट होते हैं।[3]

१.रसेन्द्रगन्धाश्मजतुप्रवाललौहानि वैद्यः समभागिकानि।
रसेन्द्रपादप्रमितञ्च हेम विभाव्य निम्बाशनवह्नितोयैः।।
ततो वटी वल्लमिता विमर्द्य विधाय बुद्ध्या बहुवारवारा।
फलत्रिकक्वाथजलेन वापि प्रातः प्रयुञ्जयात् प्रकराम्बुना वा।।
रसेन्द्रवटयास्य[illegible]न् निहन्ति वातामयान् मेहगणाञ् ज्वरांश्च।
करोति वह्ने[illegible]श्च पुष्टिं विशेषेण रसायनीयम्।।
भैषज्यरत्नावली मुखरोग चि०- पृ०- ११५-११७

२. लौह[illegible] सुवर्णाञ्च विद्रुमं राजपट्टकम्। सर्वं समंप्रदातव्यं सिन्दूरश्च द्विभागिकम्।।
एर[illegible]जेनेव रसेन परिभावयेत्। क्वाथैस्तथा जटामांस्या वटी रक्तिद्वयात्मिका।।
पथ्या[illegible]ऽनुपानेन वटीयं मिहिरोदया। अर्धावभेदकं हन्ति पीता वात मनन्तकम्।।
सूर्यावर्त तथा शङ्खञ्चैकवञ्च द्विदोषजम्। त्रिदोषजं शिरोरोगं साध्यासाध्यं न संशय।।
र० चि० पृ०- १३४

३. प्रवालं माक्षिकं तुल्यं त्रिवारमार्द्रवारिण। मर्दितं दुग्धसितया सेव्यं पित्तनिवारणे।।
मध्वाज्येन सितायुक्तं सेवितं वातपित्तनुत्। पित्तप्रभञ्जनो योगः पित्तं नाशयति क्षणात्।।
(रसचन्द्रिका) र० वि० - पृ०-१३५

५२- हेमनाथरसः

प्रथम पारद गन्धक को समान मात्रा में लेकर कज्जली तैयार करें और इसमें स्वर्ण भस्म, स्वर्णमाक्षिक भस्म, अभ्रक भस्म, चाँदी भस्म, प्रवाल भस्म और वंगभस्म प्रत्येक आधा-आधा मात्रा में डालकर अफीम के पानी, केले के फूलों का रस तथा गूलर के रस की ७-७ भावना दें और ३-३ रत्ती की गोलियाँ बना लें।

प्रयोग-

२० प्रकार के प्रमेह, बहुमूत्र, सोमरोग, क्षय, श्वासकास और उरश्रतु रोग को नष्ट करता है। रोगानुसार अनुपान की ठीक व्यवस्था करने से पूर्ण लाभ होता है।[1]

५३- क्षयकेसरी रसः (बृहत्)

अभ्रकभस्म, पारदभस्म अथवा रससिन्दूर, लौहभस्म, ताम्रभस्म, नागभस्म, काँसे की भस्म, मण्डूर भस्म, विमल अर्थात् रौप्यमाक्षिकभस्म, वड्गभस्म, शुद्ध खर्पर, शुद्ध हरताल, शड्ख भस्म, वैक्रान्त भस्म, शुद्ध सुहागा, स्वर्ण भस्म, प्रवाल भस्म, मुक्ता भस्म, कौड़ी की भस्म, पुखराज मणि भस्म, कान्तपाषाण भस्म तथा शुद्ध गन्धक प्रत्येक १-१ तोले भर लेकर सबको खरल में डालकर अत्यन्त महीन पीस लेवें पश्चात् चित्रक की जड़ और आक(अनु) की जड़ के क्वाथ के साथ पृथक्-पृथक् भावित करके लघुपुट दे देवें। इस प्रकार तीन भावनायें देकर तीन पुट देने चाहिएँ। फिर इस रस को बिजौरे नीम्बू, त्रिफला, चित्रक की जड़, अम्लवेंत, भृड्गराज, कनेर और अरी के स्वरस अथवा क्वाथ के साथ पृथक्-पृथक् तीन बार खरल करके लघुपुट देकर पाक करें। सिद्ध रस को घोटकर शीशी में भर देवें।

प्रयोग-

यह बृहत् 'क्षयकेशरी रस' वात, पित्त और कफ के कारण उत्पन्न उत्क्लेश आदि रोग ज्वर, सन्निपात, सर्वाड्ग वात और एकाड्गवात को नष्ट करता है तथा एकादश प्रकार के क्षय, शोष, पाण्डु, कृमि तथा कृमि जन्य रोग, पंच प्रकार के कास, श्वास, प्रमेह, मेदोवृद्धिजन्य रोग, उदर रोग, अश्मरी, शर्करामेह, शूल, प्लीहा-वृद्धि, गुल्म, हलीमक और सर्व व्याधियों को नष्ट करता है। एवं बलवर्द्धक, वृष्य, धारणशक्ति और रसायन है।

---

१. सूतं गन्धं हेमताप्यं प्रत्येकं कोलसम्मितम्। अयश्चंद्रं प्रवालं च वङ्ग चार्धं विनिक्षिपेत्।। फणि फेनस्य तोयेन कदलीकुंसुमेन च। उदुम्बररसे नापि सप्तधा परिमर्दयेत्।। वल्लमात्रां वटीं खादेद्यथाव्याध्यनुपान्ता। प्रमेहान् विंशतिं हन्तिं बहुमूत्र सुदारूणम्।। सोमरोग क्षयं चैव श्वासं कास मुरः क्षतम्। हेमनाथरसो नाम्ना कृष्णात्रेयेण भाषितः। प्रयोजितो भवेन्नृणां विशेषफलदायकः।।

भैष[illegible] रस[illegible]न्द्रिका- बहुमूत्र चि०- पृ०- ८३-८७

प्रयोगमात्रा-

२ रत्ती से ३ रत्ती तक, अनुपान- चीनी, पिप्पली चूर्ण, शहद, और आदि का स्वरस आदि भिन्न- २ दोष और रोगों के अनुसार देना चाहिए।[1] इस रस में पाँच रत्नों (मोती, मूँगा, वैक्रान्त, पुखराज और शंख) का प्रयोग होता है। इस रस का प्रयोग जिन रोगों के लिए होता है वह रोग सम्भवतः किसी न किसी प्रकार से रत्नों के साथ सम्बन्ध रखे हैं अतः यहाँ रत्नों का वर्णन आया है।

५४- मुक्तापञ्चामृत रसः

मोती भस्म ८ भाग, मूँगा भस्म ४ भाग, हिरनबुरी वंग भस्म २ भाग, शङ्ख तथा सीप भस्म १-१ भाग लेकर सब एकत्र घोटकर २ प्रहर ईख के रस में खरल करके गोला बनावें और उसे सुखाकर शराब के सम्पुट में बन्द करके लघुपुट फूँकें। इसी प्रकार ईख के रस, गोदुग्ध, विदारीकन्द, घृतकुमारी, शतावर तुलसी या सम्भालू और हंसपदी (लाल लजालू) के रस में खरल करके ५-५ लघु पुट दें। इस प्रकार यह रस तैयार होता है।

प्रयोग- अनुपान ४ रत्ती यह रस पीपल के चूर्ण में मिलाकर बहुत दिनों की व्याई हुई गाय के दूध के साथ सेवन करने और अल्पाहार करने से इस प्रकार के रोग नाश होते हैं।

रोग शमन- जीर्ण ज्वर और क्षयादिक सर्वरोग यथायोग्य अनुपान के साथ सेवन करने से नष्ट होते हैं। यहाँ पर तीन रत्नों का वर्णन आया है।[2]

---

१. मृतमभ्रं मृतं सूतं मृतं लौहञ्च ताम्रकम्। मृतं नाञ्च कांस्यञ्च मण्डूरं विमलं तथा।।
वङ्गं खर्पटकं तालं शङ्खटङ्खमाक्षिकम्। वैक्रान्तं कान्तलोञ्च स्वर्णं विद्रुममौक्तिकम्।।
वराटं मणिरागञ्च राजपट्टञ्च गन्थकम्। सर्वमेकमं सञ्चूर्ण्य खल्लमध्ये विनिक्षिपेत्।।
मर्दयेत्त्वभिानुभ्यां प्रपुटेत्त्रिदिनं लघु। भावयेत्पुटयेदेभिर्वारां स्त्रींश्च पृथक्-पृथक्।।
मातुलुङ्गवस्यह्निस्बम्ल्वेतसमार्कवहयमाराद्र्धकरसैः पाचितो लघुवह्निना।।
वातपित्त्कफोत्कलेशाम् ज्वरान् सम्मर्दितानपि। सन्निपातं निहन्त्याशु सर्वाङ्गैकाङ्गमारुतान्।।
सेवितश्च सितायुक्तो मागधीरजसा युतः। मथुकार्द्रक संयुक्त-स्तह्व्याधि-हरणौषधैः।।
सेवितो हन्ति रोगान् हि व्याधिवारणकेशरी। क्षयमेकादशविधं शोषं पाण्डुं कृमिं जपेत्।।
कासं पञ्चविधं श्वासं मेहमेदोमहोदरम्। अश्मरीं शर्करां शूलं प्लीहगुल्मं हलीमकम्।।
सर्वव्याधिहरो बल्यो वृष्यो मेध्यो रसायनः।। भैषज्यरत्नावली १५,राजयक्ष्म चि०प्र०- ६१-१००

२. मुक्ताप्रवालखुरवङ्गककम्बुशुक्तिभूतिं बसूदधिहगिन्दुसुधांशुभागाम्।
इक्षो रसेन सुरभेः पयसा विहारीकन्यावरीसुरसहंसपदीरसैश्च।।
संमर्द्य यामयुगलं च वनोपलाभिर्दद्ययात्पुटानि मृदुलानि च पञ्च पञ्च।
पञ्चामृतं रसविभुं भिषजा प्रयुज्यगुञ्जा चतुष्टयमितं चपलारजश्च।।
पात्रे निधाय चिरसूतपयस्विनीनांदुग्धेन च प्रपिबतः खलु चोव्य भोक्तुः।
जीर्णज्वरः क्षयमिदाथ सर्वरोगाः स्नीयानुपानकलिताश्च शमं प्रयान्ति।।
भैषज्यरत्नावली- १४ राजयक्ष्म चि०- प्र०-२१६-२२१

५५- मृगाङ्करसः (महा)

निरुत्थ स्वर्णभस्म १ भाग, पारदभस्म १ भाग, मुक्ता भस्म ३ भाग, गन्धक ४ भाग, स्वर्ण माक्षिक भस्म ५ भाग, चाँदी भस्म ४ भाग, प्रवाल भस्म ७ भाग, सुहागा भस्म २ भाग- इन सब को मिला कर बिजौरे नींबू के रस की तीन दिन तक भावना देकर गोला बना लें। इस गोले को कड़ी धूप में सुखा कर कपड़ा लपेटें और एक अंगुल मोटा मिट्टी का लेप करके सुखा लें तथा नमक से भरी हुई हांडी के मध्य में रखें और हांडी का मुख बन्द करके ४ प्रहर की आँच दें। स्वांग शीतल होने पर औषध द्रव्य निकाल कर ६४ वाँ भाग हीरा भस्म- अथवा यदि हीरा भस्म न हो तो १६ वाँ भाग वैक्रान्त भस्म डालकर खरल करें और सुरक्षित रख दें।

प्रयोग- क्षय रोग, यक्ष्म, गुल्म, मन्दाग्नि, मूर्च्छा आदि रोगों के लिए गुण कारक होता है।[1]

५७- रत्नेश्वर रसः

हीरकभस्म, वैक्रान्त भस्म, अभ्रक भस्म, रससिन्दूर, स्वर्णमाक्षिक भस्म, स्वर्ण भस्म, मुक्ताभस्म तथा रजत भस्म इन्हें समान भाग में लेकर ईख के स्वरस, शतावर के स्वरस और विदारीकन्द के स्वरस में क्रमशः पृथक्-पृथक् तीन-तीन बार भावित कर खरल करके एक-एक रत्ती प्रमाण की वटिकाएँ बना के सुखाकर शीशी में भर देवें।

सेवन- इस **'रत्नेश्वर रस'** की एक वटी प्रातः, एक मध्यान्ह, एक सन्ध्या तथा एक रात को सोते समय त्रिफला जल के अनुपान के साथ सेवन करनी चाहिए।

उपचार- यह रस मस्तिष्ट तथा स्नायु रोगों को तथा विशेषकर अंशुघात रोग को अवश्य ही नष्ट कर देता है। इस रस में हीरक, वैक्रान्तमणि और मोती का प्रयोग होता है। जो कि उपर्युक्त वर्णित रोगों पर कार्य करता है।[2]

---

१. निरुत्थभस्म सौवर्णं द्विगुणं भस्मसूतकम्। द्विगुणं भस्म मुक्तोत्थं शुकपुच्छं चर्तुगुणम्।।
मृततार्प्यं च पञ्चांश तारभस्म चतुर्गुणम्। सम्तभागं प्रवालं च रस तुल्यं च टङ्कणम्।।
सर्वमेकत्र सम्मर्द्य त्रिदिनं लुङ्गवारिणा। ततश्च गोलकं कृत्वा शोषयित्वा खरातपे।।
लवणेः पात्रमापूर्य तन्मध्ये गोलकं क्षिपेत्। तन्मुखं तु मृदा रुध्वा पाचेद्यामचतुष्टयम।।
आकृष्य चूर्णयेत् शुद्धं चतुःषष्टिविभागतः। वज्रं वां तदभावे तु वैक्रान्तं षोडशांशिकम्।।
महामृगाङ्क खंलु एष सिद्धः श्री नन्दिनाथप्रकटीकृतोऽयम्।
वल्लास्य सेव्यो मरिचाज्ययुक्तः सेव्योऽधवा पिप्पलिकासमेतः।।
यक्ष्माणं बहुरूपिणं ज्वरगंद गुल्मं तथा विद्रूधिम्। मन्दाग्निं स्वरभेकासमरुचिं वान्तिं च मूर्च्छां भ्रमिम्।।
अष्टावेव महागदान्ग्रहगदान् पाण्ड्वामयं कामलान्, पित्तोत्थांश्च समग्रकान् बहुविधानन्यांस्तथा नाशयेत्।।
(रसराजसुन्दर, रसायनसारसंग्रह, रसचन्द्रिका, भैषज्यरत्नावली) र०वि०- पृ०-६०

२. वज्रं वैक्रान्तमभ्रं च रससिन्दूमाक्षिके। सुवर्णं मौक्तिकं तारं सममिद्राभवाम्भसा।।
शतावरीविदार्योश्य स्वरसाभ्यां पृथक्-पृथक्। विभाण्य वटिकाः कार्या भिषग्भां रक्तिकोन्मिताः।।
त्रिफलाऽम्ब्वनुपानेन प्रयोक्तव्याः प्रयत्नतः। मस्तिष्कस्नाधुसंभूतान् गदान् रत्नेश्वरी रसः।।
निहन्यादंशुघातं च विशेषान्नात्र संशयः।। भैषज्यरत्नावली- १०२अंशुघात चि०- प्र० २५-२७

५६- शुक्तिका चिकित्सा

मूँगा, मोती, वैदूर्य मणि, शङ्खमणि, फिटकरी अथवा बिल्लौर मणि, लाल चन्दन, स्वर्ण और चाँदी के वर्क या भस्म को मधु के साथ घिस कर अञ्जन करने से शुक्ति रोग नष्ट होता है।[1]

५७- सर्वाङ्गसुन्दर रसः

पारद ६ भाग, गन्धक ५ भाग दोनों को मिलाकर कज्जली तैयार कर लें और इस में स्वर्ण भस्म १ भाग, अभ्रक भस्म ३ भाग, सुहागा भस्म २ भाग, स्वर्ण माक्षिक भस्म ३ भाग, ताम्र भस्म ४ भाग, मीठा तेलिया चूर्ण, मोती और प्रवाल भस्म १-१ भाग मिलाकर जम्भीरी नीम्बू के रस और त्रिफला क्वाथ की १-१ भावना देकर गोला बनावें और शराब सम्पुट में बन्द करके पुटपाक करें। स्वांगशीतल होने पर औषध द्रव्य को निकाल लें और पीसकर सुरक्षित रख दें।

सेवन-

मिश्री और घृत के साथ इस रस के सेवन करने से जीर्ण ज्वर, अरुचि, बलक्षय, प्रमेह, हृदयरोग, मानसिक भय, भ्रम, गुदारोग और उदर रोग नष्ट होते हैं।[2]

५८- हेमगर्भरस

शुद्ध पारद ४ भाग, स्वर्ण भस्म २ भाग, ताम्र, मोती और प्रवाल भस्म १-१ भाग, गन्धक सबको बराबर ले लें और खरल में घोट कर गोला बना लें। इस के बाद भूधर यंत्र में मन्द-मन्द अग्नि पर पाक करें स्वांग शीतल होने पर औषध द्रव्य निकाल कर पुनः समस्त द्रव्य के बराबर गन्धक मिलाकर भूधर यन्त्र में पाक करें। इसी प्रकार ६ बार गन्धक मिलाकर गन्धक का जारण करें।

सेवन- इस रस के सेवन करने से श्वास, कास, शूल तथा रोगानुसार अनुपान के साथ सेवन करने से समस्त रोग नष्ट होते हैं।[3]

---

१. प्रवालमुक्तावैदुर्य शङ्गस्फटिकचन्दनम्। सुवर्णरजतक्षौद्रमञ्जनं शुक्तिकापहम्।।
भैषज्यरत्नावली ६४,नेत्ररो चि० प्र० - १४०

२. हेमाभ्रगन्धरसटङ्कणताप्यताम्रं चन्द्राग्निबाणरस युग्मगुणाब्धिमानम्।
चूर्णीकृतं सविषमौक्तिकविद्रुमांशं जम्बीरनीरफलसत्त्वपुटेन पक्वम्।।
सिद्धो भवेद्रससिताहविषावलीढः सर्वाङ्गसुन्दर इति प्रथितो गदारिः।।
जीर्णज्वरारुचिबलक्षयसर्वमेह- हृद्रुग्भयभ्रमन्गुदोदरदोगहन्तौ।।
रसकामधेनु, र० वि० पृ० - १४१

३. रसस्य भागाश्चत्वारस्तदर्धं कनकस्य च। तदर्धं ताम्रकं चैव मौक्तिकं विद्रुमं समम्।।
तत्समानेन बलिना सर्वं खल्वे विमर्दयेत्। कृत्वा तु गोलकं पश्चात् पचेद् भूधरयन्त्रके।।
हेमगर्भरसो नाम त्रिषु लोकेषु विश्रुतः। कास श्वासेषु सर्वेषु शूलेषु च हितस्तथा।।
तत्तद्रोगानुपानेन सर्वान् रोगाञ्जयते परम्।। बृहन्निघण्टुरत्नाकर, र०वि- पृ०-१४२

५६- अपूर्वमालिनीवसन्तरसः

वैक्रान्त, अभ्रक, ताम्र, स्वर्णमाक्षिक, चाँदी, वङ्ग, मूँगा, पारा, लौह इन सबों की भस्म, सुहागा, शंखभस्म, प्रत्येक समभाग में एकत्र कर खस, शतावर तथा हल्दी के क्वाथ या स्वरस से ७-७ बार भावना देवें फिर कस्तूरी व कपूर १-१ भाग मिलाकर पीस लें। इसे ३ माशा या एक रत्ती लेकर मुध व पिप्पली चूर्ण के साथ देने से धातु ज्वर, गुडुचीसत्त्व व मिश्री मिलाकर देने से सर्व प्रमेह और बिजौरा नीम्बू की जड़ के रस से देने से मूत्रकृच्छ व अश्मरी रोग दूर होता है। यह अपूर्वमालिनीवसन्तरस है।[1]

६०- प्रमेहचिन्तामणिरसः

रससिन्दूर, अभ्रकभस्म, वङ्गभस्म, स्वर्णभस्म, लौहभस्म, मुक्ताभस्म, प्रवालभस्म और स्वर्णमाक्षिक भंस्म, इन सबों को समभाग लेकर घीक्वार के रस से खूब खरल करके २-२ रत्ती प्रमाण की गोलियाँ बनाकर रख लेवें।

प्रयोग- इस के सेवन से २० प्रकार के प्रमेह, बहूमूत्र, सोमरोग, अश्मरी, मूत्र.च्छ्र और मूत्र रोग दूर हो जाता है। यह वृष्य, बलकारक हृदय के लिए लाभ कर अत्यन्त शुक्र वर्द्धक है।[2]

६१- त्रैलोक्यचिन्तामणिरसः

स्वर्ण भस्म ३ भाग अथवा ३ भाग, चाँदी और अभ्रक भस्म २-२ भाग, लौह भस्म ५ भाग, प्रवाल और मोती भस्म ३-३ भाग, पारदभस्म ७ भाग- इन सबो को मिला कर घृतकुमारी के रस की भावना देकर गोलियाँ बना लें और छाया में सुखाकर रख दें।

सेवन- इस रस को बकरी के दूध के साथ सेवन करने से क्षय, कास, गुल्म, प्रमेह, जीर्ण, ज्वर, उन्माद और जलोदर, अण्डकोषवृद्धि आदि रोग नष्ट होते हैं।[3]

---

१. वैक्रान्तमभ्ररंवितापयरौप्यं वंगप्रवालं रसभस्मलौहम्।
सुटंकणं कंबुकभस्मसर्वं समांशकं सेव्यवरीहरिद्रः।।
द्रवैर्विभाव्यंमुनिसंख्यमचमृगां कजाशीतकरेणपश्चात्।
वल्लप्रमाणोमधुपिप्पलीभिर्जीर्णज्वरेधातु गते नियोज्यः।।
गुडूचिकासत्त्वसितायुतश्च सर्वप्रमेहेषु नियोजनीयः।
कृच्छ्रशमरीं निहन्त्याशु मातु लुङ्गकाङ्घ्रिजैर्द्रवैः।
रसो वसन्तनामऽयमपूर्वो मालिनीपरः।। भैषज्यरत्नावली - ज्वर चि०- पृ०- १२०८-१२१०

२. मृतसूताभ्रवंगं च स्वर्णं लौहं प्रकल्पयेत्। मौक्तिकं च प्रवालं च माक्षिकं सममाहरेत्।।
कन्यानीरेण संमर्द्य द्विगुञ्जाफलमानतः। छायाशुष्का वठी कापी भक्षणीया प्रयत्नतः।।
प्रेमहान् विंशतिं हन्ति बहुमूत्रं च समिकम्। अश्मरीं मूत्रकृच्छ्रं च मूत्राघातं सुदारुणम्।।
वृष्यो बलकरो हृद्यः शुक्र वृद्धिकरः परः।। भैषज्यरत्नावली-प्रमेह चि०- पृ०- १८७-१६०

३. भागत्रयं (द्वयम्) स्वर्णभस्म, द्विभागं रौप्यमभ्रकम्। लौहात् पञ्च प्रवालञ्च मौक्तिकं त्रयसम्मितम्।।
भस्मसूतं सप्तकं च सर्वं मर्द्यं तु कन्यया। ध्ययाशुष्का वटी कार्या धागीदुग्धानुपानतः।।
क्षयं हन्ति तथा कासं गुल्मं चापि प्रमेहनुत्। जीर्णज्वरहरश्चायमुन्मादस्य निकृन्तनः।।
रसायनसारसंग्रह, रसचन्द्रिका भैषज्यरत्नावली-प्रमेह चि०- पृ०- १८७-१६०

६२- कामदुधारसः

मोती भस्म, प्रवाल भस्म, मोतीसीप भस्म, कपर्दिका (कौड़ी) भस्म शंख भस्म, गेरुभस्म, गुडूचिसत्त्व, इन समस्त औषधियों को समान मात्रा में लेकर खरल कर लें।
सेवन- ज़ीरे का चूर्ण एवं मिश्री के साथ २ रत्ती की मात्रा में सेवन करने पर- जीर्णज्वर, भ्रम, उन्माद, पित्तरोग, अम्लपित्त तथा सोमरोग में इस कामदुधारस का सेवन करें।[1]

६३- वातचिन्तामणिरसः (बृहद्)

स्वर्णभस्म ३ भाग, चाँदी और अभ्रक भस्म २-२ भाग, लौह भस्म ५ भाग, प्रवाल तथा मोती भस्म ३-३ भाग, पारद भस्म ७ भाग, इन सबों को मिलाकर घृतकुमारी रस की भावना देकर ३-३ रत्ती की गोलियाँ बना लें।

सेवन-

रोगानुसार अनुपान की व्यवस्था ठीक-ठीक करके इस रस के सेवन करने से वात और पित्तरोग निश्चय ही नष्ट होते हैं। वृद्ध भी जवानों से होड़ लगाने लगते हैं। पराक्रमी हो जाते हैं। इस रस के सेवन से प्रत्यक्ष फल की इष्ट सिद्धि होती है।[2]

६४- रत्नगर्भपोट्टलीरस-

शुद्ध पारद अथवा रस सिन्दूर, हीरक, स्वर्ण, रजत, लौह, ताम्र इनकी भस्में, मरिच चूर्ण, मुक्ता भस्म, स्वर्ण माक्षिक भस्म, प्रवाल भस्म, शंख भस्म, शुद्ध नील तुत्थक प्रत्येक १-१ तोला लेकर एक सप्ताह तक चित्रक की ज़ड के स्वरस अथवा क्वाथ के साथ खरल करके शुष्क चूर्ण बनाकर शुद्ध कौड़ियों में भर देवें और आक के दुग्ध के साथ पीसे हुए सुहागे की पिष्टी से कौड़ियों के मुख को बन्द करके सुखा कर मिट्टी के छोटे से भाण्डे में भर कर उस का मुख सराव से ढककर कपड़मिट्टी के सन्धि बन्धन करके सुखा लेवें फिर गजपुर के अन्दर भाण्ड को उपलों के बीचों बीच रख के वह्नि प्रज्जवलित कर देवें। पश्चात् स्वाड्ग शीतल भाण्ड की सन्धि खोलकर उस में से कौड़ियों सहित सिद्ध रस को निकाल कर खरल में डालकर महीन पीस लेवें।

---

१. मौक्तिकस्य प्रवालस्य मुक्तशुक्तिभवस्य च। वराटिकायाः शङ्खस्य भस्मानि गेरिकं तथा।।
गुडूचिकोद्रवं सत्त्वं समभागानि कारयेत्। अजाजिकासिताभ्याञ्च गृह्णियाद्रात्तिकाद्वयम्।।
जीर्णज्वर भ्रमोन्मादपित्तरोगेषु शस्यते। अम्लपित्ते सोमरोगे योज्यः कामदुधारस।।
(रसयोगसागरः) र०वि० - प०-१३६

२. भागत्रयं स्वर्णभस्म द्विभागं रौप्यमभ्रकम्। लौहात् पञ्च प्रवालञ्च मौक्तिकं त्रयसम्मितम्।।
भस्मसूत सप्तकञ्च कन्यारसविमर्दितम्। वल्लमात्रा वटी कार्याभिषग्भिः परियत्नतः।।
यथाव्याध्यनुपानेन नाशयेद्रोगसंकुलम्। वातरोगं पित्त्कृतं निहन्ति नात्र चिन्तनम्।।
वृद्धोऽपि तरुणस्पर्द्धी कन्दर्पसमविक्रमः। दृष्टः सिद्धफलश्चायं वातचिन्तामणिस्त्विह।।
भैषज्यरत्नावली

फिर निर्गुण्डी के पत्तों के स्वरस अथवा जड़ के क्वाथ तथा अदी के स्वरस की ७-८ भावनाएँ देवें। प्रतिदिन सन्ध्या के समय तत्तद्रस तथा क्वाथ से चूर्ण को अच्छी प्रकार आपलुत करके रख देवें और दूसरे दिन फिर घोटें। इस प्रकार से प्रत्येक भावना देनी चाहिए फिर इस को सुखाकर शीशी में रख देवें।

सेवन विधि-

इस रस की १ रत्ती भर १ रत्ती पिप्पली चूर्ण और १/२ रत्ती शहद अथवा १/२ तोला घृत और १/२ रत्ती काली मिर्च के चूर्ण के साथ सेवन करना चाहिए।

प्रयोग- यह रस साध्य तथा असाध्य दोनों प्रकार के राज्यक्षमा को नष्ट कर देता है। इस रस को अनुपान भेद से आठ प्रकार के महारोग जैसे- वातव्याधि, अश्मरी, कुष्ट, प्रमेह, उदर रोग, भगन्दर, अर्श और सङ्ग्रहणी तथा कास ज्वर, श्वास और अतिसार में प्रयुक्त करना चाहिए। इस रत्नगर्भपोट्टली रस में हीरक, मोती, प्रवाल और शङ्ख चार रत्नों का वर्णन आया है।[1] इस रस का वर्णन राजसुन्दर आदि ग्रन्थों में भी आया है।

मणिमुक्ता मारण विधि

शुद्ध मोतियों को खरल में पीस कर लघु पुट में फूँक दें तो भस्म हो जाती है मुक्ता पीसने के लिये गोदुग्ध, जयन्तीस्वरस, अर्क गुलाब या काञ्जी इनमें से कोई भी ले सकते हैं।[2]

प्रवाल मारण- मूँगे को औरत के दूध की भावना देकर हांडी के मध्य में छाछ सहित रख उसका मुख रोध कर चूल्हे पर दो पहर तक पकावें तो भस्म हो जाता है।[3]

---

१. रसं वज्रं हेमं तारं नागं लौहञ्च ताम्रकम्। तुल्यांशं मरिचं योज्यं मुक्तामाक्षिकविद्रुमम्।।
शङ्ञ्च तुत्थं तुल्यांशं सप्ताहं चित्रकद्रवैः। मर्दयित्वा विचूर्ण्याथ तेन पूर्या वराटिका।।
टङ्गणं रविदुग्धेन पिष्ट्वा तन्मुखमन्धयेत्। मृद्भाण्डे तं निरुद्धयाथ सम्यग्गजपुटे पचेत्।।
अदाय चूर्णयेत्सर्वं निर्गुण्डयाः सप्त भावनाः। आर्द्रकस्य रसैः सप्त चित्रकस्यैकविंशतिः।।
द्रवैर्भाव्यं ततः शोष्यं देयं गुञ्जकसम्मितम्। योजयेत्पिप्पली क्षौद्रैः सघृतैमरिचैस्तथा।।
यक्ष्मरोगं निहन्त्याशु साध्यासाध्यं न संशयः। महारोगाष्टके कासे ज्वरे श्वासेऽति सार के।।
पोट्टलीरत्नगर्भोऽयं योगवाही नियोजयेत्।।

भैषज्यरत्नावली १४ राजयक्ष्मा चि०-पृ०- १८२-१८७

२. मुक्तफलानि शुद्धानि खल्ले पिष्ट्वा पुटेल्लघु।
एवं भस्मत्वमाप्नोति मौक्तिकं काञ्जियोगतः।।

भैषज्यरत्नावली - २, शोधमारण, पृ० - १५६

३. स्त्रीदुग्धेन प्रवालञ्च भावयित्वा तु हण्डिका। मध्येऽपि तक्रसहितं स्थापयेत् तां निरोधयेत्।
चूल्ल्यामग्निप्रतापेन म्रियते प्रहरद्वये।।

भैषज्यरत्नावली २, शोधमारण, पृ०- १६०-१६१

षष्ठ अध्याय

रत्नों का रासायनिक विश्लेषण

१. हीरा-

हीरा नील, श्वेत, रक्त, पीत, हरित, नील रंगों में पाया जाता है। इसकी कठोरता १०.०० है। आपेक्षिक घनत्व ३.५२ तथा अपर्वनांक २.४१ - २.४२ है। हीरे का रायानिक सूत का (C) है।

२.मोती-

मुक्ता श्वेत या मलाई के समान (Creamy) राजवत् श्वेत वर्ण (Silvery White), पारभासक (Semi Transparent white), श्वेतवर्ण (Silvery White), आबरहित (Dullness), कांस्यवर्ण (Bronze), शीशक वर्ण (Lead grey), पीताभायुक्त (Pink) किंचित-कृष्णाभायुक्त (Blackish) होती है। इसकी कठोरता ३.५ तथा आपेक्षिक गुरुत्व २.७१ है। इसका रायायनिक सूत्र "$Caco^3$" है।

३. प्रवाल-

प्रवाल में रासायनिक उपादान है। सुधा मृत्तिका (Corbonate of lime) ८७ प्रतिशत, मैगनेसियम कार्बोनेट तीन प्रतिशत, सिक्ता दो प्रतिशत तथा शेष tSo पदार्थ और जल होता है।

४. माणिक्य -

माणिक्य लाल रंग के होते हैं। इसकी कठोरता ६.०, आपेक्षिक गुरुत्व ४.०, आवर्तनांक १.७६ तथा रासायनिक सूत्र Al^2O^3 है।

५. नीलम-

नीलम कुण्डम कक्षा का माणिक्य है जो रसायनिक तत्व माणिक्य में पाए जाते हैं वहीं नीलम में भी पाए जाते हैं। इसका रसायनिक सूत्र Al^2O^3 है।

६. पन्ना-

पन्ना हरे रंग का होता है जिसका कारण सेस्क्यू आक्साइड (Sesque - Oxide) नामक द्रव्य है। इसकी कठोरता ७.५ है। आपेक्षिक गुरुत्व २.६-२.९ है तथा आवर्तनांक१.५६ से १.५९ तक है। इसमें सिकता(Silica) 68.50%, एलुमिन (Alumina) 14.75%, ग्लुसिना(Glucina) - 12.50%, क्रोमियम आक्सायड (Cronium Oxide) 0.30%, आयरन आक्सायड 1.00%, सुधा (Lime) 0.24% है। इसका रासायनिक सूत्र $Be^3 Al^2 Si^6 O1^8$ है।

७. वैदूर्य- इसकी कठोरता ७.५, आपेक्षिक गुरुत्व ३.७१, आवर्तनांक १.७६ तथा रासायनिक सूत्र Beo+ Al2 O3 अथवा ठम $Al^2 O^3$ है। अर्थात् वैदूर्य मुख्यतः एल्यूमिनियम और बेरेलीयम तत्त्वों का यौगिक है।

८. फिरोज़ा- फिरोजा हाइड्रेटेड स्फुरत् (फास्फेट) आफ अल्म्यूनियम साथ ही ताम्र

और लौह का यौगिक उपरत्न है तथा लौहांग (Fe^2O^3) एक से चार प्रतिशत होता है। फिरोज़ा में जो नीलाभा होती है उसका कारण ताम्र है और हरित वर्णाभा है उसका कारण लौहांश है। ताम्र और लोहे की कमी वेश मात्रा के अनुसार रंग-वर्ण में गाढ़ता-प्रगाढ़ता होती है। इसकी कठोरता ६ है। आपेक्षिक गुरुत्व २.६ से २०८ तक का है। आवर्तनांक २.६०- २०८६ तक है। इसका रासायनिक सूत्र है- ($Cu Al^6 COH)^8$, (Po^4) +$4H^2O$

६.राजावर्त-

इसका रंग नीला है, कठोरता ५.५०, आपेक्षिक गुरुत्व २.८ और आवर्तनांक १.५ है। राजावर्त का रासायनिक सूत्र $Na^5 Al^3 S^2 (SiO^4)^3$ है।

१०.वैक्रान्त- इसकी कठोरता ७ है, आपेक्षिक गुरुत्व ३.०५, आवर्तनांक १.६३ तथा रासायनिक सूत्र है- $AL^3B^2Si^{44}O^{21}$

११. पुलक- पुलक की कठोरता ६.५, आपेक्षिक गुरुत्व ३.५ से ४.५ तथा आवर्तनांक १.७० है। इसका रासायनिक सूत्र ($Fe^3HL^2(Si O^4)^3$ है।

१२.अकीक- यह धारियों में रंग श्वेत तथा रक्त है। इसकी कठोरता ६.५, आपेक्षिक घनत्व २.५० तथा रायायनिक सूत्र SiO^2 है।

१३. दुग्धपाषाण- यह रत्न रंगहीन दुग्ध श्वेत रंगों में पाया जाता है। इसकी कठोरता ५.५०, आपेक्षिक घनत्व २.००, आवर्तनांक १.४४ तथा रासायनिक सूत्र SiO^2H^2O है।

१४. अम्बर- इसकी कठोरता २.५, आपेक्षिक गुरुत्व १.०८, आवर्तनांक १.५४ है।

१५. गोमेद- गोमेद की कठोरता ७.५, आपेक्षिक गुरुत्व ४.०-४.५ तथा रासायनिक संगठन है ZrO^2SiO^2 है।

१६. पुखराज- यह रत्न रंगहीन, पीत, नीलाभ, हरित वर्ण का होता है। इसकी कठोरता ८.०, आपेक्षिक घनत्व- ३.५६-३.६०, आवर्तनांक १.६२ है तथा रासायनिक सूत्र ($AL^2SiO^4F^2$) है।

१७. बैरूँज- इसका रंग नीला होता है, कठोरता ७.२५-७.५०, आपेक्षिक घनत्व २.६७, आवर्तनांक १.५७ तथा रासायनिक सूत्र ($AL^2Bi^8Si^6O^{18}$) है। आधुनिक भूगर्भ शास्त्र की दृष्टि से रत्नों की भस्मों द्वारा जिन-जिन रोगों के उपचार होते हैं वे इस प्रकार हैं-

(i) हीरे की भस्म से कैंसर (Cancer) तथा हृदय के रोगों का उपचार होता है।

(ii) माणिक्य की भस्म शरीर में खून के करोमियम तत्त्वों की पूर्ति करती है जिसकी कमी से हमारे शरीहर में गलुकोस टालरेस असंतुलित हो जाता है।

(iii) मुक्ता की भस्म उदर विकारों, श्वास-प्रश्वास की कमी तथा खून में Calcium के तत्त्वों की कमी को पूरा करती है।

(iv) नीलम की भस्म खून की कमी को पूरा करती है।[1]

---

१. Gem & Gen Industry - Page- 13-25, "Gemology book"

६.१ आधुनिक शोध के अनुसार रोग निदान हेतु रत्न धारण

आधुनिक शोध के अनुसार किस रोग पर कौन सा रत्न कितनी मात्रा में तथा किस अंगुली में धारण करना चाहिए, इस प्रकार है –

रोग	रत्न	मात्रा	धार। अंगुली
१. गठिया(Gout or Rheumatism)	लाल मूंगा(Red Coral)	७	अनामिका
	पीत नीलम	५	मध्यमा
२. हृदय रोग(Heart Diseases)	पन्ना (Emerald)	६	मध्यमा
	पीत नीलम(Yellow Sapphire)	५	तर्जनी
३. हेपाटाइटस(Hepatitis)	पन्ना (Emerald)	६	मध्यमा
	पीत नीलम(Yellow Sapphire)	५	तर्जनी
४. इमपोटेनस(Impotence)	लाल मूंगा(Red Coral)	६	अनामिका
	सफेद मूंगा(White Coral)	६	कनिष्ठिक
	पीत नीलम(Yellow Sapphire)	५	तर्जनी
५. नींद न आना(Insomina)	पन्ना(Emerald)	६	मध्यमा
	पीत नीलम(Yellow Sapphire)	५	तर्जनी
६. लेकमिना(Lekemina)	गोमेद(Gomed)	५	मध्यमा
	लहसुनिया(Cat's Eye)	४	कनिष्ठिका
७. स्त्री मासिक रोग (Menstrual Disorder)	सफेद मोती(White Pearl)	१०	कनिष्ठिका
८. लकवा(Paralysis)	लाल मूंगा(Red Coral)	७	अनामिका
	चन्द्रकान्त मणि(Moon Stone)	६	तर्जनी
९. निमोनिया(Pheumonia)	लाल मूंगा(Red Coral)	७	अनामिका
	पीत नीलम(Yellow Sapphire)	५	तर्जनी
१०. आतशक (Syphills)	लाल मूंगा(Red Coral)	७	अनामिका
	सफेद मूंगा (White Coral)	७	कनिष्ठिका
११. थ्राट प्राब्लम (Throat Problems)	लाल मूंगा(Red Coral)	६	मध्यमाा
१२. दाँत दद(Toothacke)	लाल मूंगा(Red Coral)	५	तर्जनी
१३. खून की कमी(Anaemia)	लाल मूंगा (Red Coral)	७	अनामिका
	पीत नीलम(Yellow Sapphire)	५	तर्जनी

१४. दमा(Ashtema)	लाल मूंगा(Red Coral)	६	मध्यमा
	पीत नीलम(Yellow Sapphire)	५	तर्जनी
१५. पीठ दर्द(Backache)	लाल मूंगा (Red Coral)	६	अनामिका
	पुखराज (Topaz)	५	तर्जनी
१६. हड्डियों की बीमारियाँ (Bone Diseases)	लाजावर्त(Lapic Lazuli)	४	अनामिका
	पन्ना (Emerald)	६	मध्यमा
१७. दिमागी बुखार(Brain Fever)	माणिक्य (Ruby)	४	अनामिका
	पीत नीलम(Yellow Sapphire)	५	तर्जनी
१८. कैंसर (Cancer)	नीला नीलम (Blue Sapphire)	६	मध्यमा
	लाल मूंगा (Red Coral)	६	अनामिका
१९. बहुमूत्र (Diabetes)	लाल मूंगा (Red Coral)	६	अनामिका
	पीत नीलम(Yellow Sapphire)	५	तर्जनी
२०. खून सम्बन्धी बीमारियाँ (Blood Diseases)	लाल मूंगा (Red Coral)	६	अनामिका
	पीत नीलम(Yellow Sapphire)	५	तर्जनी
२१. मिरगी (Epllepsy)	पन्ना (Emerald)	६	मध्यमा
२२. गास्ट्रिक अल्सर(Gastric Ulcer)	पन्ना (Emerald)	६	मध्यमा
	पीत नीलम(Yellow Sapphire)	५	तर्जनी
२३. मोतीझरा (Cararact)	लालमूंगा(Red Coral in Summer)	६	मध्यमा
	माणिक्य (Ruby in Winter)	५	तर्जनी

६.२- रत्नों का मानव शरीर पर प्रभाव-

भूगर्भ शास्त्र के वैज्ञानिक रत्नों द्वारा मानव शरीर पर पड़ने वाले प्रभाव को मानते हैं उनका कहना है कि रत्न ग्रहों की किरणों से प्रभावित होकर मानव शरीर पर उसका प्रभाव करते हैं। मनुष्य शरीर पाँच तत्त्वों से बना है पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश। मानव शरीर में सात प्रकार की सूक्ष्म ग्रन्थियाँ हैं।[1]

1- **Scientifi Basis:-** The human body contains hundred of locations where there are focused and concentrated energy centers. Chakars are similar to wheels, in that they are spinning vortexes of energy. They are centers of force. Located within our etheric body, through which we recive transmit and process life energies. "Gemology book P- 145"

इन कोश या पँखुड़ियों को पद्म दल कहते हैं। यह एक प्रकार की तन्तु गुच्छक है। इन गुच्छक को ही सात चक्र कहते हैं। इन चक्रों के रंग भी सात प्रकार के होते हैं। तत्वों की प्रधानता होने के कारण इन चक्रों में रंगों का न्यूनाधिक होना स्वाभाविक है और इस तत्व प्रधानता उस स्थान के रक्त पर प्रभाव पड़ता है और उसका रंग बदलता है। पृथ्वी तत्व की प्रधानता का मिश्रण होने से गुलाबी, जल से नीला, अग्नि से सिंदूरी वायु से शुद्ध लाल और आकाश से दुमैला होता है। यही मिश्रण चक्रों का रंग बदल देता है। चक्रों में भी एक-एक तत्व की प्रधानता रहती है। जिस चक्र में जो तत्व प्रधान होता है वही उसका तत्व कहा जाता है। चक्रों में वायु की चाल में भी अंतर होता है। इन चक्रों में विभिन्न दैवी शक्तियाँ सन्निहित हैं। प्रत्येक चक्र में एक पुरुष वर्ग की उष्ण वीर्य और स्त्री वर्ग की शीत वीर्य की शक्ति रहती है। चक्र अपनी सूक्ष्म शक्ति को प्रवाहित करते रहते हैं। चक्रों में तत्त्वों की प्रधानता के कारण उनके गुण वर्ण में भी प्रधानता होती है। इन तत्त्वों के यथायोग्य सम्मिश्रण से विविध अंग प्रत्यंगों का निर्माण कार्य एवं उनका संचालन होता है जिस स्थान में जितनी आवश्यकता उससे न्यूनाधिक हो जाने पर शरीर रोगग्रस्त हो जाता है। तत्त्वों का यथास्थान यथा मात्रा में होना निरोगता का चिह्न समझा जाता है। ध्वनि शक्ति और रंगों का प्रभाव शरीर की नाड़ियों एवं कणों पर अधिक होता है। इन चक्रों के सात रंगों का यथा योग्य होना आवश्यक है।[1]

---

1. Each chakar in the body is recognized as a focal point of life force relating to physical, emotional, mental and spiritual energies. The chakar are the net work through which body/mind/ spirit interact as one holistic system.

The Muladhara, Swadhisthana, Manipura, Anahata, Visuddha, Ajna and Sahasrara chakra seven major chakars correspond to specific aspects of our consciousness and have their own individual characteristics and functions. Each has a corresponding relationship to one of the various glands of the body's endocrine system, as well as to one of the seven colors of the rainbow. Chakra as under:-

Our body is composed of seven primary colors of the solar secptrum; violet, indigo, blue, green, yellow and red. These are called primary colors and mixing one or two primary colors makes other hues and shades. When there is deficiency or absence of any one of these primary colors in our body, were attacked with the disease caused by that deficiency.

The energy wavelenths of of color can have a significant effect upon a person's health, psychological condition and general well being different ones have very definitive effects upon our muscular and nervous systems. Some colors relax people, some stimulate them, some see to instigate a positive mental state and some seem to bring on depression

"Gemology book P- 150-156"

मानव के शरीर पर सौर मण्डलों के ग्रहों का प्रभाव शरीर पर होता है। सूर्यादि ग्रह अपने रंग के अनुसार मानव शरीर पर अपना प्रभाव डालते है। ग्रहों का अति दूर होने एवं पृथ्वी का निरन्तर घूमने के कारण भूमण्डल के प्राणियों पर ग्रह अपना प्रभाव एक जैसा नहीं डाल सकते अर्थात् उनमें न्यूनाधिक अंतर होता है। बच्चे के जन्म समय एवं उस स्थान पर जिस ग्रह की किरणों का जितना प्रभाव होता है उतरा ही उस ग्रह का प्रभाव जातक के शरीर में दिखाई देना होता है। यह प्रभाव अनुकूल एवं प्रतिकूल दोनों प्रकार का होता है। जिस ग्रह की किरणों का प्रभाव जातक के जन्म समय में कम पड़ा हो उस ग्रह के वर्ण, गुण एवं तत्व की कमी जातक के शरीर में देखी जाती है। उन ग्रहों के तत्वादि को पूरा करने में उस ग्रह से सम्बन्धित रत्न सहायक होते हैं क्योंकि रत्नों में ग्रहों द्वारा छोड़ी गई किरणों को खींच कर अपने अन्दर लाने एवं धारण करने वाले प्राणि के शरीर में संचारित करने की शक्ति होती है। जिस रत्न में जो रंग होगा उस रंग से सम्बन्ध रखने वाले ग्रह के प्रभाव को अनुकूल या प्रतिकूल बनाते हैं। रत्नों को यदि उचित प्रकार से प्रयोग में न लाया जाये तो वह लाभ के स्थान पर हानिकारक भी सिद्ध हो सकते हैं। रंग प्रधान होने से रत्नों का सम्बन्ध ग्रहों एवं मानव शरीर के साथ जुड़ा हुआ है।

आधुनिक शोध के अनुसार शरीर पर रंगों का बहुत बड़ा प्रभाव पड़ता है। क्योंकि रंगों में कई विशेषतायें पाई जाती हैं। रंग की विशेषताओं का वर्णन विज्ञान के ग्रन्थों में दिया हुआ है।[1]

1- The color Red stimulates; green relaxes and promotes feelings of well being, black can be a depressant; blue is calming for the emotions. Bright yellow and oranges have been found to make recovering patienta more positive and cheerful, greatly speeding their recovery due to increase in their own desire to get beter. Thes colors are visible in nature in rainbows or the polar lights.

Colors can be used to restore physically vitality and deplated energy to orgens of the body. This is certainly not a 'new age' discovery either. Pythogoras experimented with the effects of color on health. The secretions of the glands become stimulated, which in turn gives help to particular parts of the body. It was found that by treating specific orangans through color therapy the endocrime system was stimulated the lymphatic system promoted better drainage and thus bacteria and rotten tissue were flushed from the body were also eliminated.

Light is simply radiant enery which is visible to our eyes. The vibrations very in size and vibration of light less than 32 impulses per second are invisible as well as inaudible. The speed at which light travel is 186000 imles per second. The variations of light, heat and color are in direct proportion to the varience of sie of thes wavelengths. Although extremely short wavelenths may be invisible, they still have color, it's just that oure eyes cannot pick it up. "Gemology book P- 150-156"

रत्नों का प्रयोग एवं रत्न धारण से पूर्व यह जान लेना आवश्यक है कि कौन सा रत्न धारण करने से अधिक से अधिक लाभ प्राप्त हो सके। रत्नों में अपनी कोई दिव्य शक्ति नहीं होती जो किसी प्रकार का प्रभाव दे परंतु रत्नों में ग्रहों द्वारा छोड़ी हुई किरणों को अपने में खींचने एवं शरीर में सञ्चारित करने की क्षमता होती है।[1] ग्रहों द्वारा छोड़ी विभिन्न प्रकार के रंगों का उपचार करने में अत्यन्त वैज्ञानिक सिद्ध होते हैं। यदि रत्नों को रोगानुसार उपयुक्त मात्रा एवं समय-समय में धारण करने से पूर्णतया लाभ होता है। रत्न असाध्य से असाध्य रोगों के भी शमन करने में सक्षम होते हैं।

1- Planets and earth move at different speeds in the ordit. Resultantly, during each particular month, there are particular planets that keep getting farther from the earth. And each planet gives out a particular color that is engulfed by the earth's surface from time to time. The planets that are far from earth in the particular month, would not allow allow its cosmic color to be reflected during that month, hence causing a deficit throughout that month. Therefore any child being born during that month will possibly have the deficiency of that color. Conseque ntly the child by birt may not recive the color released by that planet. Color and sound both radiate energy. All living beings radiate energy, although these emenations are invisible to most of us, yet some living things, such as fire flies or glow-worms do emit visible radiation. Both color and sound vibrations, unlike most of those mentioned in the above list may be used without harmful side-effects to treat many physical and emotional disorders. The human body is made out of five elements which remain in perfect hemony. Inspite of this, rare are persons who are blessed whith all the virtues of life. We all have some kind of deficiency from the five elements in our body. This is astro Science suggest remedial measures to overcome the deficiency in us with respect to the five elements namely earth, water, consmic,energy, fire and air.

These elements are contained in our precious and mearsures for countering malefic effects from planets and or countracting any particular malefic effects. Gemes has its logical and baed on scientific principles. It has discovered that gemstones send out vibrations and rays from the planets have their own effect on the life on earth. The precious gems which have the same mineral as is pre-dominant in the planet, act as a modulator of the planentary microwave viberations. The rays of planets are supernatural and our life is controlled by these supernatural forces and power the they modulate the cosmic viberations in such a way that the supernatural energy emenating from the planets is connected into harmonious forces which certainly boasts the morale of the wearer. Needless to say the gem stones are the harmonizers of planetary influences. The gemes are distinguished by their hardness.

The chemical composition and the effects of various gemstones will arouse the reader with a scientific temper and real of astrology. Astro- gemolist to derive maximum advantages from the use of the gemes. Gemes in themselves do not have any magical powers to change one's denisity but they help one and all to overcome planentary afflications and adverse transits.Gemes have been used from times immemorial to cure certain diseases. Gemstones like coral have been found to be very useful in curing diseases rapidly like anemis, general disability, skin disorder, blemishes, etc. Blue sapphire has also been found effective in disease like vomiting, nauses, headaches etc. "Gemology book P- 158-170"

उपसंहार

ऋग्वेद-

"रत्न" शब्द सर्वप्रथम ऋग्वेद के प्रथम मण्डल प्रथम ऋचा तथा प्रथम सूक्त से ही प्राप्त हो जाता है जिसमें बहुमूल्य रत्नों को देने अथवा धारण करने का वर्णन है।[1] वेदों में रत्नों के विभिन्न नाम बताए हैं- वज्र, इन्द्रनील, मरकत, कर्केतर, पद्मराग रुधिराख्या, वैदूर्य, पुलक, विमलकराजमणि, स्फटिक, शशिकान्त, सौगन्धिक, गोमेद, शङ्ख, महानील, पुष्पराग, ब्रह्ममणि, ज्योतिरस, सस्यकमुक्ता, प्रवाल आदि।[2]

अथर्ववेद में मणियों का उल्लेख मिलता है। यह मणियाँ इस प्रकार से है- दर्भमणि, जगिड मणि, अभीवर्त मणि, अस्तृत मणि, वरण मणि, फाल मणि, पर्णमणि, औदुम्बर मणि, शंख मणि, शतवार मणि, प्रतिसर मणि आदि यह मणियाँ विभिन्न प्रकार की व्याधियों को दूर कर दीर्घायु देने वाली हैं, शत्रुनाशक हैं। पापों से मुक्त करवाती हैं तथा क्षात्र शक्ति को बढ़ाती हैं। यह मणियाँ वीरों को बांधी जाती हैं।[3]

अग्नि पुराण के २४६वाँ अध्याय रत्न शास्त्रीय महत्व का है। जिसमें विभिन्न रत्नों के लक्षणों का वर्णन है। इन रत्नों में वज्र, मरकत, पद्मराग, स्फटिक, कर्केतन, भीष्मक, पुलक, रुधिराख्य, विद्रुममणि आदि की श्रेष्ठता, परीक्षण विधि, विविध प्रकार के लक्षण, गुण-दोष वर्णित हैं।[4]

गरुड़ पुराण-

इस ग्रन्थ में प्रथम खण्ड के ६८ से लेकर ८० तक के तेरह अध्यायों में भिन्न- भिन्न रत्नों का विस्तार से विवेचन किया गया है। जिसमें वज्र, मुक्ता, पद्मराग, मरकत, इन्द्रनील, वैदूर्य, पुष्पराग की उत्पत्ति, उत्पत्ति स्थान, विविध लक्षण, गुण-दोष तथा परीक्षण विधि का वर्णन है। इन रत्नों के अतिरिक्त गन्धसस्य, चन्द्रकान्त, सूर्यकान्त, पुलक, कर्केतन, पुष्पराग, ज्योतिरस, राजपट्ट, राजमय, शुभ सौगन्धिक, गञ्ज, शङ्ख, ब्रह्ममय, गोमेद, रुधिराक्ष, धूली, तुष्यक, सीस पीलू, प्रवाल, गिरिवज्र, भुजङ्ग मणि, टिट्टिभ, भ्रामर और उत्पल का भी उल्लेख मिलता है। गरुड़पुराण में यह भी वर्णित है कि अन्य विद्याओं की भाँति रत्न शास्त्र का उदय और विकास ब्रह्मा तथा व्यास से ही हुआ था।

" वैदूर्यपुष्परागाणां कर्केतनभीष्मकयोः।
परीक्षा ब्रह्मणा प्रोक्ता व्यासेन कथिता द्विज"।।[5]

---

१. ऋग्वेद - ०१/०१/०१
२. तदेव - १०/४२/०७
३. अथर्व० सुभा०- पृ०-२४८-२६०
४- अ० पु०- अ०- २८३/५२
५- ग० पु०- ०१/७३/०१ पृ०- २६६

बृहत्संहिता-

इस ग्रन्थ के ८० से ८३ तक के ४ अध्याय रत्न शास्त्र से सम्बन्धित हैं। जिस में रत्न परीक्षा, रत्नों की उत्पत्ति, रत्नों के नाम जिन में वज्रमणि के सात आकार स्थान, हीरे के प्रकार, शुभ-अशुभ हीरे के लक्षण,हीरे के धारण में गुण, मोतियों के आठ उत्पत्ति स्थान, मोतियों के लक्षण, मोतियों की विशेषताएं विभिन्न प्रकार के मुक्ता फल लक्षण, मोतियों में अमूल्यता तथा मोतियों से रचित आभूषणों की संज्ञा का वर्णन है। पद्मराग की उत्पत्ति, लक्षण, गुण- दोष तथा प्रभाव का उल्लेख हुआ है। मरकत मणि का प्रयोजन बताकर उसके लक्षण बताए गए हैं।[1]

मुहूर्तचितामणि-

मुहूर्तचितामणि में रत्न धारण तथा अल्प मुल्य रत्न धारण का वर्णन हुआ है। रत्न धारण में विविध ग्रहों से सम्बन्धित रत्नों का उल्लेख हुआ है। जिसमें हीरा, मोती, प्रवाल, गोमेद नीलम, वैदूर्य, पुष्पराग, पन्ना तथा माणिक्य का वर्णन है। किन-किन शुभमुहूर्तों में यह रत्न धारण करने चाहिए इसका भी उल्लेख हुआ है।अधिक मूल्यवान् रत्न धारण की असमर्थता पर अल्प मूल्यवान् रत्नों को धारण करने का वर्णन मिलता है।[2]

अर्थ शास्त्र-

अर्थ शास्त्र में विभिन्न रत्नों की परीक्षाओं का वर्णन है। मोतियोंकी उत्पत्ति के स्थान, मोतियों की उत्पत्ति के कारण, मोतियों में पाए जाने वाले दोषोंका वर्णन है। मणियों के उत्पत्ति स्थान तथा पांच प्रकार के माणिक्य का भी उल्लेख मिलता है। वैदूर्यमणि तथा इन्द्रनील मणि आठ प्रकार की बताई गई है। स्फटिक मणि के चार प्रकारों का उल्लेख भी हुआ है। मणियों में पाए जाने वाले भिन्न-भिन्न गुण तथा दोषों का भी वर्णन मिलता है। मणियों की आठ प्रकार की उपजातियों का भी उल्लेख हुआ है। हीरे के छह उत्पत्ति स्थान बताए गए हैं तथा इसके आकार-प्रकारों का भी वर्णन हुआ है। मूंगेके उत्पत्ति स्थान बताकर उसके दो प्रकारों का वर्णन किया गया है।[3]

रत्न विज्ञान- इस ग्रन्थमें १८ प्रकार के भिन्न-भिन्न रत्नों का वर्णन किया गया है। इन रत्नों में हीरा, मुक्ता, प्रवाल माणिक्य, नीलम, पन्ना, वैदूर्य फिरोजा इत्यादि वर्णित है। हीरे की श्रेष्ठता बतलाकर हीरे की उत्पत्ति, गुण-धर्म, हीरकशोधन तथा हीरे की भस्म से विभिन्न प्रकार के रोगों का उपचार बताया गया है। मोती के उद्भव स्थान, बहुमुल्य मोती, मोती का विनिमय, कृत्रिम मोती, मोती परीक्षा मोती और ज्योतिष शास्त्र, मोती के दोष उत्कृष्ट मोती की छाया, गुण-धर्म, मोती भस्मादि से शीघ्र दूर होने वाले रोगों का वर्णन है। प्रवाल का उत्पत्ति स्थान, रूप रंग, लक्षण, गुण धर्म, शोधन मारण, प्रवाल भस्मादि से शीघ्र दूर होने वाले रोगों का वर्णन है। माणिक्य के उत्पत्ति स्थान, रंग रूप, लक्षण, उत्कृष्ट, निकृष्ट माणिक्य, शुद्धाशुद्ध माणिक्य के गुण- दोष, माणिक्य

१- बृ० सं० पृ०- ०७-०८, २- मु० चि० पृ०- २०७-२०६,

३- अ० शा०- [illegible] १२५-१२६

के प्रतिनिधि रत्न, कृत्रिम माणिक्य, शोधन, भस्म इत्यादि का वर्णन है। नीलमके उत्पत्ति स्थान, लक्षण, प्रकार गुण धर्म, कृत्रिम नीलम, शोधन-मारण, भस्मीकरण इत्यादि का वर्णन है। पन्ना के उत्पत्ति स्थान, रूप रंग, लक्षण, शुद्ध पन्ने की परीक्षा, पन्ने के प्रमुख प्रकार प्राप्ति स्थान इत्यादि का वर्णन है। वैदूर्य के उत्पत्ति स्थान, वैदूर्य के प्रकार, रूप- रंग, लक्षण, गुणधर्म, चिकित्सा तथा उपयोगी वैदूर्य इत्यादि उल्लिखित हैं।

फिरोजा के उत्पत्ति स्थान, रूप-रंग लक्षण, गुण-धर्म, शोधन मारण इत्यादि वर्णित हैं। राजावर्त के उत्पत्ति स्थान, रूप-रंग इत्यादि का वर्णन है। वैक्रान्त के उत्पत्ति स्थान रंग, लक्षण, गुणधर्म शोधन-मारण, भस्मीकरणादि उल्लिखित है। पुलक के उत्पत्ति स्थान, रंग रूप लक्षण, पुलक के प्रकारों का वर्णन है। अकीक के नाम उत्पत्ति स्थान, व्यवसाय, प्रकार, गुण दोषों का वर्णन है। भीष्ममणि के विभिन्न नाम, उत्पत्ति स्थान, लक्षण इत्यादिं वर्णित हैं। अम्बर तथा तृणकान्त के उत्पत्ति स्थान तथा वैज्ञानिक अनुसंधान वर्णित हैं। गोमेद तथा पुखराज के उत्पत्ति स्थान, रंग-रूप, लक्षण, गुण दोष तथा कृत्रिमता वर्णित हैं। इस प्रकार रत्न विज्ञान में विभिन्न प्रकार के १८ रत्नों का विस्तृत विवेचन दिया गया है। पं० राधाकृष्ण पराशर ने रत्नों का वैज्ञनिक अनुसंधान भी बतलाया है तथा रत्नों की भस्म से विभिन्न प्रकार के रोगों का उपचार भी बताया है।[1]

युक्तिकल्पतरु

इस ग्रन्थ में **'रत्न'** नामक अध्याय में संकलित विषयक श्लोक विभिन्न ग्रन्थों से उद्धृत किए गए हैं। इसमें रत्न विषयक श्लोकों की संख्या ४८७ है जबकि अन्य में इतनी संख्या उपलब्ध नहीं होती है जैसे गरुड़ पुराण में २२६, बुद्धभट्ट की रत्न परीक्षा में १२६, अग्निपुराण में ६, मानसोल्लास में ७५ हैं। युक्तिकल्पतरु में रत्नों को ब्राह्मणादि चार जातियों को विभाजित कर बताया गया है। रत्नों में पद्मराग, वज्र, हीरक, विद्रुम, प्रवाल, गोमेद, मुक्ता, वैदूर्य, इन्द्रनील, मरकत, पुष्पराग, कर्केतन, भीष्ममणि, पुलक, रुधिराख्य, स्फटिक, अयस्कान्त आदि रत्नों के गुण, दोष, मूल्य, परीक्षा, उत्पत्ति, जाति का वर्णन है। सभी ग्रन्थों में प्रायः वज्र से प्रारम्भकर गुण-दोषों की उत्पत्ति को बताया है किन्तु सभी ग्रन्थो में यह ऐसा ग्रन्थ है जिसने वज्र से प्रारम्भ न कर पद्मराग से प्रारम्भ किया है।[2]

शालिग्रामनिघण्टु भूषण

इस ग्रन्थ में रत्न शास्त्र की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ के रत्नोपरत्नवर्ग अध्याय में विभिन्न रत्नों का वर्णन किया गया है। रत्नों में हीरा, माणिक्य, मोती एवं प्रवाल आदि के भेद, भेदों के लक्षण, गुण, रोगों के उपचार के लिए रत्नों का महत्त्व, तथा अशुद्ध रत्नों के दोषों का वर्णन किया गया है।[3] इस प्रकारसे देखा जाता है कि इस ग्रन्थ में विभिन्न रत्नों का उल्लेख एवं महत्ता को बताया गया है।[4]

१- द्रष्टव्य र० वि० पृ० ०१-२६७, २- युक्तिकल्पतरु अ० ४५-७३, पृ० ८५-१३८
३- द्रष्टव्य शा० नि० पृ० ७३४- ७४१, ४- तदेव- - - - पृ० ७४२- ७५३

रत्न प्रदीप- रत्न प्रदीप में ८४ बहुमूल्य रत्न और उपरत्नों का वर्णन मिलता है। इसमें रत्नों के गुण-दोष तथा उनकी कृत्रिम-अकृत्रिम के विषय में बताया गया है। रत्नों का मानव शरीर पर क्या प्रभाव पड़ता है तथा रत्नों के शुभ-अशुभ लक्षणों का वर्णन भी किया गया है। किस दिन कौन सा रत्न धारण करना चाहिए इस विषय का भी विवेचन किया है। रत्नों का औषधीय उपयोग बताते हुए हृदय रोग में रत्नों का प्रयोग गुर्दे के दर्द, बुद्धि की बढ़ोतरी के लिए तुर्मली, गठिया के लिए अम्बर, हार्ट अटैक के लिए मोती का वर्णन किया गया है।[1]

इस प्रकार संस्कृत साहित्य के ग्रन्थों में रत्नों के विषय विस्तार पूर्वक वर्णन मिलता है परन्तु वह विकीर्ण अवस्था में प्राप्त होता है। उस वर्णन एकत्रित करके क्रमानुसार इस शोध प्रबन्ध प्रस्तुत किया जारहा है।

इस शोध में रत्न शब्द की व्युत्तपति, अर्थ, रत्नों के उत्पत्ति स्थान, प्रकार, विशेषता, रत्नों द्वारा मानव जाति को अनेक प्रकार के लाभ, अरिष्ट ग्रहों का शमन, विभिन्न रोगों का निवारण, यश-मान, कीर्ति एवं भाग्योन्नति के अनेक प्रकार के प्रयोगों का विवेचन आदि विषयों का विवेचन किया गया है। यथा-

व्युत्तपति- 'रत्न' शब्द रम् धातु और णिच् प्रत्यय (रम्यति हर्षयाति, रम्+णिच्+न, तकारादेश) से बना है।[2]

अर्थ- जवाहर, बहुमुल्य चमकीले, छोटे और रंग-बिरंगे पत्थर (रत्नों की संख्या ५,६,६,१४ या ८४ बतलायी जाती हैं।) कोई भी बहुमुल्य प्रिय पदार्थ, कोई भी सर्वोत्तम वस्तु। नपुंसक लिंगी-मणि, अपनी जाति में श्रेष्ठ आदि।[3]

ऋग्वेद में रत्न शब्द को विभिन्न अर्थों में लिया गया है। ऋग्वेद के प्रथम मण्डल प्रथम सूक्त प्रथम ऋचा में ही रत्न धातमम् शब्द का वर्णन आया है।[4] यहाँ पर स्वर्णादि बहुमूल्य रत्नों को देने अथवा धारण करने का वर्णन मिलता है। रत्न को इसलिए भी धारण किया जाता है कि वे उत्तम फल की प्राप्ति देते हैं। रत्नों को धारण करने से धन की प्राप्ति होती है और कुछ लेखकों ने **'निधि'** के अर्थ में किया है। पुराण ग्रन्थों में दैत्यों तथा देवताओं के बीच हुए समुद्र मन्थन में चौदह रत्नों की प्राप्ति का उल्लेख हुआ।[5]

१- र० प्र० पृ० १२. २३५

२. रत्नं स्वजातिश्रेष्ठेऽपि- 'रत्नम्' (न) के अपने जातिवालों (सामान्य वर्ग) में श्रेष्ठ हीरा आदि मणि-मणि अर्थ हैं। (रेति)।। रमयति। 'रमु क्रीडायाम'(भ्वा०आ०अ०)। ण्यन्तः। अन्तर्भावि तव्यर्थो वा,रमन्तेऽ स्मिन वा। 'रमेस्त च'(३०३/१४) इति नः।'नऽवशि' '७/२ /८' इति नेट्। णेरनिटि (६/४/५१)। रत्नं स्वजातिश्रेष्ठेऽपि मणावपि नपुंसंकम् इति मेदिनी '८३/१७' अमरकोश, पृ० ४४२,

३- द्रष्टव्य संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ पृ०- ६३५

४. अग्मीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्। होतारं रत्नधातमम्। ऋग्वेद - ०१/०१/०१

५-क) द्रष्टव्य- शि० म०पु० पृ०- ५२७, ख) द्रष्टव्य- स्क० पु० अ०- ६

ग) महाभारत प्रथम खंड अ०- २८

आचार्यों ने रत्नों और उपरत्नों का विभाग करते हुए नौ पाषाणों को रत्न तथा दूसरों को उपरत्न माना है। नौ रत्नों में वज्र, नीलम, पुष्पराग माणिक्य, मरकत, गोमेदक, वैदूर्य तथा प्रवाल माने गए हैं। इनमें मुक्ता और मूंगा को पाषाण की संज्ञा नहीं दी जा सकती है क्योंकि दोनों ही समुद्र से प्राप्त होते हैं। एक सीप से तथा दूसरा समुद्र की भीतर की जड़ों से। वेदों में **'रत्न'** शब्द का प्रयोग कीमती वस्तु और खजानों के अर्थ में हुआ है। प्राचीन समय में मणि को धागे में पिरोकर गले में पहना जाता था। मणि का अर्थ तावीज की तरह पहनने वाले रत्नों से था।[1] अतः देखा जाता है कि **'रत्न'** शब्द का प्रयोग भिन्न भिन्न अर्थों में हुआ है। किंतु बहुत से आचार्यों ने रत्न शब्द का अर्थ हीरा, प्रवाल आदि के अर्थ में किया है। विभिन्न कोषकारों ने अपने अपने मतों के अनुसार रत्न शब्द का अर्थ दिया है।

अथर्ववेद- अथर्ववेद में रत्नों के अतिरिक्त मणियों का उल्लेख भी मिलता है। दर्भमणि, जगिडमणि, अभीवर्तमणि, अस्तृतमणि, वरणमणि, फालमणि,पर्णमणि, औदुम्बरमणि, शंखमणि, शतवारमणि, प्रतिसरमणि इन ग्यारह प्रकार की मणियों का वर्णन मिलता है। मणियों की अठारह प्रकार की उपजातियाँ इस प्रकार हैं :-

१. विमलक(श्वेत हरित वर्णों से मिश्रित), २. सस्यक (नीली), ३. अंजनमूलक (नील-श्याम वर्ण मिश्रित), ४. पित्तक (गाय के पित्त के समान), ५. सुलभक(श्वेत), ६. लोहिताक्ष (किनारों पर लाल और केन्द्र में श्याम), ७. मृगाश्मक (श्वेत- अरुण-मिश्रित), ८. ज्योतीरसक(श्वेत अरुण मिश्रित), ६. मैलेयक(शिंगरफ़ की भान्ति), १०. अहिच्छत्रक(फीके रंग वाली), ११. कूर्प(खुरदरी), १२. प्रतिकूर्प(दागी), १३. सुगन्धि कूर्प(मूँगवर्णी), १४. क्षीरपक (दुग्ध धवलं), १५. शुक्ति चूर्णक (अनेक रंगों वाली), १६. शिलाप्रवालक (मूँगे के समान), १७. पुलक (केन्द्र में काली) और १८. शुक्र पुलक (केन्द्र में श्वेत)।[2]

रत्नों की संख्या-

वेदों में इन बीस रत्नों का वर्णन मिलता है- वज्र, इन्द्रनील, मरकत,कर्केतर, पद्मराग, रुधिराख्या, वैदूर्य, पुलक, विमलकराजमणि, स्फटिक, शशिकान्त, सौगन्धिक, गोमेद, शङ्ख, महानील, पुष्पराग, ब्रह्ममणि, ज्योतिरस, सस्यकमुक्ता, प्रवाल आदि।[3]

अग्नि पुराण में ३५ प्रकार के रत्नों का उल्लेख हुआ है। ये रत्न हैं- वज्र (हीरा) मरकत् पद्मराग मुक्ता, महानील, इन्द्रनील, वैदूर्य, गन्धसस्य, चन्द्रकान्त, सूर्यकान्त, स्फटिक, पुलक,कर्केतन, पुष्पराग, ज्योतीरस, राजपट्ट, राजमय, शुभसौगन्धिक ,गंज, शंख, ब्रह्ममय, गोमेद, रुधिराक्ष, धूली, मरकत, तुष्यक, सीस, पीलु, प्रवाल, गिरिवज्र, भुजंगमणि, वज्रमणि, टिटिभ, भ्रामर और उत्पल हैं।[4]

१- 'हिन्दुत्व' एवं सस्कृत' वैदिक साहित्य का इतिहास' २- 'अथर्वसुभषीतावली'
३- द्रष्टवय 'हिन्दुत्व' एवं सस्कृत ' वैदिक साहित्य का इतिहास'
४- द्रष्टव्य अ० पु०- २४६/१-६ ,

गरुड पुराण में तेरह रत्नों का वर्णन मिलता है।[१] विष्णुधर्मोत्तर पुराण में ३४ प्रकार के रत्नों का उल्लेख हुआ हैं।[२] वराहमिहिर कृत बृहत्संहिता में २२ प्रकार के रत्नों का उल्लेख हुआ है।[३] कौटिल्य कृत अर्थशास्त्र और शुक्रनीति में नौ प्रकार के रत्नों का उल्लेख हुआ है वे रत्न हैं- वज्र, प्रवाल, मोती, माणिक्य (पद्मराग) वैदूर्य, पुष्पराग, गोमेद, इन्द्रनील, स्फटिक। इन रत्नों के प्रकारों का विवेचन भी विस्तार से किया गया है।[४] युक्तिकल्पतरु में पद्मराग, वज्र, हीरक, विद्रुम, प्रवाल, गोमेद, मुक्ता, वैदूर्य, इन्द्रनील, मरकत, पुष्पराग, कर्केतन, भीष्ममणि, पुलक, रुधिराख्य, स्फटिक और अयस्कान्त इन १७ प्रकार के रत्नों का वर्णन मिलता है।[५] रत्नविज्ञान में १८ प्रकार के रत्नों का उल्लेख किया है।[६] रत्न प्रदीप में ८४ बहुमूल्य रत्न और उपरत्नों का वर्णन मिलता है। यह ८४ रत्न इस प्रकार से हैं:-

माणिक्य, हीरा, पन्ना, नीलम, मोती, मूँगा, पुखराज, गोमेद, लालंडी, फिरोज़ा, रोमनी, जबरजद्द, उपल, तुरमली, नरम, सुनेला, कटैला, सीतारा, फिटक-स्फटिक, गौदन्ता, तामडा, लूधया, मरियम, मकनातीस, सिन्दूरिया, नीली, धुनेला, बैरूँज, मरगज, पितौनिया, वाँशी, दुर्बेननज्फ, सुलेमानी, आलेमानी, जजेमानी, सावीर, तुरसावा, अहवा, आबरी, लाजवर्त, कुदूरत, चित्ती, संगसन, लारू, कसौटी, वारचना, हकीक, हालन, सीजरी, मुबेनज्फ, कहरुवा, झना, संगबसरी, दाँतला, मकड़ा, संगीया, गूदड़ी, कामला, सिफरी, हरीद, हवास, सींगली, हवास, ढीडी, हकीक गौरी, सीया, सीमाक, मूसा, पनधन, अमलीया, डूर, लिलियर, खारा, पारा, जहर, सीर खड़ी, जहर मोहरा, खात, सोहन, मक्खी, हज़रते ऊद, सुम्मा, पारस।[७]

गुण- मणियों में ग्यारह प्रकार के गुण होते हैं। १. षडज (छह कोनों वाली), २. चतुरस (चार कोनों वाली), ३. वृत्त(गोलाकार), ४. गहरे रंग वाली चमकदार, ५. आभूषण में लगाने योग्य, ६. निर्मल, ७. चिकनी, ८. (भारी), ६. दीप्तियुक्त, १०. चंचलकान्युिक्त, ११. अपनी कान्ति से पास की वस्तु को प्रकाशित कर देने वाली।[८]

दोष- मणियों में सात प्रकार के दोष पाये जाते हैं।

१. हलके रंग वाली, २. हलकी प्रभा वाली, ३. खुरदरी, ४. छिद्र वाली, ५. कटी हुई, ६. उपयुक्त स्थान पर बेंधी हुई और ७. विभिन्न रेखाओं वाली।[९]

१- द्रष्टव्य ग० पु०- अध्याय- ६८-८०

२. द्रष्टव्य वि०धर्मो०, द्वितीय खण्ड अ०-१३-१५, ३- द्रष्टव्य बृ० सं०- ८०/ ४-५

क. द्रष्टव्य भा०प्र० नि०- श्लो०-१६८-१७६

४- द्रष्टव्य अ० शा०- अध्याय- ११, प्रकरण- २७, क- द्रष्टव्य शुक्र०- ०४/ ५५- ६७

५- द्रष्टव्य युक्ति० विषय- ४५- ७३,पृ० ८५- १३८, ६-द्रष्टव्य र० वि०, पृ०- ४३

७- द्रष्टव्य र० प्र० पृ० ५२

८. द्रष्टव्य हि० वि०- पृ०- १०, ६.द्रष्टव्य श० नि० भू०- पृ० - ७३२- ७५४

चिकित्सा शास्त्र में रत्नों का प्रयोग-

रत्नों का प्रयोग सर्वप्रथम सजावट तथा आभरण के लिए किया जाता था। बाद में ज्योतिषियों एवं आयुर्वेद शास्त्रियों ने इससे होने वाले शुभ-अशुभ फलों का विवेचन किया और चिकित्सादि प्रयोगों में इन रत्नोंकी भस्मों द्वारा अनेक प्रकार के रोगों का उपचार होने लगा। यथा

सर्वरत्न शुद्धि- शुद्ध अमल के साथ माणिक्य, जयन्ती से मुक्ता की, विद्रुम को खर तथा काञ्जी वा गोदूध के साथ, पुष्प राग को सन्धव नमक, कुलत्थ के क्वाथ संयोग से, जावल के जल से वज्र, नीलमणि को नीली के रस से गोमेद और वैदुर्य को त्रिफला के जल से शुद्धि होती है।[1]

सर्वरत्नानां शोधनम्- सभी प्रकार के रत्नों को शोधन करने के लिए विधि सौ पल कुलथी को एक द्रोण जल में पकावे और चौथाई रहने पर उतार कर छान लेवें। मुक्तादि आठों मणि तथा मैनसिलादि को इस से बार-बार सींचते हुए तीन दिन तक धूप में सुखा कर शोधें। इस प्रकार सब रत्न और मणि आदि शुद्ध हो जाते हैं।[2]

हीरा भस्म आयु वृद्धि पुष्टि, बल, वीर्य वर्धक शरीर का सुन्दरवर्ण तथा सुख की वृद्धि करने वाला है हीरक भस्म का उचित सेवन सम्पूर्ण रोगों को दूर करने वाला होता है।[3] इस प्रकार अन्य रत्न भी अपने गुणानुसार अनेक प्रकार के रोगों को दूर करते हैं।

अरिष्ट ग्रहों द्वारा उत्पन्न रोगों का रत्नों द्वारा उपचार-

जब किसी व्यक्ति को सूर्य ग्रह पाप के रूप में आकर कष्टदायक सिद्ध होता है। अर्थात् सूर्य लग्न कुण्डली, राशि एवं पाप ग्रहों के साथ अनिष्ट व्याधियाँ एवं शिर पीड़ा, प्रमेह, सतत और सन्तत(टाइफाइड) ज्वर, पित्त-रोग, अम्लशूल , हृदय रोग, हैजा, शिरोव्रण विषज व्याधियाँ, दाहकज्वर जैसे रोगउत्पन्न करता है। सूर्य द्वारा उत्पन्न रोगों के शमन के लिए माणिक्य रत्न तांबे या सोने में आयु की अवस्था के अनुसार मात्रामें धारण करने से एवं माणिक्य की भस्मका सेवन करने से सूर्य द्वारा उत्पन्न विकारों एवं रोगों का शमन होता है।[4] इसी प्रकार चन्द्रादि अन्य ग्रह द्वारा उत्पन्न व्याधियों को दूर करने में रत्न उपयोगि सिद्ध होते हैं।

---

१. शुद्धयत्यम्लेन माणिक्यं जयन्त्या मौक्तिकं तथा। विद्रुमं क्षारवर्णेण तार्क्ष्यं गोदुग्धकैस्तथा।।
पुष्परागं च सन्थानः कुलत्थक्वाथसंयुतः। तण्डुलीयजलैर्वज्रं नीलं नीलीरसेन च।।
रोचनाभिश्च गोमेदं वैदूर्यं त्रिफलाजलैः।। शार्ङ्गधर सं० ११/६२, भैष० र० ०१/१६१-१६३

२. स्वेदयेद्दोलिक्नयन्त्रे जयन्त्याः स्वरसेन च। मणिमुक्ताप्रवालानां यामकं शोधनं भवेत्।।
शार्ङ्गधर सं० मध्यखण्डे-११/८६

३- द्रष्टव्य भैष० र० ०१/१६१-१६४

४- शिरः पीडा प्रमेहश्च सततः सन्ततो ज्वरः। पित्तरोगोऽम्लशूलश्च हृदयरोगश्च विसूचिकाः।।
शिरोव्रणदिकं चैव विषजो दाहकजवरः। यमारयोगाद्धिक्का च रवौ व्याधिविनिर्णयः।।
र० वि०, पृ०- १६६

रत्न धारण, यथा- ज्योतिष शास्त्र के अनुसार सूर्य ग्रह का रत्न माणिक्य है। अतः सूर्य ग्रह के अशुभ स्थान में रहने पर माणिक्य रत्न धारण करना चाहिए। माणिक्य का दान तथा माणिक्य की भस्म का सेवन भी लाभदायक है।[1] आधुनिक शोध के अनुसार किस रोग पर कौन सा रत्न कितनी मात्रा में तथा किस अंगुली में धारण करना चाहिए, कुछ उदाहारण इस प्रकार हैं -

रोग	रत्न	मात्रा	धारण अंगुली
१. **गठिया**(Gout or Rheumatism)	लाल मूंगा(Red Coral)	७	अनामिका
	पीत नीलम	५	मध्यमा
२. **हृदय रोग**(Heart Diseases)	पन्ना (Emerald)	६	मध्यमा
	पीत नीलम(Yellow Sapphire)	५	तर्जनी
३. **हेपाटाइटस**(Hepatitis)	पन्ना (Emerald)	६	मध्यमा
	पीत नीलम(Yellow Sapphire)	५	तर्जनी
४. **इम्पोटेनस**(Impotence)	लाल मूंगा(Red Coral)	६	अनामिका
	सफेद मूंगा(White Coral)	६	कनिष्ठिक

वैज्ञानिक मत्त- भूगर्भ शास्त्र के वैज्ञानिक रत्नों द्वारा मानव शरीर पर पड़ने वाले प्रभाव को मानते हैं उनका कहना है कि रत्न ग्रहों की किरणों से प्रभावित होकर मानव शरीर पर उसका प्रभाव करते हैं। मनुष्य शरीर पाँच तत्त्वों से बना है पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश। मानव शरीर में सात प्रकार की सूक्ष्म ग्रन्थियाँ हैं। इन कोश या पँखुड़ियों को पद्म दल कहते हैं। यह एक प्रकार की तन्तु गुच्छक है। इन गुच्छक को ही सात चक्र कहते हैं। इन चक्रों के रंग भी सात प्रकार के होते हैं। तत्वों की प्रधानता होने के कारण इन चक्रों में रंगों का न्यूनाधिक होना स्वाभाविक है और इस तत्व प्रधानता उस स्थान के रक्त पर प्रभाव पड़ता है और उसका रंग बदलता है। पृथ्वी तत्व की प्रधानता का मिश्रण होने से गुलाबी, जल से नीला, अग्नि से सिंदूरी वायु से शुद्ध लाल और आकाश से दुमैला होता है। यही मिश्रण चक्रों का रंग बदल देता है। चक्रों में भी एक-एक तत्त्व की प्रधानता रहती है। जिस चक्र में जो तत्व प्रधान होता है वही उसका तत्व कहा जाता है। चक्रों में वायु की चाल में भी अंतर होता है। इन चक्रों में विभिन्न देवी शक्तियाँ सन्निहित हैं। प्रत्येक चक्र में एक पुरुष वर्ग की उष्ण वीर्य और स्त्री वर्ग की शीत वीर्य की शक्ति रहती है। चक्र अपनी सूक्ष्म शक्ति को प्रवाहित करते रहते हैं। चक्रों में तत्वों की प्रधानता के कारण उनके गुण वर्ण में भी प्रधानता होती है। तत्त्वों का यथास्थान यथा मात्रा में होना निरोगता का चिह्न समझा जाता है। ध्वनि शक्ति और रंगों का प्रभाव शरीर की नाड़ियों एवं कणों पर अधिक होता है। इन चक्रों के सात रंगों का यथा योग्य होना आवश्यक है।[2]

१- द्रष्टव्य र० वि०, पृ०- १२०

2- Gem & Gem Industry, Page- 13 & "gemology studies"

आधुनिक शोध के अनुसार शरीर पर रंगों का बहुत बड़ा प्रभाव पड़ता है। क्योंकि रंगों में कई विशेषतायें पाई जाती हैं। रंग की विशेषताओं का वर्णन विज्ञान के ग्रन्थों में दिया हुआ है।[1] रत्नों में अपनी कोई दिव्य शक्ति नहीं होती जो किसी प्रकार का प्रभाव दे परंतु रत्नों में ग्रहों द्वारा छोड़ी हुई किरणों को अपने में खींचने एवं शरीर में सञ्चारित करने की क्षमता होती है। ग्रहों द्वारा छोड़ी विभिन्न प्रकार के रंगों का उपचार करने में अत्यन्त वैज्ञानिक सिद्ध होते हैं। यदि रत्नों को रोगानुसार उपयुक्त मात्रा एवं समय-समय में धारण करने से पूर्णतया लाभ होता है। रत्न असाध्य से असाध्य रोगों के भी शमन करने में सक्षम होते हैं।[2] सिद्धान्तिक एवं वैज्ञानिक दोनों पक्षों के अनुसार रत्नों विस्तार पूर्वक वर्णन किया गया है।

।। इति शम् ।।

1- Scientifi Basis: -

The human body contains hundred of locations where there are focused and concentrated energy centers. Chakars are similar to wheels, in that they are spinning vortexes of energy. They are centers of force. Located within our etheric body, through which we recive transmit and process life energies.

Each chakar in the body is recognized as a focal point of life force relating to physical, emotional, mental and spiritual energies. The chakar are the net work through which body/mind/ spirit interact as one holistic system.

The Muladhara, Swadhisthana, Manipura, Anahata, Visuddha, Ajna and Sahasrara chakra seven major chakars correspond to specific aspects of our consciousness and have their own individual characteristics and functions. Each has a corresponding relationship to one of the various glands of the body's endocrine system, as well as to one of the seven colors of the rainbow-------- "gemology studies" 'Gem & Gem Industry'

सहायक ग्रन्थ

पुस्तक	लेखक/सम्पादक	प्रकाशक	सम्वत
१. ऋग्वेद	श्री मत्सायण चार्य विरचित भाषा सेमता,	वैदिक संशोधन मण्डल तिलक स्मारम मन्दिर, पूणे- २	
२. ऋग्वेद भाषा 'भाष्य'	सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा ३/५ महर्षि दयानन्द भवन, रामलीला मैदान-नई दिल्ली-२	प्रिंस ऑफसेट प्रिंटर्स नई दिल्ली - ११०००२	१५१०
३. यजुर्वेद संहिता (भाषा टीका)	ब्रह्मवर्चस - वेदमूर्ति तपोनिष्ठ पं० श्री राम शर्मा आचार्य	शान्ति कुञ्ज हरिद्वार प्र० संस्करण २०५६ मुद्रकः युगान्तर चेतना प्रेस शान्तिकुञ्ज, हरिद्वार.	
४. अथर्ववेद संहिता (भाषा टीका)	ब्रह्मवर्चस श्री राम शर्मा आचार्य	शान्ति कुञ्ज हरिद्वार	२०४६
५. अग्निपुराणम् (भाषा टीका)	श्री तारिणीश झा, डॉ० घनश्याम त्रिपाठी	हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, इलाहाबाद-३	सं २०६३ सन्-२००७
६. अर्थशास्त्रम्	वाचस्पति गौरोला	चौखम्वा विद्याभवन वाराणसी	१६६६
७. अद्भुतसागरः	मुरलीधर शर्मा	The Prabhakari & Co.	1905
८. अमरकोष	भरत जी	Chokhamba Sanskrit Pratishthan Delhi, Varanasi-	1984
९. अर्वाचीनं ज्योतिर्विज्ञानम्	श्री रामानाथसहायविरचितम् कुलपतेः डॉ० मण्डनमिश्रस्य	सम्पूर्णानन्दसंस्.तविश्वविद्यालय वाराणसी द्वितीय संस्करण	
१०. अष्टाङ्गहृदय संहिता	वैद्य हरि शास्त्री पराड्कर	चतुर्थ संस्करण	
११. आपस्तम्बीय श्रौतसूत्रम्	Edited by T.T. Srivagopalacharya	Published by : Oriental Research Institute Publications University of Mysore.	
१२. आर्षवर्षावायु विज्ञानम्	डा० श्री गदेन लाल शास्त्री विरचितम् (हिन्दी टीकायां)	पुनीत प्रेस भवानीनगर-मेरठ-२ (उ० प्र०)	
१३. आश्वलायन गृह्यसूत्र	गार्ग्यनारायणीय आनन्दचन्द्र	वेदान्तवागीरा कलकत्ता	१८६६
१४. ऐतरेय आरण्यक	डॉ० सत्यव्रत शास्त्री	आचार्य एवं अध्यक्ष	
१५. ऐतरेयोपनिषद्	पं० श्रीराम शर्मा आचार्य	संस्कृत संस्थान बरेली	१६७१
१६. उत्तरराम चरित	आनन्द स्वरूप	मोती लाल बनारसी दास	
१७ उपनिषद् भाष्य-	सानुवाद	गीता प्रेस गोरखपुर	२०२३
१८. कश्यप संहिता	गोरख नाथ चतुर्वेदी		
१९. कादम्बरी-	श्रीमद्बाणभट्ट	कृष्णदास अकादमी, वाराणसी प्र० संस्करण	२०५४
२०. कात्यायन श्रौत सूत्रम्	Edited by : Pt. Nitya Nand	Published by : Chowkhaba Sanskrit Series Banaras	1927

२१. कामसूत्र श्री वात्सयायन मुनि प्रणीत हिन्दी टीकाकार : डॉ० रामाचन्द्र शर्मा .ष्ण दास अकादमी वाराणसी- २०५४

२२. किरातार्जुनीयम् वासुदेवशर्मणा Pemdurang Jawaji Propritor of the "Nirnaya-Sagar"Press Bombay-1922

२३. कुमार सम्भव प्रद्युम्न पाण्डे विद्याभवन संस्.त गन्थमाला २००५

२४. गरुड़ पुराण पं० श्रीराम शर्मा आचार्य संस्कृत संस्थान, ख्वाजकुतुब बरेली १६६५

२५. गायत्री महाविज्ञान वेदमूर्ति तपोनिष्ठ ब्रह्मवर्चस पं०- श्री राम शर्मा आचार्य शान्तिकुञ्ज हरिद्वार

२६. गोपथ ब्राह्मण आचार्य डॉ० प्रज्ञा देवी डॉ० इन्द्र दयाल सेठ लूकटगन्ज, इलाहाबाद १६६७

२७. ग्रहलाघवं करणम् श्री गणेश दैवज्ञ खेमराज श्री कृष्ण बम्वई

२८. चर्याचन्द्रोदयः (भाषा टीका) श्री कृष्ण दासात्मज

२६. चरक संहिता पं० राजेश्वर दत्त शास्त्री चौखम्भा भारती अकादमीवाराणसी

३०. जातक पारिजातः पं० गोपेश कुमार ओझा एम० ए०,लए० वी० मोती लाल बनारसीदास दिल्ली, वाराणसी, पटना

३१. जातक संहिता भदन्त आनन्त कौसल्लायन हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग पारड़ी, सूरत२०१३

३२. ज्योतिषतत्त्वप्रकाश पं० लक्ष्मी कान्त कन्याल मोती लाल वनारसीदास दिल्ली, पटना, वाराणसी

३३. ज्योतिष रुद्रप्रदीप जगन्नाथ जोशी श्री वेंकटेश्वर स्टीम प्रेस बम्बई

३४. ज्योतिष रहस्य (द्वितीयखण्ड) श्री जगजीवन दासगुप्ता मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी।

३५. ज्योतिर्विदाभरणम् सं० डॉ०रामचन्द्र- पाण्डेय मोती लालबनारसीदास वाराणसी, १६८८

३६. ज्योतिषश्यामसंग्रह जातकभागः गंगाविष्णु श्रीकृष्णदासेन ''लक्ष्मीवेंकटेश्वर'' छापेखाने कल्याण-मुंबई १६६२

३७. तैत्तिरीय उपनिषद् पं० श्रीपाद दामोदर सालवलेकर वसन्त श्रीपाद सातवडेकर बी ए भारत मुद्रणालय आनन्दाश्रम, किल्ला-पारडी ५वां सं०

३८. तैत्तिरीय ब्राह्मण पं० श्रीराम शर्मा आचार्य संस्कृत संस्थान कुतुब वेदनगर,बरेली

३६. तैत्तिरीय-संहित अनन्त शास्त्री वसन्त-श्रीपाद-सातवडेकर भारत मुद्रणालयम् १६५७

४०.नरपतिजयचर्यास्वरोदयः संबोधिनी-संस्कृत-हिन्दी चौखम्भा संस्कृत सीरीज वाराणसी-१

४१. नरपति जय चचा (भा०टी०) पं० खेमराज, श्री कृष्णदास "श्री वेंकटेश्वर" प्रेसखेतबाड़ी बम्बई

४२.नारद परिव्राजकोपरिषद् पं० श्री राम शर्मा आचार्य संस्कृति संस्थान बरेली १६७६

४३. नारद पुराण पं० श्री रामजी शर्मा आचार्य संस्.त संस्थानख्वाजा कुतुब,बरेली

४४. नारद संहिता मुद्रक एवं प्रकाशक- खेमराज श्री कृष्णदास अध्यक्ष श्री वैंकटेश्वर प्रेस २००४

४५. नागानन्द-नाटक श्री हर्ष प्रणीत — मोतीलाल बनारसीदास द्वि० सं० १६७० दिल्ली, वाराणसी, पटना, मद्रास

४६. नीतिशतक सं० एच० डी० वैद्य — मथुरा- १६४१

४७. नैषधमहाकाव्यम्- पं० श्री हरगोविन्द शास्त्री — चौखम्भा संस्कृत पुस्तकालय, बनारस-१

४८. नैषधमहाकाव्यम् महाकवि श्रीहर्षविरचितम आचार्य श्रीत्रिभुवनप्रसाद उपा० — चौखम्भा संस्कृत पुस्तकालय, बनारस

४६. पराशर स्मृति श्री काशी ज्योतिर्वित्समितिमन्त्र — चौखम्बा संस्कृत सीरीज़ वाराणसी २०२५

५०. पारस्करगृह्यसूत्रम् डॉ० वेदपाल — सत्यार्थ प्रकाशन न्यास जुलाई-२००३

५१. पारिजात कोश पं० ईश्वरचन्द्र — परिमल पब्लिकेशन्स प्र० सं०२००४

५२. पुराण विमर्श आचार्य बलदेव उपाध्याय — चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी २००२

५३. फलदीपिका (भाषा टीका) श्रीमन्त्रेश्वरविरचिता, व्याख्याकार डॉ० हरिशङ्कर पाठक — चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी

५४. बृहत्मुहूर्तसिन्धुः श्रीयुत पण्डित देवकीनन्दन — लालामेहे चंदने विरचित, मुंबई वि०सं०१६४२

५५. बृहत्संहिता वराहमिहिरविरचिता पं० श्री अच्युतानन्दझा शर्मणा — चौखम्बा विद्याभवनवाराणसी २०००

५६. ब्रह्मपुराण आचार्य बलदेव उपाध्याय — चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी-२००२

५७. ब्रह्मवैवर्तपुराणम् (उत्तर भाग) बाबू राम उपाध्याय तारिणीश झा — हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग शक-१६२४ १२ सम्मेलन मार्ग इलाहाबाद-२००२

५८. ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त सम्पूर्णानन्द — गंगाविष्णु खेमराज मुम्बई यन्त्रालय सं०-१६४५

५६. बृहद्योगतरंगिणी त्रिमल्लभट्ट — आनन्दश्रम मुद्रालये १६१३

६०. भद्रबाहुसंहिता सम्पादन-अनुवाद डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री ज्योतिषाचार्य — भारतीय ज्ञानपीठ नयी दिल्ली-११०००३ २००१

६१. भविष्यफलभास्करः (भाषा टीका) पं० खेमराज — श्री कृष्णदास श्रेष्ठिना मुम्बय्यां सं०-२०१०

६२. भैषज्यरत्नावली (भाषा टीका) श्री राजेश्वरदत्तशास्त्री श्री अम्बिका दत्त शास्त्री- — चौखम्भा संस्कृत सीरीज़ ऑफिस पो० बा०-८०८, वाराणसी

६३. भारतीय ज्योतिष श्रीशिवनाथ झारखण्डी राजर्षि पुष्पोत्तमदास टण्डन — उत्तर प्रदेश शासन १६८१ हिन्दी भवन लखनऊ

६४. भावप्रकाश निघण्टु श्री गंगा सहाय पाण्डेय — चौखम्बा विद्या भवन वाराणसी १६६०

६५. भू-गोलसार ओकर भट्ट ज्योतिषी — आगरा शापेखाने में शपी १८४०ई०

६६. मत्स्य पुराण डॉ० श्रद्धा शुक्ला — नाग पब्लिशर्स दिल्ली-१०००७

६७. मनुस्मृति श्री गणेशदत्त पाठक — श्री ठाकुर प्रसाद पुस्तक भण्डार सं०-२००२

६८. महाभारत पं० रामनारायण दास — गीता प्रेस गोरखपुरसं०-२०४४

६६. महाभारत डॉ०पं० श्रीपाद — वंसत श्री पाद सातवलेकर, १६७५

७०. मुहूर्त गणपतिः (भाषा टीका) डॉ० नर्बदेश्वर तिवारी — भारतीय विद्या प्रकाशनप्रथम संस्करण वाराणसी, दिल्ली

७१. मुहूर्त चिन्तामणिः श्रीमदतन्तदैवज्ञतनयश्रीरामाचार्यविरचितः पं० कमलाकान्त ठाकुर — भारतीय विद्या प्रकाशन दिल्ली वाराणसी
७२.मुहूर्तचिन्तामणि पं०केदारदत्त — मोतीलाल बनारसीदास वाराणसी,१६७२
७३. मुहूर्तविवेचन डॉ० रामान्नद भारद्वाज — राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान वदिल्ली २००३
७४. मेघदूतम् डॉ० विजेन्द्र कुमार शर्मा — साहित्य भण्डार सुभाष बाज़ार मेरठ
७५.शब्दार्थचिन्तामणिः ब्राह्मावधूत श्री सुखानन्दनाथेन विनिर्मितः १६२६ वैक्रमे
७६. युक्ति कल्पतरू (एक आलोचनात्मक अध्ययन) डॉ० शाकिर अली — प्रीति प्रकाशन भोजपुर- ८०२३०१
७७. युक्तिकल्पतरौ महाराज-श्री भोज विरचित — श्रीसदा चरण काव्य विनोदः १६७६
७८. याज्ञवल्कक्योपनिषत् पं० श्री राम शर्मा आचार्य — संस्कृति संस्थान बरेली १६७१
७६. रघुवंश महाकाव्यम् महाकवि श्री भवभूति प्रणीतम् जनार्दनशास्त्री पाण्डेय — मोती लाल बनारसी दास दिल्ली, वाराणसी, पटना, मद्रास
८०. रत्न-परिचय हरिश्चन्द्र विद्यालंकार — रंजनपब्लिकेशन्स सं-२००६ दरियागंज नई दिल्ली-११०००२
८१. रत्नपरीक्षादि सप्त ग्रन्थ संग्रह ठक्कुर फेरू — चौखम्बा विद्या भवन वाराणसी --
८२. रत्नप्रदीप डॉ० गौरीशङ्कर कपूर — गोयल ए०क० दरीबा, दिल्ली
८३. रत्न विज्ञान श्री पं० राधकृष्ण पाराशर — चौखम्भा भारती अकादमी वाराणसी
८४. रसरत्न समुच्चय अनन्तदेवसूरि कृत
८५. रसेन्द्रचिन्तामणि डॉ० सिद्धिनन्दन मिश्र
८६. राज निघण्टु नरहरि विरचित
८७. राजमार्तण्ड श्री भोजराज — खेमराज श्री कृष्णदास "श्री वेंकटेश्वर" छापाखाना(बम्बई)
८८.रावण संहिता पं० किसनलाल शर्मा — मनोज पब्लिकेशन्स दिल्ली-११००८४
८६.वनौषधि चन्द्रोदय भाग-२ श्री चन्द्रराज भण्डारी — चौखम्बा संस्कृत सीरीज वाराणसी १६६४
६०.वनौषधि चन्द्रोदय भाग-६ श्री चन्द्रराज भण्डारी — चौखम्बा संस्कृत सीरीजवाराणसी १६६४
६१. वराह पुराण अनु०चौधरी श्रीनारायण — सर्व भारतीय काशिराजन्यास,वाराणसी
६२.विष्णुधर्मोत्तरपुराण पं०माधवप्रसादशर्मा — क्षमेराज-श्रीकृष्णदास मुंबई, श्रीवेंकटेश्वर यन्त्रालयाध्क्षः मुंबई।
६३.वेणीसंहार नाटकम् श्री भट्टनारायण पं० श्री आदित्य नारायण पाण्डेय — चौखम्भा संस्कृत सीरीज़ आफिस वाराणसी मुद्रकः विद्याविलास प्रेस वाराणसी-१
६४. शतपथ ब्राह्मण स्वामी सत्यप्रकाश — गोविन्दराम हासानन्द, दिल्ली १६८८
६४. शंख स्मृति खेमराज .ष्णदास — श्री वेङ्कटेश्वर स्ट्रीम प्रैस-बम्बई १८४६
६५. शब्दकल्पद्रुमः स्यार-राजा-राधाकान्तदेव-बाहादुरेण विरचितः — चौखम्भा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी-१६६१
६६.शांखयायन गृह्यसूत्र पं० श्री राम शर्मा आचार्य — संस्कृति संस्थान बरेली
६७.शाङ्र्गधर संहिता श्री शाङ्र्गधराचार्य विरचिता — चौखम्भा संस्कृत सीरीज़ वाराणसी-१

९८. श्री शिवमहापुरण डॉ० ब्रह्मानन्द त्रिपाठी चौखम्बा प्रतिष्ठान वाराणसी १९९६
९९. शिव पुराणम् हनुमान प्रसाद पोद्दार गीता प्रेस गोरखपुर सम्वत् २०१८
१००.शुक्रनीति पं० मिहिरचन्द्र जी कृत खेमराज श्रीकृष्णदासने संवत्-१९८२
१०१. शुद्धि दीपिका (महामहोपाध्याय श्री निवास प्रीणत) खेमराज श्री कृष्ण दास सं०-२०१३ श्री वेंकेटेश्वर स्टीम् प्रेस बम्बई-४
१०२. श्रीमद्भागवत महापुराण (प्रथमखण्ड) गीता प्रेस गोरखपुर संस्करण-४
१०३. श्रीमद् वाल्मीकि रामायण सम्पादक- पं० रामनारायण दास गीता प्रेस गोरखपुर सं०- २०४०
१०४.श्रीगोविन्ददास विरचिता श्री राजेश्वरदत्त शास्त्री वाराणसी-०१
१०५.सचित्र ज्योतिष शिक्षा बी०एल ठाकुर मोती लाल बनारसी दास,बंगला रोड़, जवाहरनगर,दिल्ली-११०००७
१०६. सत्यार्थ प्रकाश स्वामी दयानन्द प्रतिनिधि सार्वदेशिका आर्य सभा नई दिल्ली
१०७. सिद्ध भेषज संग्रह कविराज युगल किशोर गुप्ता चौखम्बा संस्कृत सीरीज बनारस१९५३
१०८.सिद्धान्तशिरोमणेः काशी हिन्दू विश्वविद्यालय श्री लक्ष्मीदासेन मुद्रितम्१९६५
१०९.सिद्धान्त शिरोमणि केदार दत्त जोशी
११०. सिद्धान्तसम्राट जगन्नाथ सम्राट-विरचितः संस्कृत परिषद् सागर विश्वविद्यालयः वाराणसी
१११. सुर्जनचरितमहाकाव्य श्री चन्द्रविरचितम् काशी हिन्दु विश्वविद्यालयाध्यापकेन प्रकाशितम् समलाङ्कृत्य प्र०सं०-१९५२
११२. सुश्रुत संहिता अत्रिदेव मोतीलाल बनारसीदास दिल्ली, वाराणसी,
११३.सूर्यसिद्धान्त चौखम्भा संस्कृत प्रतिष्ठान ३८-यू.ए. बंगलो रोड़ जवाहर नगर-दिल्ली-१०००१
११४.संस्कृत शब्दार्थकौस्तुभ सं०-स्वर्गीय- चतुर्वेदी द्वारका प्रसाद शर्मा रामनारायण लाल इलाहाबाद संस्करण द्वितीय १९५७
११५. स्कन्द पुराण श्रीमनमहाऋषि द्वेपायन दिनेन्द्र स्टीम कोलकता१९६१
११६. हर्षचरित श्रीमद् वाणभट्ट-प्रणीत मोतीलाल बनारसी दास दिल्ली,१९७५
११७. हिन्दी विश्वकोश श्री नगेन्द्रनाथवसुप्राच्चयविद्या B.R. Publishers Corporation
११८. हिन्दीशब्दसागर शंभु नाथ वाजपेयी नगरी मुद्रणालय वाराणसी
११९. हिन्दी शब्दसागर श्याम सुन्दर दास नागरी मुद्रण, वाराणसी में मुद्रित
१२०. हिन्दी विश्वकोश श्री नगेन्द्रनाथवसु B. R. Publishing Corporation 1986
१२१. हिन्दुत्व माधव विष्णु पराडकर ज्ञान मण्डल यन्त्रालय, काशी १९९५
१२२. हिन्दी शब्दसागर श्याम सुंदर दास काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा १९२०
123. Engineering & General Geology by Parbin Singh S.K.kataria and son. 6th edition 6,Guru Nanak market,Delhi- 110006
124. A practical Vedic Dictionary by suryakant Delhi oxford university press- Calcutta, Madra, Bombay
125. Sanskrit Hindi-English Dictionary by Surykanta, Surjeet Mukherjee New Delhi. 1975
126. Sanskrit-English Dictionary by Sir Monier Inderjeet Sharma---